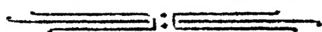
फतहपुर-परिचय



"दिनमणि"

नर-रत्नोंकी जीवन-गाथा,
पूर्वज प्रमुखोंके कीर्ति-गान ;
अनुसंधानों से लिखे हुए,
कर देते हमको साभिमान ।

—'दिनमणि'

साहित्य सुमनमालाका द्वितीय पुष्प

फतहपुर-परिचय

(फतहपुर-शेखावाटी का इतिहास)

शिलालेखों, ताम्रपत्रों और अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर तैयार किया हुआ फतहपुर का करीब ५०० वर्ष का—अबतक का, सर्वाङ्गपूर्ण प्रामाणिक इतिहास



लेखक और प्रकाशक :—

श्रीगोपाल 'दिनमणि'

प्रस्तावना-लेखक :—

डा० श्रीभूपेन्द्रनाथ दत्त, एम० ए० पी-एच० डी०

प्रथमावृत्ति] सन् १९४५ ई० [मूल्य—५)

प्रकाशक—
श्रीगोपाल 'दिनमणि'
दिनमणि कुटीर
फतहपुर-शेखावाटी
(जयपुर)

संवत् २००२

मुद्रक—
हलियाराम गुप्त,
दी बंगाल प्रिंटिंग वर्क्स,
१, सीनागोग स्ट्रीट,
कलकत्ता ।

FATEHPUR-PARICHAY

(History of Fatehpur-Shekhawati)

About five hundred years' up-to-date
History of Fatehpur written with
the help of researches & studies
of years by the author.

Author & Publisher

Srigopal "Dinmani"

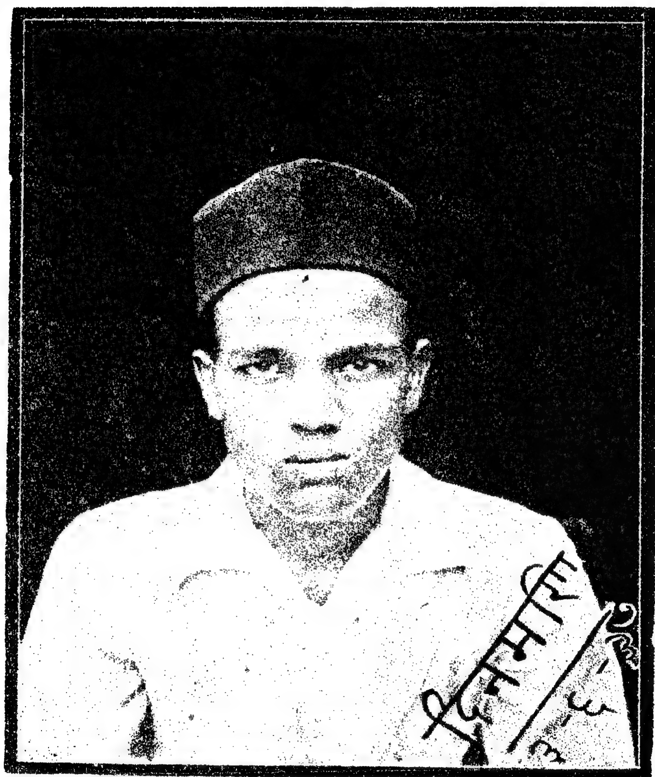
Preface-writer

Dr. Sri Bhupendranath Dutta, M. A., PH. D.

1st. Edition] 1945 [Price : Rs. 5/-

फतहपुर-परिचय •••–

लेखक—



श्रीगोपाल 'दिनमणि'

समर्पण



मैं पढ़ता था, असमयमें तब पूज्य पितामह मेरे,
हुए दिवंगत, किये बिना निज निश्चित सुकृत घनेरे।
मुझे देखने के इच्छुक वे, 'लेखक' निज जीवन में—
रहे सदा ही, प्रबल कामना थी उनके यह मन में।
सफल हुई वह कान्त कामना उनकी, जब न रहे वे ;
होते तो आनन्द-गन्ध ले पुष्पित हो जाते वे।

अतः

अपने उन्हीं

परम पूजनीय, पुण्यश्लोक, दिवंगत पितामह

सेठ श्री ताराचन्दजी जैन

सरावगी (हरनन्दजीका)

की

स्वर्गस्थ आत्माकी तुष्टि के अर्थ,

उन्हीं की

पुण्य-स्मृति में,

राजस्थानी इतिहास के प्रेमियों को,

यह 'फतहपुर-परिचय' ग्रन्थ

सादर सप्रेम समर्पित

—'दिनमणि'

प्राक्कथन

संसारमें उन्नत्यभिलाषी जनोंके लिए, इतिहास भी उन्नतिके साधनोंमेंसे एक साधन है। आजकल जितनी भी जातियोंने उन्नति-मेरुकी शिखा पर पहुंचनेकी अभिलाषासे परिकर-बद्ध होकर पैरको आगे बढ़ाया है, उन सबने इतिहासकी ही सहायता ली है। जितने भी देश अवनति-गर्तसे निकल कर अद्यावधि बाहर हुए हैं, सबको अपने पूर्व पुरुषोंका, प्राचीन गौरव-गाथाका और अर्वाचीन इतिहासका पहले अध्ययन करके उसकी अनुभूति करनी पड़ी है। जबतक उनको अपनेपनका भान नहीं था और न इतिहासको ही जानते थे, तबतक वे जानते न थे कि उन्नति किस चिड़ियाका नाम है और कैसे की जाती है; क्योंकि उस समय वे अज्ञानान्ध थे और अन्धे की तरह जैसा किसीके मुखसे सुनते वैसा ही मान लेते।

कालान्तरमें समयने पलटा खाया, तब वे अपने इतिहाससे शनैः २ परिचित होने लगे। ज्यों ही इतिहाससे परिचित हुए, उन्हें अपनी उन्नतिकी सूझी; उन्नति-मार्गके लिए खोज होने लगी, तब कहीं उन्नतिका मार्ग मिला।

मार्ग मिलने पर उसका अनुगमन किया गया, तब उन्नति तक पहुंच पाये। इस तरह अपने अप्रकट अतीत इतिहासकी अवगति-द्वारा प्रेरित होकर उन्होंने उन्नति-लाभ लिया।

उन्नतिका जितना श्रेय इतिहासको है उतना किसी दूसरे विषय के ग्रन्थोंको नहीं हो सकता ; क्योंकि इतिहास ही ऐसी वस्तु है जिसके द्वारा हम अपनी अतीत गौरवान्वित स्थितिका, जिसको हमने अपनी आँखोंसे नहीं देखा है, अध्ययन कर सकते हैं ।

हमारे यहाँ इतिहासकी इतनी कमी है कि उसकी पूर्ति होना असम्भव-सा है, क्योंकि एक लम्बे अरसेसे इसका अभाव चला आरहा है । इसके अभावका एक कारण लोगोंकी अरुचि भी है, जो कि शनैः २ कतिपय इतिहासानुरागियोंके अनवरत उद्योगसे दूर होती जा रही है ।

वर्तमान समयसे कुछ समय पहले इतिहासका जितना अभाव था, उतना अब नहीं है । अब लोगोंमें इतिहासके प्रति प्रेम हो चला है, जिसका प्रदर्शन वे लोग यदा-कदा ग्रन्थ-प्रणयन-द्वारा करते हैं । शिलालेखों और ताम्रपत्रोंकी भी बहुत खोज हो चुकी है और कई ग्रन्थ भी इस विषयके रचे जा चुके हैं ।

जिन २ जातियों और देशोंने अपने पूर्वके इतिहासोंका अध्ययन किया और उन्हें समझा है, वे उन्नतिके लिए अग्रसर हो चुके हैं । देखिए, जब वे इतिहासको न जानते थे, तब तो वे किंकर्त्तव्य-विमूढ थे और ज्यों ही उन्होंने इतिहासको जाना त्यों ही उनके मानसमें जादूका-सा असर होगया, जिसके फल-स्वरूप वे उन्नति-प्राप्तिके लिए उत्कण्ठित होगये । इससे इतिहासकी हमारे लिए अतीवावश्यकता है ।

इसी आवश्यकतासे प्रेरित होकर मैंने भी अपनी रुचिके अनुरूप, शेखावाटीके बड़े और प्राचीन शहर फतहपुरके सम्बन्धमें कुछ लिखने का विचार किया तथा अपने विचारोंको लेकर मैं, फतहपुरके इतिहासकी सामग्री बटोरनेके लिए प्रयत्नशील हुआ। मैंने प्रारम्भमें राजपूताना और शेखावाटीके सम्बन्धमें प्रकाशित कतिपय लेख और एक-दो छोटी पुस्तिकाएँ तथा "शिक्षा-दर्पण" नामक एक पुराने ढंग की पुस्तक—जिसमें फतहपुरके सम्बन्धमें एक छोटा, किन्तु अप्रामाणिक लेख था—पढ़ी। इन लेखों और पुस्तकोंके पढ़नेसे मेरी फतहपुरके इतिहासके सम्बन्धकी जानकारी ज्यों-की-त्यों रही, लेकिन इस सम्बन्धमें मेरी उत्कण्ठा बढ़ गयी।

अपनी रुचिको मैंने अपने पूज्य पिताजीके सामने प्रगट किया; क्योंकि वे इतिहास विषयके प्रेमी एवं अच्छे ज्ञाता हैं। उन्होंने मुझे इस विषयकी एकत्रित अपने पासकी सामग्री दिखायी; इस सामग्रीमें उनकी २ नोट बुक्स थीं, जिनमें इतिहास तथा अन्यान्य विषयोंके नोट्स थे तथा थे यत्र तत्रसे अविकल उद्धरित फतहपुरके कतिपय शिलालेख भी। इन शिलालेखोंसे मुझे प्रेरणा मिली कि मैं फतहपुर के सभी शिलालेखोंका संकलन करूँ तो मुझे मेरे इतिहास-लेखनके कार्यमें बहुत-कुछ सहायता प्राप्त हो सकती है।

मैंने अपने एक-दो साथियोंको लेकर फतहपुरके सभी ऐतिहासिक प्राचीन स्थान एवं दर्शनीय नूतन स्थान देख डाले; इसी समय फतहपुरके शिलालेखों और ताम्रपत्रोंका संकलन कर, मैं यह "फतहपुर-परिचय" पुस्तक लिखनेमेंप्रवृत्त हुआ।

मेरे इस लेखन-कार्यमें मुझे शिलालेखों और ताम्रपत्रोंकी सहायता तथा और-और निजी खोजके अतिरिक्त मेरे पिताजीके पासकी सामग्रीसे—जिसके विषयमें मैं ऊपर लिख चुका हूँ—बहुत अधिक सहायता मिली ; तथा फतहपुरकी दरगाहके वर्त्तमान पीर गुलाम सरवरजी, डा० पं० रामजीवनजी त्रिपाठी और पं० भगवानदेवजी ढण्डसे भी कुछ सामग्री प्राप्त हुई। श्री० देवीदत्तजी धाभाईने समय-समय पर मुझे इस सम्बन्धमें अपने उपयोगी परामर्शसे अनुग्रहीत किया और श्री० गुलजारीलालजी पाण्डेयने उर्दू और फारसीमें लिखी हुई इस सम्बन्धकी पुस्तकें और शिलालेख पढ़नेमें अपना अमूल्य समय देकर सहायता पहुंचायी। श्री० मोहनलालजी बियाणी और पं० देवकीनन्दनजी खेड़वाल शिलालेखादि संग्रह करनेमें मेरे साथ रहे। डा० हरिसिंहजी विन्द्राने फतहपुर शहरका नकशा तैयार करवा कर श्री० गणपतिजी कमलियाने अपना कैमरा देकर तथा श्री० माँगीलालजी धाभाई (फोटोग्राफर) ने इतिहासमें दिये गये अधिकांश चित्र खींचकर इतिहासके निर्माणमें मेरा हाथ बँटाया। इन लोगोंका मैं अत्यन्त आभारी हूं।

और २ जिन महानुभावोंने, मेरे इतिहास-निर्माण-कार्यमें, सहायता प्रदान की है, उनके नाम हैं—बा० बासुदेवजी गोयनका, बाबू बजरंगलालजी लोहिया, श्री० श्रीलालजी साँवलका, पं० भालचन्द्रजी शर्मा, श्रीमती कृष्णादेवीजी जैन, कुं० साँवतसिंहजी शेखावत (गिरदावल-फतहपुर), श्री० यूसुफखाँजी (तहसीलदार-रींगस),

पं० वसन्तकुमारजी शर्मा, पं० लालचन्दजी शर्मा, श्री० मन्नालालजी कायस्थ, मौलवी मुकारबखाँजी, स्वामी गणपत्यानन्दजी, श्री० बालकृष्णजी पोद्दार, श्री० दयारामजी देवड़ा, श्री० दौलतरामजी बजाज, पं० विश्वनाथजी सारस्वत, पं० बजरंगलालजी सारस्वत, पं० शिवनारायणजी शर्मा, बा० सुदर्शनदासजी अग्रवाल और स्व० श्री० काशीप्रसादजी खेमका। इनका भी मैं उपकार मानता हूँ।

इसके अलावा मुझे पुस्तक-प्रणयनमें निम्नाङ्कित ग्रन्थों और पत्र-पत्रिकाओंसे समुचित साहाय्य प्राप्त हुआ है—"राजस्थानका इतिहास (कर्नल जेम्स टाड), राजपूतानाका इतिहास (गौरीशंकर हीराचन्द ओझा), राजपूतानाका इतिहास (जगदीशसिंह गहलोत), सीकरका इतिहास, खेतड़ीका इतिहास, मर्दुम शुमारीकी रिपोर्ट प्र० द्वि० भाग, महाभारत, भारतके प्राचीन राजवंश, भारतीय चरिताम्बुधि, आइन-ए-अकबरी, विल्स रिपोर्ट, विल्स रिपोर्टका उत्तर, इण्डियन एण्टीक्वेरी, लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, विश्व कोश, वाकयात कौम कायमखानी, कायमरासा, फकरु तवारीख, शिखर वंशोत्पत्ति पीढ़ी वार्त्तिक, मारवाड़का इतिहास, बीकानेरका इतिहास, सुन्दर ग्रन्थावली, सुन्दर विलास, पंचेन्द्रिय चरित्र, बादशाह नामा, यवन राज वंशावली, शजरतुल मुसलमीन, मुसलमानी राज्यका इतिहास, सम्राट अकबर, जहाँगीर नामा, राजपूतानाका भूगोल, शेखावाटीका भूगोल, शिक्षा-दर्पण, आश्चर्य सप्तदशी, कविता कौमुदी, भारतीय आत्मत्याग, तीर्थाटन प्रदीपिका, ऐतिहासिक कहानियाँ, दादूपंथियोंका हस्तलिखित

साहित्य, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, दैनिक हिन्दुस्तान (दिल्ली), वीकली अमृतबाज़ार पत्रिका (कलकत्ता), जयपुर गजट (जयपुर) और प्राचीन पंचांग।"

उपर्युक्त ग्रन्थोंके लेखकों और पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादकोंके प्रति भी मैं कृतज्ञता-ज्ञापन करता हुआ फूले नहीं समाता हूं।

भारतके सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ, विविध भाषाविज्ञ और नरतत्त्व शास्त्रके अद्वितीय विद्वान् डा० श्री भूपेन्द्रनाथ दत्त, एम० ए० पी-एच० डी० का भी मैं हृदयसे आभार मानता हूं जिन्होंने इस पुस्तककी प्रस्तावना लिखकर मेरे उत्साहको और इस पुस्तकके महत्त्व को बढ़ाया है।

पर्याप्त परिश्रम तथा यथेष्ट समयकी समाप्तिके बाद, यह पुस्तक-प्रणयनका कार्य सम्यकतया सम्पन्न हुआ है। पुस्तकमें, (१) फतहपुर के भूगोलके सम्बन्धमें, (२) शेखावाटीकी भूमिका शासन और प्राचीन फतहपुर, (३) फतहपुरके कायमखानी शासक, (४) फतहपुर के शेखावत शासक, (५) फतहपुरके नररत्न और (६) फतहपुरके दर्शनीय प्राचीन स्थान, धर्मायतन और संस्थाएँ नामोंसे ६ खण्ड हैं। छठे खण्डमें, नयी खोली गयी संस्थाओंके विवरण (विशेष उल्लेख योग्य न होनेके कारण) संक्षेपमें पाद टिप्पणियोंमें लिखे गये हैं। सभी खण्डोंमें लिखी गयीं सभी बातें और उनमें यत्र-तत्र आये हुए सन्-संवत् प्रामाणिक हों इसका अधिक ध्यान रक्खा गया है; विक्रमी संवत् और ईस्वी सन् दोनोंका प्रयोग किया गया है, पर विक्रमी

संवत् को प्रधानता दी गयी है। सारी प्राप्त सामग्री, अन्वेषणानन्तर प्रामाणिक आधारोंसे निर्णीत होनेके बाद लिखी गयी है; फिर भी मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ; निर्णय करनेमें, सम्भव है, मैं भी भूल सकता हूँ। भूलमें या अविवेकसे हुई कोई ऐतिहासिक त्रुटि, यदि इस पुस्तकमें मिले तो पाठक मुझे संशोधनके प्रयोजनसे सूचित करनेकी कृपा करें; यह त्रुटि यथासम्भव अगले संस्करणमें सुधार दी जायेगी।

साहित्य-सदन कार्यालय,
फतहपुर
७ जून, १९४४ ई०

श्रीगोपाल 'दिनमणि'

प्रस्तावना-लेखक—



डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त, एम० ए०, पी-एच० डी०

INTRODUCTION.

Mr. Srigopal "Dinmani", the author of the book "Fatehpur-Parichaya", has gleaned his historical materials pertaining the State of Fatehpur-Sekhawati from various epigraphic and historical records. It is commendable on the part of the young poet which the author is, as is borne by his nom-de-plume, to collect all authentic materials regarding his birth-place and put them in chronological order for perusal of the public.

It is imperative for every civilised man in this world to know about the history of his country. In order to understand the present and to dream about the future, one must know the past of his people. It is generally said that the ancient Indians did not write their histories. But this saying is not accepted today. They have left enough materials dealing with historical matters with the help of which we can gather facts about the past history of India. It is up to us to glean the kern from the husks

and recover the true historical news from the texts testifying the civilization of the past of this country.

History is a science, and scientific tests must be applied to find out the truth in the records dealing with the history of a country. In that way, we arrive at indisputable facts regarding history. Long ago, when Rajputana came in political contact with the British East India Company, Colonel James Todd was sent to deal with the political situation arising out of this new relation. As a result of his stay there, he collected the annals of each state of Rajputana and wrote the ever-memorable book "Annals of Rajsthan". His records were based on bardic legends and Sagas. Hence it took a highly romantic colour. Moreover, he being under the influence of the scanty ethnological news of his time regarding the Hindu Society and the old tribes, his interpretation in the matter of origin of the ruling tribes living in Rajputana became colourful speculations. The epigraphic and anthropological investigations are gradually weaning away Indian history from this position, though it is not yet free from the speculative romanticism of some of the occidental writers!

It is true, that the subsequent researches of Pandit Gourishankar Hirachand Ojha and others have taken away the romantic halo created by Todd in the name of Rajputana, yet in the place of the Sagas we are getting true historical news by and bye. The young writer of this book belongs to the newer generation of research workers who are trying piece-meal to find out the true history of the province. And we commend his efforts, but it must be said here that he could have availed himself regarding the facts about the so-called meeting of Maharana Pratap Singh and Raja Man Singh at Kamalmir, the battle of Huldighat from "Akbarnamah", the researches of Professors Jadunath Sarkar and Kanungo who have dis-established the colourful Sagas created by Todd in these matters. The second mistake is made here by following Todd, is the story about the origin of Mahabat Khan. He was a Pathan whose tomb lies in Peshawar.

The important historical fact that the author has brought out is that the first rulers of Fatehpur, the Kayemkhani family were originally like the Khan Fatehs, of Chauhan Rajput tribe.

Besides giving the chronology of the Kayemkhani and subsequent Sekhawat-Rajput rulers, the author has given so far possible the accounts of the important personages of the State who arose in the period following its foundation. Besides the author gives other informations regarding the various institutions that are to be found here.

Taking all these together, it has become a handy guide-book for the outsiders. It is to be hoped that the young writer will also collect facts about the socio-economic condition of the people during the period of several centuries that have seen the presence of this State and base these as a part of his data for the second edition of his history-book.

3, Gour Mohan Mukerjee St.
CALCUTTA.
1, June, 1945.

Bhupendra Nath Dutta.
A. M. (Brown)., Dr. Phil
(Hamburg).

प्रस्तावना



"फतहपुर-परिचय" ग्रन्थके लेखक श्री० श्रीगोपाल "दिनमणि" ने फतहपुर-शेखावाटी स्टेट-सम्बन्धी अपनी ऐतिहासिक सामग्री, विविध शिलालेखों और इतिहासोंके रिकार्डोंसे एकत्रित की है। अपनी जन्मभूमिके सम्बन्धकी तमाम ऐतिहासिक प्रामाणिक सामग्रीके संकलन करने और उन्हें सर्वसाधारणके अनुशीलनके लिए क्रमशः तारीख और संवत् सहित सजानेका, युवक कवि (लेखक)—जैसा कि उनके उपनामसे जाना जाता है—का कार्य प्रशंसनीय है।

इस दुनियामें अपने देशका इतिहास जानना, प्रत्येक सभ्य व्यक्ति के लिए आवश्यक है। वर्त्तमानको समझने और भविष्यके सम्बन्ध में स्वप्न देखनेके प्रयोजनसे व्यक्तिको समाजका भूतकाल जानना होगा। साधारणतया यह कहा जाता है कि प्राचीन भारतवासियोंने अपने इतिहास नहीं लिखे; लेकिन आज यह कथन मान्य नहीं है। उन्होंने इतिहासके सम्बन्धकी पर्याप्त सामग्री छोड़ी है, जिनकी सहायतासे हम भारतके भूतकालके इतिहासके सम्बन्धमें वास्तविक बातें संग्रह कर सकते हैं। छिलकोंमेंसे गूदा एकत्रित करना अथवा इस देशके भूतकालकी सभ्यताके प्रमाणभूत मूल ग्रन्थोंसे ऐतिहासिक सत्यको उपलब्ध करना हमारा कर्त्तव्य है।

इतिहास एक विज्ञान है, और एक देशके इतिहासके सम्बन्धके रिकार्डोंमेंसे सत्य खोज निकालनेके लिए वैज्ञानिक शोध करनी होगी। इस प्रकार हम इतिहास-सम्बन्धी निर्विवाद तथ्यों तक पहुंचते हैं। बहुत दिन पहले जब राजपूताना, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनीके राजनैतिक संपर्क में आया, कर्नल जेम्स टाड इस नये संपर्कसे पैदा हुई राजनैतिक स्थितिका अध्ययन करनेके लिए भेजा गया। अपने वहाँ (राजपूतानेमें) ठहरनेके फलस्वरूप उसने राजपूतानेकी प्रत्येक स्टेटका इतिहास एकत्रित किया और वह चिरस्मरणीय ग्रन्थ "राजस्थान का इतिहास" लिखा। चारण-भाटोंकी पुरानी कथाओं और गीतोंके आधार से उसके रिकार्ड निर्मित थे; इसीसे इतिहास रोमान्सके गहरे रंगमें रंग गया। इसके अतिरिक्त हिन्दू समाज और प्राचीन जातियों से सम्बन्धित अपने समयके संकुचित, मानव-भिन्नत्व-विज्ञानसे उसके प्रभावित होनेके कारण, राजपूतानेकी शासक जातियोंके सम्बन्धकी उसकी व्याख्या रंगीन कल्पनाएँ बनकर आयीं। शिलालेख-सम्बन्धी और नरतत्त्व-विज्ञान-सम्बन्धी अनुसन्धान क्रमशः भारतके इतिहासको इस स्थितिसे दूर कर रहे हैं, किन्तु अभीतक यह पश्चिमके कतिपय लेखकोंके काल्पनिक रोमान्ससे रहित नहीं हुआ है।

यह सत्य है कि पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा और दूसरे-दूसरे लेखकोंकी, बादमें होनेवाली खोजोंने राजपूतानेके नाममें बनाये हुए टाडके रोमांटिक कथनोंको दूर कर दिया है। चारण-भाटोंके गीतोंके स्थानमें अब हमें वास्तविक ऐतिहासिक बातें मिलती जा रही हैं।

इस ग्रन्थके युवक लेखक, नयी पीढ़ीके रिसर्च-करनेवालोंमेंसे हैं, जो प्रान्तीय सत्य इतिहास खोजनेमें प्रयत्नशील हैं। मैं उनके प्रयास की प्रशंसा करता हूं; लेकिन यहाँ कहना चाहिए कि वे यदि, महाराणा प्रतापसिंह और राजा मानसिंहकी कमलमीरमें हुई तथाकथित मुलाकात, "अकबर नामे"की हलदीघाटीकी लड़ाई और सर यदुनाथ सरकार तथा प्रो० कानूनगो—जिन्होंने इस सम्बन्धमें टाडके बनाये हुए रंगीन चित्रोंको अप्रामाणिक सिद्ध किया है—के अनुसंधानों, के बारे के तथ्योंसे लाभ उठाते तो अधिक अच्छा होता। दूसरी भूल जो यहां की गयी है वह, टाडका अनुसरण करके लिखी गयी, महावतखाँकी उत्पत्तिके बारेकी कहानी है। वह पठान था, जिसका मकबरा पेशावर में है।

महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य जो कि लेखकने प्रस्तुत किया है वह है फतहपुरके प्रारम्भिक शासकोंके बारेमें, कि कायमखानी परिवारकी उत्पत्ति चौहान राजपूत वंशसे थी; जैसे, फतहखाँ इत्यादि की।

कायमखानियों और उनके पश्चात् होनेवाले शेखावत राजपूत शासकोंका तारीख और संवत् सहित इतिहास प्रस्तुत करनेके साथ-साथ लेखकने स्टेटके विशिष्ट व्यक्तियोंका, जो कि फतहपुरके आबाद होनेके बादसे अबतकके समयमें हुए हैं, उपयुक्त विवरण दिया है। इसके अतिरिक्त लेखकने वहांकी अनेक संस्थाओंके सम्बन्धमें भी उल्लेख किया है।

इन सब विषयोंको लेकर, यह बाहरके लोगोंके लिए एक पथ-प्रदर्शक ग्रन्थ होगया है। यह उम्मेद की जाती है कि ये युवा लेखक, स्टेटके कई शताब्दियोंके समयमें हुए लोगोंकी सामाजिक और आर्थिक स्थितिके बारेके तथ्योंका भी संकलन करेंगे और इनको अपने जाने हुए तथ्योंके बतौर अपने इतिहास ग्रन्थके दूसरे संस्करण के लिए रख छोड़ेंगे।

३, गौर मोहन मुखर्जी स्ट्रीट,
कलकत्ता।
१ जून, १६४५

—भूपेन्द्रनाथ दत्त
(एम० ए०, पी-एच० डी०)

विषय-सूची



पहला खण्ड

(भूगोल के सम्बन्ध में)

विषय			पृष्ठ
नाम	....	...	१
सीमा	....	....	२
विस्तार	....	....	२
प्राकृतिक विवरण	....	....	२
पहाड़	....	....	४
नदी	....	....	४
जलवायु	....	...	५
वर्षा	....	....	५
पैदावार	...	...	६
आबादी	...	....	७
पेशा	....	...	७
कारीगरी	.	....	८
भाषा	....	...	८

विषय			पृष्ठ
शिक्षा	....	....	८
दर्शनीय स्थान	....	....	१०
रेल और मोटर	....	....	१०
सिक्का	....	....	१०
राजधानी	...	....	११

दूसरा खण्ड

(शेखावाटी की भूमिका शासन और प्राचीन फतहपुर)

शेखावाटीकी भूमि और उसका शासन		....	१२
प्राचीन फतहपुर	....	....	१४

तीसरा खण्ड

(कायमखानी शासक)

चौहानों से कायमखानी	....	....	१७
खानखाना नवाब कायमखाँ	....	....	१८
नवाब ताजखाँ (१)	....	....	२१
नवाब फतहखाँ	...	....	२२
नवाब जलालखाँ	...	....	२६
नवाब दौलतखाँ (१)	....	....	२७
नवाब नाहरखाँ	...	...	२८
नवाब फदनखाँ	....	...	३०

विषय			पृष्ठ
नवाब ताजखाँ (२)	....	....	३१
नवाब अलिफखाँ	....	...	३३
नवाब दौलतखाँ (२)	....	...	४५
नवाब सरदारखाँ (१)	....	....	४८
नवाब दीनदारखाँ	...	....	४९
नवाब सरदारखाँ (२)	....	...	५०
नवाब कामयाबखाँ	....	....	५२
उपसंहार	....	....	५४

परिशिष्ट १

(क) नवाबोंकी हैसियत	....	....	५६
(ख) नवाबोंका राज्य-विस्तार		...	५६

परिशिष्ट २

(क) फतहपुरके कायमखानी नवाबोंके समसामयिक बादशाह		५६
(ख) फतहपुरके कायमखानी नवाबोंका वंश	....	५६

चौथा खण्ड

(शेखावत शासक)

शेखावत राजपूत	....	...	५८
राव शेखाजी	....	....	६०
राव शिवसिंहजी	...	...	६१

विषय			पृष्ठ
राव समर्थसिंहजी	....	....	६८
राव नाहरसिंहजी	...	....	७०
राव चाँदसिंहजी	....	....	७१
राव देवीसिंहजी	....	....	७२
रावराजा लक्ष्मणसिंहजी	....	....	७६
रावराजा रामप्रतापसिंहजी	....	....	८६
रावराजा भैरवसिंहजी	....	...	९३
रावराजा माधवसिंहजी	....	....	९७
रावराजा कल्याणसिंहजी	...	...	१०२

परिशिष्ट ३

(क) फतहपुरके शेखावत शासकोंके समसामयिक जयपुर-नरेश और बादशाह	....	१३०
(ख) फतहपुरके शेखावत शासकोंका वंश	....	१३०
(ग) शेखावतोंका वृहद् वंशवृक्ष	....	१३०

पाँचवाँ खण्ड

(नर-रत्न)

सेठ तुहिनमलजी	....	....	१३१
योगिराज संत गंगानाथजी		...	१३३

विषय		पृष्ठ
कविवर नवाब अलिफखाँ	....	१३५
कविवर नियामतखाँ कायमखानी	...	१३७
कविवर संत प्रागदासजी	...	१३८
कविवर संत संतदासजी	...	१४१
महाकवि संत सुन्दरदासजी	...	१४२
कविवर संत भीखजनजी	....	१५१
जैनाचार्य भट्टारक ललितकीर्तिजी	....	१५३
संत बुधगिरिजी	....	१५५
संत परमानन्दजी	...	१५७
यतिवर हरजीमल्लजी	....	१५६
कविवर सेठ रामदयालजी नेवटिया	....	१६०
पण्डित जीवणरामजी	....	१६२
स्वामी परशुरामजी	...	१६४
स्वामी चम्पानाथजी	....	१६५
स्वामी अमृतनाथजो	....	१६७
सेठ सुखानन्दजी सरावगी	....	१७१
मौनी कुशलरामजी	....	१७७
बाबू बासुदेवजी गोयनका	....	१८०
बाबू बजरङ्गलालजी लोहिया ...	....	१८२
बाबू कन्हैयालालजी चितलाँगिया	....	१८४
बाबू गंगाप्रसादजी भोतीका	....	१८७

छठा खण्ड

(दर्शनीय प्राचीन स्थान, धर्मायतन और संस्थाएँ)

विषय | पृष्ठ

दर्शनीय प्राचीन स्थान

फतहपुर का किला १८६
नवाबी बावड़ी १६२
नवाब अलिफखाँका मकबरा १६४

धर्मायतन

दिगम्बर जैन मन्दिर १६५
लक्ष्मीनाथ-मन्दिर १६८
पीरजीकी दरगाह २००
रामगोपालजी गनेड़ीवालाकी छतरी २०२

संस्थाएँ

सरस्वती पुस्तकालय २०४
लक्ष्मीनाथ विद्यालय २११
गुरुमुखराय जैन स्कूल २१३
नेवटिया कन्या पाठशाला २१४
शेखावाटी संस्कृत विद्यालय २१५
चमड़िया हाई स्कूल २१८
इस्लामिया मदर्सा २१६

विषय			पृष्ठ
श्रीकृष्ण पाठशाला	....	....	२२०
राजपूताना अनाथालय	...	....	२२१
शिबनारायण जैन आयुर्वेदिक औषधालय		....	२२४
ज्वालाप्रसाद भरतिया हस्पताल		...	२२६
पिंजरापोल	...	....	२२८
कबूतरखाना	...	...	२३१
जाग्रत जन मण्डल	....	...	२३२
साहित्य-सदन	....	....	२३५

परिशिष्ट ४

डाकखाना और तारघर		...	२३७
फतहपुरके बाहर छोड़ी हुई बीहड़		...	२३८
(१) नवाब की बीहड़	...	....	२३८
(२) कसेरों की बीहड़	....	....	२३६
यन्त्रालय	....	...	२३६

चित्र-सूची

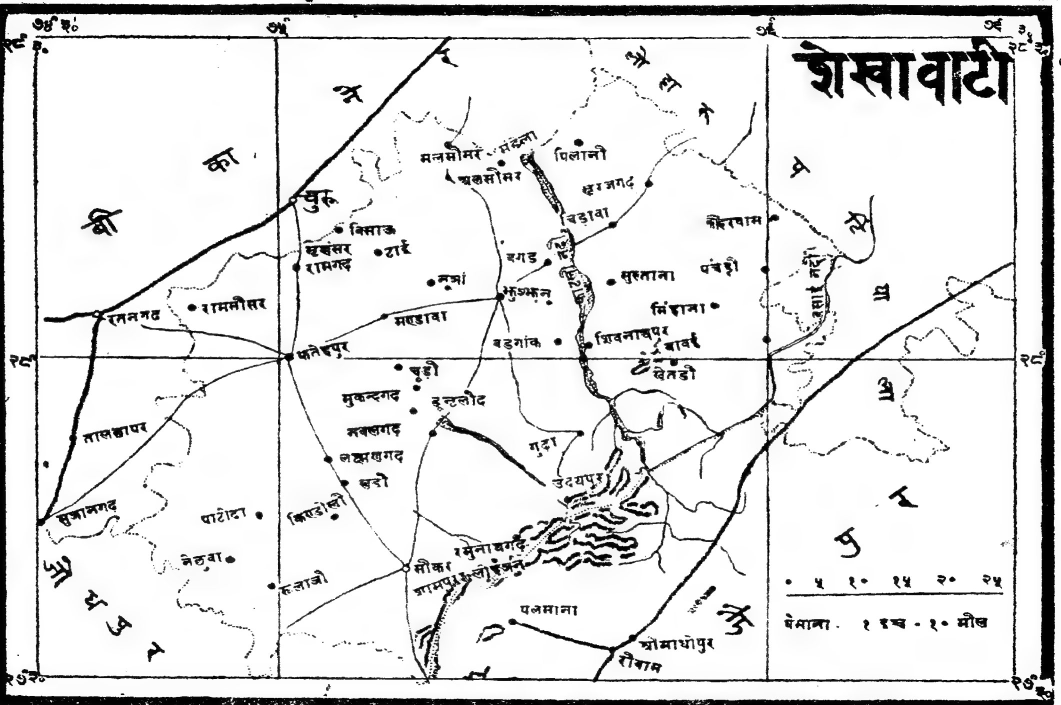
चित्र	पृष्ठ
लेखक	प्रारम्भमें
प्रस्तावना लेखक	,,
शेखावाटी का नकशा	,,
फतहपुर का नकशा	,,
फतहपुर के कुछ भाग का विहंगम दृश्य	विवरणके आसपास
फतहपुर के टीबों का दृश्य	,,
नवाब दौलतखाँ (२)	,,
राव शेखाजी	,,
वर्त्तमान जयपुर-नरेश	,,
वर्त्तमान सीकर-नरेश	,,
महाकवि सन्त सुन्दरदासजी	,,
स्वामी अमृतनाथजी	,,
स्व० सेठ सुखानन्दजी सरावगी	,,
बाबू बासुदेवजी गोयनका	,,
बाबू बजरंगलालजी लोहिया	,,
फतहपुर का किला	,,

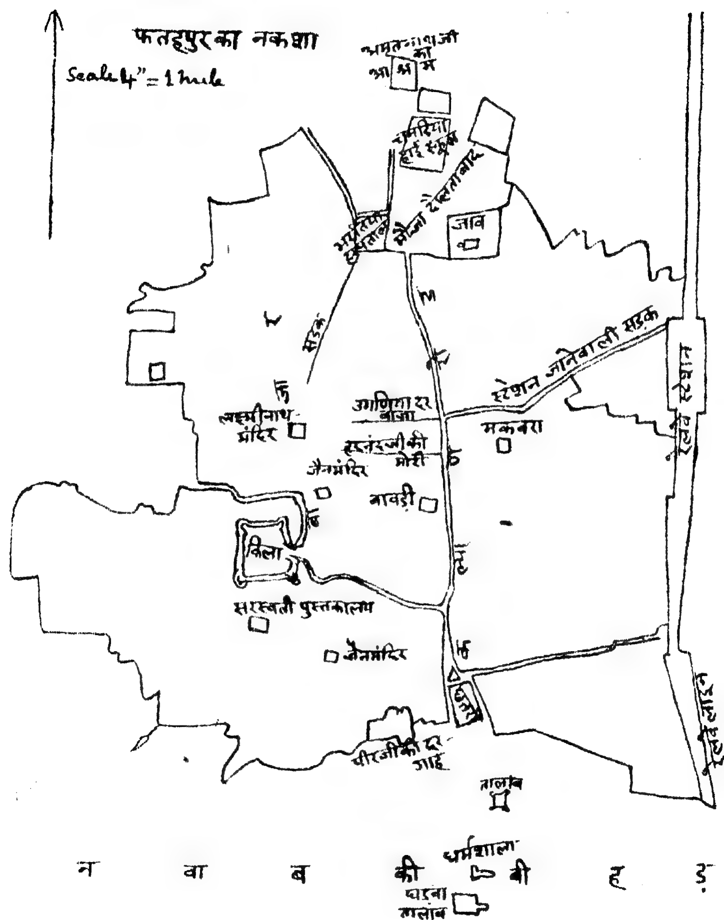
विषय	पृष्ठ
नवाबी बावड़ी	विवरणके आसपास
नवाब अलिफखाँ का मकबरा	"
दिगम्बर जैन मन्दिर	"
लक्ष्मीनाथ-मन्दिर	"
रामगोपालजी की छतरी	"
सरस्वती पुस्तकालय	"
चमड़िया हाई स्कूल	"
भरतिया हस्पताल	"



इतिहासों में अंकित हैं गौरव के मधुमय गान;
इनमें ही तो संचित है इतिहासज्ञों का ज्ञान।
स्मृतियाँ, अतीत की लेकर निर्माण हुए इतिहास;
स्मृतियों से झाँका करता भावी का विमल विकास।

—'**दिनमणि**'


शेखावाटी
चूरू
रतनगढ
फतेहपुर
रामगढ
मंडावा
बडगांव
खेतडी
बावई
सिंघाना
सुलताना
पंचेरी
पिलानी
बडावा
मुकन्दगढ
नवलगढ
लछमणगढ
बटोठ
उदयपुर
सीकर
पलसाना
सुजानगढ
पाटोदा
रामसीसर
चिराना
गुढा
पैमाना १ इंच = १० मील



(डा० हरिसिंहजी विन्द्रा के सौजन्य से प्राप्त)

फतहपुर-परिचय

पहला खण्ड

——::००::——

फतहपुरकी भूगोल के सम्बन्धमें

फतहपुर, राजपूताना* प्रान्तान्तर्गत जयपुर† राज्य के सबसे बड़े 'शेखावाटी'‡ जिलेका बहुत पुराना और बड़ा शहर है। यह

नाम

नवाबी जमानेका बसा हुआ है, नवाब फतहखाँने इसे बसाया था, इससे फतहपुर नाम प्रसिद्ध हुआ।

---

* राजपूताना, रेतीला और पहाड़ी प्रान्त है। मारवाड़, मेवाड़, हाड़ौती, ढूंढार, जादौवाटी, मेवात, मेरवाड़ा और मालानी प्रभृति इसके मुख्य ८ भाग हैं। अर्वली पर्वतकी शृङ्खला इसे दो प्राकृतिक भागोंमें विभाजित कर देती है, जो कि पश्चिमी विभाग और पूर्वी विभाग हैं।

† जयपुर महाराजा सवाई जयसिंहजीने विक्रम संवत् १७८५ में बसाया और अपने नामसे इसका जयपुर नाम प्रसिद्ध किया।

‡ शेखावटी, राजपूतानाके अन्तर्गत जयपुर राज्यका एक बड़ा जिला है। इसकी अवस्थिति ४२०० वर्गमील भूमिपर है। बहुभाग रेतीला है। बारह शहर शेखावाटी में हैं, जिनमें आठ मुख्य हैं।

फतहपुरके उत्तरमें रामगढ़, पूर्वमें मंडावा, दक्षिणमें लक्ष्मणगढ़ सात २ कोस की दूरी पर स्थित हैं; और पश्चिम में पास ही बीकानेर की सीमा है।

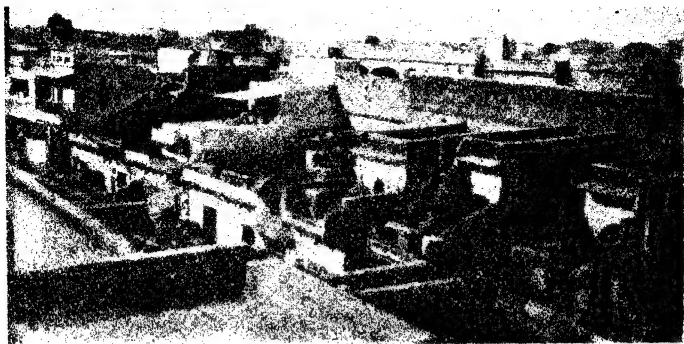
सीमा

उत्तरमें स्वामी अमृतनाथजीके आश्रम से लगाकर, दक्षिणमें स्थित रामगोपालजी की छतरी तक करीब एक मील और पूर्वमें बूबना के कुएँ से लेकर पश्चिममें राजपूताना अनाथालय तक करीब डेढ़ मील फतहपुर का विस्तार है।

विस्तार

फतहपुरकी भूमि रेतीली और बालुकामय है। जहांतहां बालुका के टीले (टीबे) ही टीले, जिन्हें स्थानीय रेतीले पहाड़ कह दें तो बुरा मालूम न होगा, दृष्टिगोचर होते हैं। कहीं २ जङ्गल (रोही) भी हैं, जिनमें झाड़ी, जांट, बबूल, खैर, कंकड़ा, कैर और कीकर के वृक्षोंका ही बाहुल्य होता है। शहरके दक्षिणकी ओर नवाब जलालखाँ की छोड़ी हुई एक बीहड़ भी है, उसमें भी उपर्य्युल्लिखित वृक्षोंका ही अवस्थान है। शहरमें जगह जगह हरित पत्र-परिवृत जाल, पीपल, बड़ और नीम, प्रकृतिकी शोभामें वृद्धि करते हुए, उसे मनोरम बना देते हैं; एवम्, साया भी प्रदान करते हैं, जन-समूहके विश्रामार्थ। बड़ और पीपल तो, सड़क, मन्दिर और धर्मायतनोंमें ही पाये जाते हैं; पर नीम और जाल प्रायः सभी जगह लगे हैं, यहां तक कि कई लोगोंने अपने घरोंमें भी नीम खड़े कर रक्खे हैं।

प्राकृतिक विवरण



फतहपुर के कुछ भागका विहंगम दृश्य



फतहपुर के टीबों का दृश्य

वसन्त ऋतुमें जब प्रायः सब वृक्षोंके पत्ते झड़ कर नये पत्ते और कोंपल निकलती हैं, तब ये अपनी मनोमोहक सुवाससे चतुर्दिक् सुवासित कर देते हैं। उन दिनों वृक्षोंका नूतन वेश-भूषा से परिवेष्टित होना, एक अपूर्व प्राकृतिक सौन्दर्य की सृष्टि करता है।

फतहपुरमें झील, झरना, नदी और पहाड़ न होनेसे प्राकृतिक सौन्दर्य की कमी बताई जाती है; परन्तु मैं उसे नहीं मानता। प्राकृतिक सौन्दर्य की भी कई किसमें हैं। पृथक् २ स्थानों का प्राकृतिक सौन्दर्य भी, अपनी विशेषताओं को लिये हुए पृथक् २ ही होता है।

सूर्योदय के समय बालुका-निर्मित शैल-राशिसे स्पर्शित शीतल वायु शरीरमें स्फूर्तिका संचार करते हुए प्रकृतिकी महत्ता दिखलाता है; और चिड़ियोंका कलरव गान तो उस समय कलकंठवाली कोकिलाके सुमधुर स्वर से बढ़कर मालूम होता है। उस समय प्रकृतिके हाथों द्वारा निर्मित सुन्दर बालुकामय पहाड़ोंमें घूमना तो बड़ाही आनन्द देता है। आनन्दका अनुभव तो प्रकृति सौंदर्यके अनुभवीको ही होता है; अथवा हर रोज उन रेतीले पहाड़ोंमें उपस्थिति देनेवाले को।

छोटे बड़े टीबोंका चढ़ना और उतरना कम आनन्दप्रद नहीं। मूक प्रकृतिका सुन्दर दृश्य तो यहीं देखनेको मिलता है।

मुझे इन टीबोंसे स्वाभाविक प्रेम हो गया है। प्रतिदिन सबेरे

मैं इन बालुकामय टीलोंमें जाकर चक्कर लगाता और प्रकृति-सौंदय का निरीक्षण किया करता हूं।

ऊपर कह आये हैं कि फतहपुरमें बलुकामय टीलेही हैं जो रेतीले पहाड़ कहे जा सकते हैं ; इनके सिवा यहां कोई पहाड़ नहीं है।

पहाड़

यहांसे दक्षिण, पहाड़ोंमें उल्लेखनीय पहाड़ अर्वली पर्वत है। इसकी बड़ी चोटी ३४५० फीट ऊंची है, जो रघुनाथपुरमें है। कई छोटी २ पहाड़ियाँ भी पासमें ही हैं। खेतड़ीके पासमें भी पहाड़ हैं।

यहांसे पासही ७ कोसकी दूरीपर दक्षिणमें लक्ष्मणगढ़की डूंगरी नामक एक पहाड़ी है, जिसे पहले "बेड़" गांवकी पहाड़ी कहते थे। इस पर सीकर * नरेश रावराजा लक्ष्मणसिंहजीने संवत् १८६२ में एक किला बनवाकर उसके नीचे अपने नामसे लक्ष्मणगढ़ बसाया।

फतहपुरमें कोई नदी भी नहीं है। बरसातमें नाले, नदी बहने लगते हैं बरसाती नदी यहांकी रेतीली सड़कोंमें बहकर थोड़ी देर

नदी

बाद वहीं सूख जाती है। काटली नदी शेखावाटी प्रान्त में है, जो खण्डेलेके पहाड़ोंसे निकलती है, साठ मील उत्तरमें जाकर बीकानेर के टीलों में सूख जाती है।

---

* सीकर, शेखावाटीका मुख्य भाग है। इसका राज्य-विस्तार उत्तर दक्षिण ३२ कोस और पूर्व पश्चिम २८ कोस है। सात परगनें हैं, जिनमें मुख्य सीकर, फतहपुर, रामगढ़ और लक्ष्मणगढ़ ४ शहर हैं। राज्यके अधिकारमें गांव और कसबे सब मिलकर ४३० होते हैं। सीकर शहरके चारों ओर चहार दीवारी बनी है। वर्तमान में यह फतहपुरकी राजधानी है।

फतहपुरकी जलवायु स्वास्थ्यके लिये बड़ी लाभप्रद है। यहां का पानी कुएँ गहरे होनेकी वजहसे अच्छा है; क्योंकि पानी जितना ही गहरा होगा, उतनाही अच्छा होगा। यहांकी हवा भी शरीरके लिये अच्छा फायदा पहुंचाती है। गर्मीके दिनोंमें यहां गर्मीका आधिक्य होता है और जाड़ेमें सरदीका। गर्मीके दिनोंमें, गर्मी ११५ डिग्री तक बढ़ जाया करती है; और दिन भर गर्म हवा (लू) चला करती है। जाड़ेमें, नीचेमें ३८ डिग्री तक हो जाती है; और इतनी सरदी पड़ती है कि किसी २ कुएँकी खेल भी जम जाती है।

जलवायु

वर्षा, फतहपुरमें प्रायः कम हुआ करती है। पन्द्रह या सोलह इञ्च तक वर्षा होती है। सिंचाईके साधन नहीं हैं, कारण कुएँ अत्यन्त गहरे हैं। पासकी बीहड़में तीन ३ पक्के जोहड़े भी हैं, जो गर्मीमें सूख जाते हैं।

वर्षा

सिंचाईका काम वर्षा परही निर्भर है। किसी सालमें वर्षा न हो तो दुर्भिक्ष (अकाल) पड़ जाता है। पानी यहांपर बहुत गहरा है, इससे कुएं बनानेमें बड़ा खर्च पड़ता है। स्थानीय धनियों ने जगह २ पर कुएं बनवा दिये हैं; पर वे उपयुक्त स्थानों पर न बनने के कारण उतने काममें नहीं आते, जितने आने चाहिएँ। कहीं तो एकही स्थान पर ३-४ कूएं बनवा दिये जाते हैं; और, कहीं बिलकुल नहीं। कुएं उपयुक्त स्थान ढूंढकर बनवाये जायँ, तो विशेष आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है।

फतहपुरमें सालभरमें एकही फसल होती है। प्रायः गुवाँर, बाजरा, मोठ, मूंग और चौंला ही यहांकी उपज है। खेतीके लिए

पैदावर

जमीन बैल और ऊंटोंसे जोती जाती है। मूली, सौगरी गाजर, बैंगन, मतीरी, तोरई, कांदा, लहसुन, तरिया, टमाटर, धनियाँ, पुदीना, पालक, मेथी और नन्हा शाक इत्यादि तरकारियां यहांके कुओंकी बाड़ियोंमें बहुत होती हैं।

गर्मीके दिनोंमें कैर, सांगर और फोग बहुत आते हैं। बाहर गांववाले, जो आसपासके गांवोंमें रहनेवाले हैं, शहरमें आकर ये चीजें बेच जाते हैं। चौमासेमें मतीरा (तरबूज), और ककड़ी बहुतायतसे आती हैं जो कि बाहर गांववाले अपने खेतोंमेंसे लाकर यहां बेच देते हैं। उन दिनों मतीरा-ककड़ीका यह बाजार, बावड़ी दरवाजा नामक यहांके छोटे बाजारमें, सबेरे ४ बजेसे लेकर १० बजे तक लगता है। उन दिनों यहां ककड़ी, मतीरा लेनेके लिए शहरके लोगोंके ठट्ठके ठट्ठ आ उपस्थित होते हैं; और बाहरसे गांववाले अपने २ खेतोंके मतीरे और ककड़ी लेकर उमड़ आते हैं। इन दिनों रोज सबेरे यह एक मेला-सा लग जाता है; चारों तरफ देखने और खानेमें सुमधुर ककड़ी और मतीरोंसे सजी हुई खारियां ही दृष्टिगोचर होती हैं।

शेखावाटीके मतीरे अच्छे गिने जाते हैं। सुनते हैं, संवत् १६६६ में नवाब अलिफखांके राजत्व-कालमें, सम्राट जहांगीरने शेखावाटीके मतीरोंकी प्रशंसा सुनकर, फतहपुरसे एक मतीरा अपने दरबारमें मंगाया था, जो कि वजनमें ३३॥ सेरका हुआ था।

बरसातमें यहांकी भूमि घाससे आवृत होकर हरित-वसना हो जाती है। इन दिनों गाय, भैंस, बकरी वगैरह इन्हीं स्थानोंमें चरकर अपनी उदर-पूर्ति करके मालिककी सेवामें दूध देनेके लिए आ जाती हैं; और उन्हें दूध देकर अपनी स्वामि-भक्ति और परोपकार का परिचय देती हैं।

फतहपुरमें, सन् १९४१ की मनुष्य-गणनाके अनुसार करीब तेईस सहस्त्र २३००० मनुष्योंकी आबादी है। जिनमें करीब १५००० तो हिन्दू हैं, जो हिन्दू धर्मके अनुयायी हैं; करीब १००० जैन (अग्रवाल, खण्डेलवाल और ओसवाल) हैं, जो भगवान ऋषभदेव द्वारा प्रचारित जैन धर्मके सिद्धान्तोंको माननेवाले हैं; करीब ७००० के मुसलमान हैं, जो मुहम्मद पैगम्बरके धर्मोपदेशों पर चलनेवाले हैं।

आबादी

फतहपुरीय अधिकतर लोग (जाट, माली, गूजर वगैरह) खेती करनेवाले हैं। वे लोग भेड़, बकरी, गाय, भैंस, ऊँट वगैरह भी पालते हैं और उनसे अपनी जीविकोपार्जन का काम लेते हैं। उनमेंसे बहुतसे मेहनत मजदूरी और नौकरी करके भी अपना पेट भरते हैं। व्यापार करनेवाले महाजन लोग यहांसे विदेश जाकर विविध प्रकारका व्यापार किया करते हैं। उनमें से कई नौकरी और दलाली भी करते हैं; और कई पूंजीपतियोंकी चापलूसी करके ही किसी तरह अपने उदर-गह्वरकी पूर्ति करके जिन्दगीके दिन पूरे करते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो कि केवल यजमान-वृत्ति पर ही अवलम्बित रहते हैं; ऐसे लोग ब्राह्मण बोले

पेशा

जाते हैं। इनके सिवा अन्य जातियां अपना जातीय पेशा करती हैं, जैसे धोबी, तेली, खाती, कुम्हार, नाई, लुहार और सुनार इत्यादि।

कारीगरी

फतहपुरके पासके बाहर गांवोंमें ऊन बहुत होती है। गांवके लोग इसका कम्बल और कामला बनाकर लाते हैं और बेच जाते हैं। यहांके बंधेजदार ओढ़ने भी अच्छे रँगे जाते हैं।

भाषा

फतहपुरस्थ लोगोंकी भाषा राजस्थानी है। ये लोग इसीमें अपना हिसाब-किताब रखते हैं। राजस्थानी भाषाके अक्षर बिना मात्राके होते हैं। जो मुड़िया या सराफी बोले जाते हैं। ये अक्षर लिखनेमें गोल होते हैं। अक्षरोंके मात्रा-विहीन होनेसे इस भाषाकी लिखावटको बिना अभ्यासवाला नहीं पढ़ सकता। राजस्थानी बोली बोलनेमें बड़ी मीठी और सुन्दर मालूम होती है।

शिक्षा

लोगोंका ध्यान दिन-प्रतिदिन शिक्षाकी उन्नतिकी ओर बढ़ता जाता है। जो लोग पहले शिक्षाको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते थे, वे ही आज यहां शिक्षाके लिए अपना प्रेम-प्रदर्शन कर रहे हैं, जिसके फलस्वरूप आज कई पाठशालाएँ फतहपुरमें विद्यमान हैं।

पहले लोग अपने बालकोंको ब्राह्मण गुरुओंके पास भेज देते थे, स्वयं जिनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर था। वे लोग उनको पट्टी-पहाड़ा और मुड़िया अक्षर सिखाकर अपने कर्तव्यकी इतिश्री कर देते थे। इस तरह लड़के संसारके ज्ञानाम्बुधिकी एक भी बूँद पान न कर सकते थे।

प्रारम्भमें संवत् १९५१ में मास्टर श्यामलालजी यहां आये और बड़े बाजारमें एक चौबारा किराये पर लेकर उसमें private-school स्थापित की, जिसमें उन्होंने लड़कोंसे ॥) आठ आना महीना लेकर महाजनी, हिन्दी और अंग्रेजी पढ़ाना शुरू किया। थोड़े दिन उक्त चौबारेमें पढ़ाया ; बादमें टीकूरामजी केजड़ीवालके नोहरेमें पढ़ाते रहे। तदनन्तर हुकमीचन्दजी चौधरीने अपने नोहरेमें एक पाठशाला खुलवाई, जिसमें अयोध्याप्रसाद नामक एक ब्राह्मण मास्टर अध्यापन करते थे। संवत् १९५६ में स्थानीय कुछ उत्साही सज्जनों (गंगाप्रसादजी मोतीका, पूर्णमलजी सरावगी "मेरे पूज्य पिता", रामपालजी सरीफ) ने मिलकर सेठ हरनन्दरायजीके कुएंके पास एक सरावगीकी हवेलीमें आर्य पाठशाला खोली जो लगभग १० वर्ष तक जीवित रही होगी। पहले तो जिन लोगोंने आर्यपाठशाला खोलनेका उत्साह दिखलाया था, वे ही पढ़ाते रहे; बादमें रामनारायण नामके एक मास्टरको पढ़ानेके लिए रख लिया।

शिक्षाकी तरफ लोगोंका ध्यान बढ़ता गया यहां तक कि कुछ समय बाद स्थानीय सेठोंने स्कूलें स्थापित करके अपनी उदारताका परिचय दिया। स्थापित स्कूलोंमेंसे सिर्फ नेवटिया स्कूल अर्थकी कमीके कारण बन्द हो गयी। दो पुस्तकालयोंका भी उद्घाटन किया गया, एक तो सरस्वती पुस्तकालय, जो वासुदेवजी गोयनका और बजरंगलालजी लोहियाके सदुद्योगका सुफल है। दूसरा दिगम्बर जैन पुस्तकालय, जिसका जन्म सज्जनत्रय (श्रीनिवासजी सरावगी, पूर्णमलजी सरावगी "मेरे पूज्य पिता", ठाकरसीदासजी सरावगी)

के हाथोंसे हुआ; परन्तु स्थानीय कुछ अपढ़ जनोंको यह काम न रुचा। वे लोग इसे आर्यसमाजियोंकी संस्था बतलाते थे, और हाथ धोकर इसके पीछे पड़े हुए थे; जिसके फलस्वरूप उक्त संस्थाका सदाके लिए अन्त होगया।

वर्तमानमें यहां ४ अंग्रेजी स्कूल। (२ अपर प्राइमरी, १ मिडिल और १ मैट्रिक), १ संस्कृत विद्यालय, २ कन्या-पाठशालाएँ, १ हरिजन पाठशाला, १ खातियोंकी पाठशाला, १ मुसलमानोंका मदर्सा, और ४ पुस्तकालय हैं।

दर्शनीय स्थान

फतहपुरका किला, नवाबी बावड़ी, अलिफखां नवाबका मकबरा, रामगोपालजी गनेड़ीवालाकी छतरी और सरस्वती पुस्तकालय इत्यादि फतहपुरकी दर्शनीय इमारते हैं।

रेल और मोटर

संवत् १९९६ तक फतहपुरमें रेलवे स्टेशन न थी। उस समय तक यहांसे आस पासके गांवोंमें मोटर तथा लारियां ही आया जाया करती थीं। अब चैत्र कृष्णा १४ संवत् १९९६ (६ अप्रैल १९४०) से जयपुर स्टेट रेलवेकी ओरसे सीकरसे लक्ष्मणगढ़ होती हुई फतहपुर तक रेलवे लाइन खोल दी गयी है, तबसे फतहपुरमें रेलवे स्टेशन हो गयी है। रामगढ़को रेलवेकी मोटर लारी जाती-आती है।

सिक्का

फतहपुरके नवाबोंका कोई अलग सिक्का नहीं था, इससे यहाँ उस समय बादशाही सिक्केका ही प्रचलन रहा। शेखावतोंके शासन-कालमें सीकरमें टकसाल खुली और सीकरका रुपया जारी हुआ, जिसमें भी मुगल बादशाहका ही

नाम लिखा रहता था। यह सिक्का संवत् १९७८ (सन् १९२१) तक उपयोगमें आता रहा। इसके बादसे यहाँ ब्रिटिश गवर्नमेण्टके सिक्के का प्रचलन चला आता है।

जिन दिनों फतहपुरमें नवाबी राज्य था, उन दिनों राजधानी होनेका गौरव भी इसे ही प्राप्त था। उस समय इसका राज्य-

राजधानी

विस्तार बहुत दूर तक फैला था, ऐसा सुना जाता है; परन्तु कहां तक था ऐसा अवगतिमें नहीं आया। संवत् १७८८ से सीकर, फतहपुरकी राजधानी है। राव शिवसिंह जीके समयसे ही यह सीकरके अन्तर्गत है। वर्तमानमें रावराजा-कल्याणसिंहजी सीकरके शासक हैं।

दूसरा खण्ड

——::**::——

शेखावटीकी भूमि और उसका शासन

शेखावाटी, राजपूताना प्रान्तके जयपुर राज्यका एक बड़ा जिला है, जिसके अन्तर्गत सीकर, फतहपुर, लक्ष्मणगढ़, रामगढ़, झुंझुनू, नवलगढ़, उदयपुर, खेतड़ी, बिसाऊ, चिड़ावा, मँडावा और सूरजगढ़ आदि १२ शहर हैं। इस जिलेका शासन वर्त्तमानमें सूर्यवंशी क्षत्रियोंकी कछवाहा शाखाके शेखावत राजपूतों * के हाथ में है। इन्हींके पूर्वज शेखाजी † के नामसे इस जिलेका नाम भी शेखावटी प्रसिद्ध हुआ! इससे पहले, जब कायमखानी नवाबोंका शासन था, शेखावाटीकी यह भूमि, फतहपुरवाटी और झुंझुनूवाटीके नामसे प्रसिद्ध थी।

शेखावाटीका विस्तार ४२०० वर्गमील भूमि पर है। बहुभाग रेतीला है, जहाँ बालुकामय रेतीले पहाड़ोंका बाहुल्य है।

इस बालुकामय रेतीली भूमिके सम्बन्धमें भारतवर्षके ख्यातनामा विविध भाषा-विज्ञ, ऐतिहासिक एवं पुरातत्त्व-वेत्ता पं० गौरीशंकर

---

* शेखावत राजपूतों के सम्बन्धमें इसी पुस्तकके चौथे खण्डमें पढ़िये।

† शेखाजीके विषयमें भी चौथे खण्डमें देखिये।

हीराचन्द ओझा ने अपने ग्रन्थ "राजपूतानाका इतिहास" में लिखा है—"राजपूतानेमें जहाँ अब रेगिस्थान है वहाँ पहले समुद्र लहराता था, परन्तु भूकम्प आदि प्राकृतिक कारणोंसे उस भूमिके ऊँची हो जानेपर समुद्रका जल दक्षिणमें हटकर रेतेका पुंजमात्र रह गया जिसको पहले मरुकान्तार भी कहते थे। अब भी वहाँ सीप, शङ्ख, कौड़ी आदिका परिवर्त्तित पाषाणरूप (Fossils) में मिलना इस कल्पनाको पुष्ट करता है।"

इसीसे मिलता-जुलता, इसी विषयका दूसरा उद्धरण, श्री० जगदीशसिंहजी गहलोत लिखित राजपूतानेके इतिहासका है, जो इस प्रकार है—"जो प्रदेश इस समय राजपूताना कहलाता है, वह रामायण कालके पूर्व समुद्र जलसे ढका हुआ था। भूगर्भ वेत्ता भी इस बातसे सहमत हैं; क्योंकि अब तक यहांपर सीप, शङ्ख, कौड़ी आदि सामुद्रिक पदार्थ मिलते हैं।"

उपयु लिखित उद्धरणों से यह अनुमान होता है कि समस्त राजपूताना की भूमि, जो अब मरु भूमि है, पहले विशाल वारिधिकी अशेष जल-राशिसे आवृत थी। समयके परिवर्तनके साथ प्राकृतिक कारणोंसे समुद्रका मरुभूमिमें परिवर्त्तित हो जाना, आश्चर्य की बात नहीं है, बहुत-कुछ सम्भव है। इस मरुभूमिके अंतर्गत हमारा शेखावाटी जिला भी आ जाता है।

शेखावाटी, महाभारतके समयमें महाराजा-विराटके विराट वैभव-पूर्ण साम्राज्यके अन्तर्गत रहा है। इसके बादका इसका करीब २५०० ढाई हजार वर्षका इतिहास, वि० संवत् से २६४ वर्ष पूर्व

(ईसवीपूर्व ३२१) तकका, नहीं मिलता है, जो संभवतः नष्ट हो चुका है। वि० संवत् २६४ वर्ष पूर्वका काल मौर्यवंशियोंके शासनका प्रारम्भ काल है। इस वंशमें सम्राट चन्द्रगुप्त और अशोक प्रसिद्ध शासक हुए। तत्पश्चात् यहाँ क्रमशः गुप्त, हूण, गुर्जर, वैश्य, मौर्य (शाखा), चौहान और जोरवंशके शासकोंका अधिकार रहा।

सोलहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें कायमखानियोंने जोरवंशी राजपूतोंसे शेखावाटीका अधिकार छीन कर, अपनी सल्तनत कायम कर ली। संवत् १७८७ तक इनका यहाँ अधिकार रहा। इसके बादसे अब तक शेखावत राजपूतोंका आधिपत्य शेखावाटी पर चला आ रहा है।

प्राचीन फतहपुर

फतहपुरके प्रथम नवाब फतहखांने (संवत् १५०८ में) फतहपुरको आबाद करनेके अनन्तर, उसको चहारदीवारीसे सुरक्षित किया था। जबतक शहरकी आबादी परिमित रही तब तक उस चहारदीवारीकी सीमा पूर्ववत् बनी रही; पश्चात् कालान्तरमें जनसंख्या एवं गृह-संख्याकी बृद्धि होनेसे वह स्थान-स्थानसे भंग हो गयी।

चहारदीवारीसे घिरे हुए तत्सामयिक फतहपुरकी चारों दिशाओं में ४ मुख्य दरवाजे थे, जिनमेंसे उगणिया दरवाजा अब तक मौजूद है। इनके अतिरिक्त, संभव है, और-और भी छोटे दरवाजे उस समय रहे होंगे।

उस समयकी बनी हुई इमारतोंमें से फतहपुरका विशाल दुर्ग, जैन-मन्दिर, गंगानाथजीका मन्दिर और बोहगुणका कुआँ आज तक विद्यमान हैं।

फतहपुरके तृतीय नवाब दौलतखाँ (१) के समयमें बना हुआ लक्ष्मीनाथका मन्दिर; सातवें नवाब अलिफखाँके वक्तकी बनी बावड़ी, तथा सुन्दरदासजीका मठ और उन्हींके पुत्र आठवें नवाब दौलतखाँ (२) द्वारा उनके शव पर निर्मापित मकबरा इत्यादि इमारतें भी अब तक स्थित हैं। *

उपरिलिखित "बावड़ी" का स्थान दुनियाके सत्रह आश्चर्योंमेंसे है। नवाबी जमानेमें इसके चारों ओर एक वृहदाकार वाटिका थी; शायद उसीमें प्रवेश करनेका जो द्वार था वही बावड़ी दरवाजा कहलाया, जो खँडहरके रूपमें अभी कुछ दिन पहले तक मौजूद था। इस सम्बन्धमें यहां सविस्तार लिखना अनावश्यक है।

नवाबी जमानेकी बनी हुई ऊपर उल्लेख की गयी इमारतोंके अतिरिक्त उस समयके निम्नांकित कुएँ भी फतहपुरमें मौजूद हैं।

* इन प्राचीन इमारतोंका सविस्तार विवरण, आगे इसी पुस्तकके छठे खण्डमें यथास्थान दिया गया है। सिर्फ बोहगुणके कुएँके विषयमें तीसरे खण्डमें (नवाब फतहखांके विवरणके अन्तर्गत) और गंगानाथजीके मन्दिर और सुन्दरदासजीके मठके विषयमें पांचवें खण्डमें (क्रमशः योगिराज संत गंगानाथजी और कविवर संत सीखजनजीके विवरणके अन्तर्गत) पढ़िये। सुन्दरदासजीके मठका उल्लेख "दादूपन्थियोंके स्थान" के नामसे किया गया है।

रघुनाथपुराका कुआँ, नूयाँका कुआँ, कसाइयोंका कुआँ, जादूका कुआँ, सरावगियोंका कुआँ, चौहानका कुआँ, राठौड़का कुआँ, बड़ा कुआँ, शायाँ मुहम्मदका कुआँ, शेखका कुआँ, उगणिया कुआँ ठठेरोंका कुआँ धोबियोंका कुआँ और महासिहका कुआँ। *

---

* इन प्राचीन कुओंमेंसे कइयोंके विषयमें संक्षिप्त उल्लेख, इसी पुस्तककी पाद-टिप्पणियोंमें यत्र-तत्र प्रसंगवश किया गया है।

तीसरा खण्ड

—::**::—



चौहानोंसे कायमखानी

कायमखानी जातिका प्रवर्तक हिसारका नवाब कायमखां था। नवाब कायमखांका जन्म तो राजपूत चौहान * जातिमें हुआ था, परन्तु बादमें वह मुसलमान बना लिया गया।

हिसारके फौजदार सैयद नासिरने जब संवत् १४४० में ददरेरा† पर, बादशाह फीरोजशाह तुगलककी अनुज्ञा पाकर आक्रमण करके उसपर विजय प्राप्त की, तब ददरेरा-निवासियोंने भागना शुरू किया। उस समय ददरेरामें सैयद नासिरको एक लड़का हाथ लगा, वह उसे हिसार ले आया और मुसलमान धर्ममें दीक्षित करके उसे मुसलमान बना लिया।

---

* चौहान, एक राजपूत जाति है। तंवरोंके बाद चौहानोंका ही शासन दिल्ली पर रहा। मारवाड़ में भी कई जगह इनका राज्य था। मुसलमान बादशाहोंके जमाने में बहुत से चौहान, मुसलमान बना लिये गये, जिनमें कायमखानी और खानजादे मुख्य हैं।

† ददरेरा, राजगढ़ (शेखावाटी) परगनेमें (राजगढ़ से ८ कोस पश्चिम) बीकानेर से १०० कोस पूर्वमें और फतहपुर, झुंझुनू से दक्षिण में है। यहां चौहानोंका ही राज्य था।

यही लड़का कायमखां नामसे प्रसिद्ध हुआ। यह ददरेराके चौहान सरदार मोटेरावका लड़का था, नाम इसका करमसी (कर्मसिंह) था। सैयद नासिरने इसे मुसलमान बनाकर "करमसी" नाममें परिवर्तन करके इसका नाम "कायमखां" ऐसा प्रसिद्ध किया।

दिल्लीपति बादशाह फीरोजशाह तुगलकने सैयद नासिरके मरने पर कायमखांकी योग्यता और वीरता पर मुग्ध होकर उसे हिसारका नवाब बना दिया था। उसीके वंशधर कायमखानी कहलाते हैं।

बादमें कायमखांके ही दो भाई-और मुसलमान बनाये गये, जो "जेनुद्दीन" और "जबरुद्दीन" कहलाये। जेनुद्दीनके वंशज "जेनदान" और जबरुद्दीनके "जबवान" कहलाने लगे। वर्तमानमें इन दोनोंके वंशधरोंको भी कायमखानी कहा जाता है।

खानखाना नवाब कायमखाँ

(हिसारका शासक)

(संवत् १४४१ से १४७५ तक, तदनुसार सन् १३८४ से १४१८ तक)

ददरेराके राजा मोटेराव चौहानका लड़का, संवत् १४४० में हिसारके फौजदार सैयद नासिर द्वारा मुसलमान बनाया जाकर कायमखां नामसे प्रसिद्ध किया गया। सैयद नासिरने ददरेरासे लाकर उसे अपने ही पास रक्खा और लड़केकी तरह भरण पोषण किया था।

फीरोजशाह तुगलकने सैयद नासिरके मरनेके बाद संवत् १४४१ में कायमखांको हिसारका नवाब बनाया, क्योंकि वह पहलेसे ही उसके गुणों पर मुग्ध था। नवाब हो जानेपर कायमखांका प्रताप दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया, यहां तक कि बादशाही दरबारमें भी दबदबा हो गया। प्रायः सभी उससे आशंका मानने लगे।

नवाब कायमखांको खानखानाकी उपाधि भी प्राप्त थी। उसने ७ स्त्रियाँ विवाही थीं, जिनसे ताजखां, मुहम्मदखां, अखतियारखां (अक्खनखां), अहमदखां; कुतुबखां (कद्दनखां) और मोहनखां इत्यादि क्रमशः ६ लड़के पैदा हुए।

बादशाह फीरोजशाह तुगलकका देहावसान संवत् १४५५ में हो जानेके बाद दिल्लीकी बादशाहत अस्थिरावस्था में ही रही। २६ वर्षमें ७ बादशाह दिल्लीके हो गये।

फीरोजशाहके बाद ८वां बादशाह सैयद खिजरखां था। नवाब कायमखांके प्रताप-सूर्यकी प्रखर किरणोंके तापको वह सहन न कर सका। उसका पराक्रम देखकर वह दंग रह गया और उससे भय-भीत होकर संवत् १४७५ में दिल्लीके किले पर से उसे यमुना नदीमें ढकेल दिया, बूडने पर उसका प्राणान्त होगया।

नवाब कायमखांके लड़के अहमदखांको तो, उसके (पिताके) साथ ही यमुनामें ढकेल दिया गया। ताजखां और मुहम्मदखांको हिसार से निकाल दिया गया। दो वर्ष बाद जब खिजरखां मर चुका, तब वे हिसारमें आकर राज्य करने लगे। ताजखां और फतहखांके क्रमशः वहां २६ और ५ वर्ष राज्य करनेके बाद वे लोग (मुहम्मदखां

और फतहखाँ) हिसार छोड़कर चले आये और मरुभूमि * में आकर दो नवीन शहर, जिनके निमित्त तैयारियां पहलेसे ही की जा रही थी, आबाद किये, जो झुंझुनू और फतहपुर थे। इनकी संतानने फतहपुर और झुंझुनूमें संवत् १७८७ तक नवाबी की। बादमें शेखावत राजपूतों द्वारा ये दोनों शहर, फतहपुर और झुंझुनूके अन्तिम नवाबों (कामयाबखां और रुहेलखाँ) से ले लिये गये, तबसे वे फतहपुर और झुंझनूसे हाथ धो बैठे।

कायमखाँके वंशज—कायमखानी अब विशेषतः मारवाड़, शेखावाटी, हांसी, हिसार, नारनोल और दक्खिन हैदराबाद में बसते हैं।

---

* शुष्क देश, अर्थात् रेगिस्थान से भरी भूमि को मरुभूमि कहते हैं।

"राजपूतानेमें जहां अब रेगिस्थान है वहां पहले समुद्र लहराता था, परन्तु भूकम्प आदि प्राकृतिक कारणोंसे उस भूमिके ऊँची हो जाने पर समुद्र का जल दक्षिणमें हटकर रेते का पुंज मात्र रह गया जिसको पहले मरुकान्तार भी कहते थे। अब भी वहां सीप, शंख, कौड़ी आदिका परिवर्तित पाषाणरूप (Fossils) में मिलना इस कल्पना को पुष्ट करता है।"

—राजपूताना का इतिहास

(पहला भाग)

नवाब ताजखाँ (१)

(हिसारका शासक)

(संवत् १४७७ से १५०३ तक, तदनुसार सन् १४२० से १४४६ तक)

संवत् १४७५ में नवाब कायमखाँ के मरनेपर खिजरखाँ ने ताजखाँ और मुहम्मदखाँको हिसारसे निकलवा दिया। वे जाकर जैसलमेर और नागौरमें रहने लगे। जब संवत् १४७७ में खिजरखाँ मर गया, तब वे फिर हिसार लौट आये और शासन करने लगे।

बड़ा लड़का होनेके कारण ताजखाँको पिताके तख्तका अधिकार प्राप्त हुआ। मुहम्मदखाँ शासन-कार्यकी व्यवस्था करता रहा।

हिसारका राज्य करते हुए दोनों भाइयों ने हिसारके इधर उधर कई लड़ाइयाँ लड़ीं, जिनसे उनके राज्यका बढ़नेकी बजाय ह्रास ही हुआ।

इधर जब ताजखाँ हिसारका नवाब हुआ तो उधर मुबारकशाह खिजरखाँके बाद दिल्लीके तख्त पर बैठा, परन्तु नवाब ताजखाँ और उसके भाई मुहम्मदखाँ ने दिल्लीपति की आधीनता में रहना स्वीकार न किया।

दिल्लीके बादशाह मुबारकशाह ने ताजखाँ और मुहम्मदखाँके आधीन न होनेसे उनपर अपनी दृष्टिको कड़ी बनाये रखा, परन्तु दोनों ही प्रबल शक्तिशाली थे, उन्होंने उसकी कुछ परवाह न की, इससे मुबारकशाहके साथ उनका मन-मुटाव हो गया।

संवत् १४६० में जब दिल्लीमें भयङ्कर उपद्रव मचा, उसमें ताजखाँ और मुहम्मदखाँ ने मुबारकशाहके मन्त्रियोंसे मिलकर उसे मरवा डाला। इन मन्त्रियोंमें से एक मन्त्री और ताजखाँ भी आहत हुए परन्तु उचित उपचार से कुछ ही समयमें ताजखाँ स्वस्थ हो गया।

तदनन्तर १३ वर्ष-और स्वतन्त्रतापूर्वक राज्य करके नवाब ताजखाँ संवत् १५०३ में मर गया।

१—नवाब फतहखाँ

(संवत् १५०३ से १५३१ तक, तदनुसार सन् १४३६ से १४७४ तक)

हिसार में—	फतहपुर में—
संवत् १५०३ से १५०८ तक	संवत् १५०८ से १५३१ तक
सन् १४४६ से १४५१ तक	सन् १४५१ से १४७४ तक

जब नवाब ताजखाँका देहान्त संवत् १५०३ में हो गया, तब फतहखाँ हिसारकी गद्दी पर आसीन हुआ। उसने भी अपने पिता की तरह हिसारके पास कई लड़ाइयाँ लड़कर अपने राज्यको कमजोर बना लिया।

फतहखाँ बुद्धिमान होते हुए साथमें बहादुर भी था। उसने हिसारके आसपास अपनी राज्यवृद्धिके लिये जो लड़ाइयाँ लड़ीं, उनमें भी कुछ कम वीरतासे काम न लिया, बल्कि पूर्ण वीरता प्रदर्शित की। यह प्रारब्धका ही फेर था जो वह, उन लड़ाइयोंमें सफलीभूत न हुआ और अपनी राज्यवृद्धि करनेमें असमर्थ रहा।

राज्यका वृद्धिगत होनेकी बजाय क्षीणताको प्राप्त होना, फतहखाँ को सहन न हो सका। वह खिन्न मन रहने लगा, यहाँ तक कि उसको अपना जीवन भी भाररूप हो गया था। दुखित चित्त होकर उसने अपने मुसाहिब और मित्रवर्गको बुलवाया। उनके सामने अपनी दुखितावस्थाके रोने रोये एवं समयोपयोगी सलाह मांगी। उन लोगोंने विचारपूर्वक यह सलाह दी कि कोई नया शहर आबाद किया जाय, जिसमें कि आपके जीवनकी घड़ियाँ सुख-पूर्वक कटें।

उनकी सलाह मानकर मुहम्मदखाँ * और फतहखाँ दोनोंने ही दो नवीन शहर बसानेकी ठान ली। फतहखाँने "रिणाऊ" नामके गांव (जो फतहपुरसे दक्खिनमें ३ कोसके फासले पर स्थित है) में रहकर संवत् १५०६ † में किला बनवाना आरम्भ किया, जो करीब २ वर्षमें बनकर तैयार हुआ होगा।

अपने पिताकी बातको ध्यानमें रखते हुए नवाब फतहखाँने भी दिल्लीके बादशाहके अधीन रहना अस्वीकार किया। वह स्वाधीनता-

---

* मुहम्मदखाँने जूझा नामके जाट से सलाह करके उसकी ढ़ानी को शहर का रूप दिया। शहर का नाम जूझा के ही नाम से जूझनू (बाद में झुंझुनू बन गया) रक्खा।

† इस विषयमें एक पुराने दोहे का मिम्नांकित अर्द्ध भाग मिलता है :—
"पंदरह सौ छः साल शुभ बस्यो फतहपुर शहर"

पूर्वक राज्य करता रहा। उसके समयमें दिल्लीका बादशाह अला-उद्दीन सैयद हुआ, जिसको उसने उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा।

सैयद बादशाहोंकी बादशाहत शुरूसे अन्त तक कमजोर ही रही। पीढ़ी दर पीढ़ी कमजोरी बढती गई। उनकी कमजोर बादशाहत पर वहलोल लोदीकी दृष्टि पड़ी। उसने संवत् १५०७ में अलाउद्दीन सैयदसे दिल्ली छीनकर उसपर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। राजे और नवाब जो दिल्लीका स्वामित्व न मानकर स्वतन्त्रतापूर्वक रहने लगे थे, उन्हें अपने अधीन करनेकी कोशिशें होने लगीं। उस समय वह, हिसारको किस प्रकार छोड़ सकता था? हिसार पर भी चढ़ आया और मुहम्मदखाँ और फतहखाँको निकाल बाहर किया।

मुहम्मदखाँ और फतहखाँ हिसार छोड़कर चले आये। फतहखाँ अपने किले (जो पहले से ही बनाया जा रहा था) में आ गया। जिस समय वह आया, उस समय किला प्रायः तैयार हो चुका था।

संवत् १५०८ चैत सुदी ५ को नवाब फतहखाँ ने किले में प्रवेश किया और शहरको आबाद करके अपने नामसे "फतहपुर" नाम रक्खा। इस तरह वह फतहपुरका राज्य करने लगा।

जब नवाब फतहखाँ फतहपुरका राज्य कर रहा था, तब बादशाह वहलोल लोदीने जैतूर (पंजाब) पर चढ़ाई की। नवाब फतहखाँ ने इसको बादशाहके राजी करनेका एक अच्छा अवसर समझा।

वह फतहपुरसे एक बड़ी सेना लेकर जैतूर जा पहुंचा और वहाँ पर बड़ी वीरतासे लड़कर बादशाहको संतुष्ट कर दिया।

जिस समय नवाब फतहखाँ जैतूरकी लड़ाईमें गया हुआ था, उस समय उसकी अनुपस्थितिमें कांधल (जोधा "जोधपुर बसाने वाला" का भाई) ने फतहपुर पर चढ़ाई की। बोहगुण (नवाब की सेनाका एक सेनापति) ने कांधलका सामना किया। फतहपुर से ८ कोस दक्षिण अलखपुरामें भयङ्कर लड़ाई हुई। बोहगुण बड़ी वीरतासे लड़ा, निदान लड़ते लड़ते उसका शिर कटकर भूमिपर गिर पड़ा। इस तरह बोहगुण मारा गया। उसकी लाश फतहपुर लायी गयी और किलेकी पश्चिमकी बुर्जके नीचे एक जांटके पेड़के नीचे दफन की गई। वह जांटका पेड़ और कब्र आज तक वहां मौजूद हैं। पासमें एक कुआँ भी है, जिसको लोग बोहगुणका कुआँ कहते हैं। एक कब्र अलखपुरामें भी बनी, जिसमें बोहगुण का शिर दफनाया गया था, वह भी आज तक बनी हुई है।

नवाब फतहखाँ, जब लड़ाईसे लौटकर आया तो उसने अलखपुरा की लड़ाई की सारी बातें सुनीं। सुनकर बड़ा खुश हुआ, साथमें दुःखी भी। नवाबके खुश होनेका कारण तो बोहगुणकी वीरता और दुःखी होनेका कारण, उसका मारा जाना था।

नवाब फतहखाँने बड़ी योग्यतापूर्वक २२ वर्ष तक फतहपुर का शासन किया। वह बड़ा वीर और साहसी था। रात, दिन राज्यकी वृद्धि करनेमें लगा रहता था। संवत् १५३१ तक राज्य करके मृत्युको प्राप्त हुआ।

२—नवाब जलाल खाँ

(संवत् १५३१ से १५४६ तक, तदनुसार सन् १४७४ से १४८९ तक)

नवाब फतहखाँ की मृत्यु होनेपर संवत् १५३१ में उसके पुत्र जलालखाँको फतहपुरकी गद्दीका अधिकार प्राप्त हुआ। गद्दीपर बैठतेही उसने अपने नामसे "जलालसर" गांव, फतहपुर से दक्षिणमें ३ कोस की दूरी पर बसाया।

नवाब जलालखाँ राजनीति अच्छी जानता था और अपने पिताकी तरह युद्ध विद्यामें भी निपुण था।

अपने राजत्वमें नवाब जलालखाँ ने किलेमें महल और मकान भी बनवाये। शहरके दक्षिणकी ओर एक बीहड़ पशुओंके चरनेके लिए १२ कोसके घेरमें छोड़ी, जो पशु पक्षियोंके लिए एक आराम का स्थान है।

वह बीहड़ आज भी नवाबके दयालु हृदयका स्मरण करा देती है। पशु-पक्षी अपनी सुधासे उपमित ध्वनिमें सबेरा होते ही बीहड़ स्थित वृक्ष-लताओंपर नवाब जलालखाँके गुणगान किया करते हैं; और गाय, भैंस, बकरी आदि पशु अपनी उदरपूर्ति करके "डायँ डायँ" ध्वनिमें नवाबको आशीर्वाद देते हुए आनन्दके गीत गाया करते हैं। इससे पता चलता है कि जलालखाँ अमरकीर्ति है।

नवाब जलालखाँके ४ औरतें थीं, जिनसे अहमदखाँ, नूरखाँ, फरीदखाँ, दौलतखाँ, निजामखाँ, बहारखाँ दाउदखाँ, एमनखाँ, लाडखाँ और दरियाखाँ आदि १० लड़के हुए।

संवत् १५४६ तक राज्य करके नवाब जलालखाँ परलोक बासी हुआ।

३—नवाब दौलतखाँ (१)

(संवत् १५४६ से १५७० तक, तदनुसार सन् १४८९ से १५१३ तक)

नवाब जलालखाँके वाद उसका चौथा लड़का दौलतखाँ, संवत् १५४६ में गद्दीपर बैठा। उसने फतहपुरके उत्तरकी ओर अपने नामसे "दौलताबाद" नामका एक गांव बसाया, जो बादमें फतहपुर में सम्मिलित होनेके कारण, वर्तमानमें उसीका एक मुहल्ला (quarter) है।

नवाब दौलतखाँ को लोग दरदौलतखाँ भी कहा करते थे। वह इतना बहादुर था कि उसको जीतना किसीके लिये सहज न था, साथमें बुद्धिमान भी था, जिससे वह पहलेही उत्तम रीतिसे सोच लेता था। दानी और भक्त भी था। फकीरी करामातोंमें वह बहुत अधिक विश्वास रखता था, इससे करामात दिखानेका बहाना करनेवाले फकीर बराबर उसके दरवारमें आया जाया करते थे।

नवाब दौलतखाँने निम्न लिखित ३ सिद्धान्त बना रक्खे थे :—
(१) ईश्वरसे हरवक्त डरना चाहिए। (२) समदृष्टि होकर न्यायके आसनपर बैठना चाहिए। (३) जीवन क्षण-भंगुर है, ऐसा ध्यान में रखना चाहिए।

नवाब दौलतखाँ ने संवत् १५६६ में बीकानेरके राव लूणकरणजी को बीकानेरकी सीमापर स्थित अपने १२० गाँव इस शर्तपर दे दिये

कि वे उनपर झुंझुनूवाले नवाबोंकी ओरसे आक्रमण नहीं करेंगे; क्योंकि झुंझुनू और फतहपुर के नवाबोंमें उस समय पारस्परिक विद्रोह हो गया था।

नवाब दौलतखाँके ३ लड़के हुए, जिनके नाम नाहरखाँ, जोबनखाँ और वाजीदखाँ थे। नवाब प्रजाका बड़ा हितैषी था। नियामतखां (नवाब अलिफखाँका पुत्र था) ने भी उसकी प्रशंसा लिखी है।

मरनेपर नवाब दौलखाँकी कब्र किलेके नीचे दक्षिणमें बनवायी गयी, जो आजतक है। हिन्दू और मुसलमान दोनों जाति के लोग इसे पूजते हैं। पासमें २ कब्र और भी हैं।

संवत् १५७० तक नवाब दौलतखाँने न्याय-तत्परतापूर्वक राज्य करके शरीरोत्सर्ग किया।

४—नवाब नाहरखाँ

(संवत् १५७० से १६०२ तक, तदनुसार सन् १५१३ से १५४५ तक)

संवत् १५७० में नवाब दौलतखाँका लड़ाका नाहरखाँ राज्यासन पर बैठा। वह अच्छा वीर और लड़का हुआ। अपने समीपवासी वीर राठोड़ों पर उसने कई चढ़ाइयाँ कीं और विजय पायी। आसपासके अन्य राजपूतोंको भी उसने जीता और उनसे अपना स्वामित्व स्वीकार कराया।

नवाब नाहरखाँने फतहपुरके उत्तर और दक्षिणमें ४-४ कोसकी दूरीपर एक-एक (२) गांव आबाद किये जिन्हें अपने नामको अमर करनेकेलिए "नाहरसरा" के नामसे प्रसिद्ध किया। नवाबके ३ लड़के हुए, जिनके नाम फदनखाँ, दिलावरखाँ और बहादुरखाँ थे।

प्रजा-हितैषी होनेके कारण नवाब नाहरखाँको प्रजा बहुत मानती थी। नवाबको हरवक्त ध्यान बना रहता था कि प्रजाको किसी प्रकारसे कष्ट न हो।

नवाब नाहरखाँके समयमें दिल्लीकी बादशाहतकी अवस्था अस्थिर बनी रही; कभी कोई बादशाह होता और कभी कोई। कभी पठान तो कभी मुगल। इस प्रकार दिल्लीकी सलतनत उस समय डोलन-हिंडोराकी तरह अस्थायी थी।

जिस समय नवाब नाहरखाँ गद्दीस्थ हुआ था, उस समय दिल्लीके बादशाह सिकन्दर लोदीके राजत्व कालके २५ वर्ष बीत चुके थे। नवाबके गद्दी पानेके ४ वर्ष बाद सिकन्दर लोदी मरा, उसके मरने पर २८ वर्षमें दिल्लीके ४ बादशाह हुए। इस तरह नाहरखांके राजत्व-कालके अन्त तक, ५ बादशाह * संवत् १६०२ तक हुए।

फतहपुर जो नवाब फतहखाँके समयसे दिल्लीके बादशाहोंके मातहत था, वह, नवाब नाहरखाँके समयमें ही मातहतीसे मुक्त हुआ

---

* बादशाह सिकन्दर लोदी, इब्राहीम लोदी, बाबर, हुमायूँ और शेरशाह सूर।

था। नाहरखाँके गद्दी पर बैठनेके ३० वर्ष बाद संवत् १६०० में फतहपुरका राज्य स्वाधीन हुआ।

मातहतीसे मुक्त होनेके २ वर्ष बाद तक नवाब नाहरखाँ राज्य करता रहा। पश्चात् संवत् १६०२ में उसका देहान्त हो गया।

५—नवाब फद्दनखाँ

(संवत् १६०२ से १६०९ तक, तदनुसार सन् १५४५ से १५५२ तक)

नवाब नाहरखाँकी मृत्यु हो जानेपर संवत् १६०२ में फद्दनखाँ ने नवाबी आसन ग्रहण किया। वह अपने पिताकी तरह वीर होते हुए साथमें हँस-मुख भी था। गम्भीरता तो उसके पास फटकने तक न पाती थी। वीरता और गम्भीरता दोनों ही सखी प्रायः साथमें रहा करती हैं, परन्तु नवाबमें यह बात न देखी जाती थी। उसकी वीरता प्रशंसा योग्य थी। गाना सुननेका वह बड़ा प्रेमी था और साथमें संगीतज्ञ भी था।

अपने जीवनमें नवाब फद्दनखाँने कई लड़ाइयाँ, छापोली, टोंक और चिड़ावाके अधिपतियोंसे कीं और विजय पायी। बीदावतोंको भी हराया और कई भूमियों पर विजय प्राप्त की।

जिस समय नवाब फद्दनखाँका शासन था, उस समय दिल्लीकी गद्दी पर सलीमशाह सूर अधिष्ठित था, परन्तु उससे फतहपुरके नवाबका, उस समय किसी तरहका सम्बन्ध न था; कारण नवाब नाहरखाँके समयमें फतहपुर मातहतीसे मुक्त हो चुका था, तबसे स्वाधीन शासन ही चला आता था।

नवाब फदनखाँने अपने नामसे गांव "फदनपुरा" बसाया, जो फतहपुरसे उत्तर, ३ कोसकी दूरी पर है। नवाबके ३ लड़के हुए, जो ताजखाँ, फीरोजखाँ और दरियाखाँ नामसे ख्यात थे।

सात ही वर्ष राज्य करके नवाब फदनखाँ, संवत् १६०६ में परलोक सिधार गया।

६—नवाब ताजखाँ (२)

(संवत् १६०९ से १६२७ तक, तदनुसार सन् १५५२ से १५७० तक)

नवाब फदनखाँके देहान्त होने पर संवत् १६०९ में, उसका पुत्र ताजखाँ राज्यासनासीन हुआ। वह इतना सुन्दर था कि लोग उसकी फोटो मंगाकर, उसकी सुन्दरताको ध्यानसे देखा करते थे।

नवाब ताजखाँ अपनी बहादुरीके लिए प्रसिद्ध था। उसने अलवर और रिवाड़ी पर २ चढ़ाइयाँ कीं और विजय पायी।

नवाब नाहरखाँके समयसे फतहपुर ११ वर्ष स्वाधीन रहनेके बाद फिर दिल्लीकी बादशाहतके मातहत हो गया। जब संवत् १६११ में हुमायूँ, सिकन्दरशाह सूरको हराकर फिर दिल्लीका बादशाह हुआ, उस समय फतहपुरमें नवाब ताजखाँ का शासन था, उसने मातहती मंजूर की।

फतहपुरसे पूर्वमें नवाब ताजखाँने "ताजसर (तायसर)" नामक गाँव बसाया, जो शहरसे करीब ३ कोस पर होगा। नवाबके ८ लड़के हुए, जिनमें सबसे बड़ा मुहम्मदखाँ * था। वह नवाबकी

---

* मुहम्मदखाँ, नवाब ताजखाँका बड़ा बेटा था। उसने कारखान और बैराट देशपर चढ़ाई करके विजय पायी। उसका देहान्त नवाब ताजखाँके जीते-जी ही हो गया।

जीवितावस्थामें ही मर गया था, जिससे नवाब बड़ा दुखित हृदय हो गया और उसके लड़के अलिफखाँको अपने पास रखने लगा।

नवाब ताजखाँ प्रायः दिल्ली दरबारमें आया-जाया करता था। अलिफखाँ भी अपने पितामहके साथ जाता था। सम्राट अकबरके दरबारमें वह अपने बाबाके साथ कई दफे गया।

अपने बड़े लड़केकी असामयिक मृत्युके कारण राज्य भार न रुचनेसे अपने जीते-जी ही नवाब ताजखाँने सम्राट अकबरसे स्वीकृति लेकर संवत् १६२७ में अलिफखाँको नवाबीके सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया * ।

---

* नवाबोंके यहाँ यह रस्म थी कि यदि बड़ा लड़का उनके जीवनमें ही मर जाता और उसके पुत्र मौजूद होता तो, नवाबका दूसरा लड़का गद्दीका अधिकारी नहीं हो सकता था। यदि बड़ा लड़का निःसन्तान ही मर जाता, तब छोटा लड़का गद्दी पाता।

इसी रस्मके अनुसार नवाब ताजखाँके बहुतसे और लड़के होनेपर भी, उसके पौते अलिफखाँको तख्त मिला।

७—नवाब अलिफखाँ

(संवत् १६२७ से १६८३ तक, तदनुसार सन् १५७० से १६२६ तक)

अपने पितामह नवाब ताजखाँके जीते-जी ही संवत् १६२७ में अलिफखाँको राज्यका अधिकार मिल गया। उसका पिता मुहम्मदखाँ उसकी बाल्यावस्थामें ही मर गया था, इससे अलिफखाँको राज्यका अधिकार मिला। उसने अपने नामसे अलिफसर गाँव बसाया, जो फतहपुरसे दक्खिन-पूर्वमें ५ कोसकी दूरी पर बेसवा गाँवके पास स्थित है। *

नवाब अलिफखाँ फतहपुरके नवाबोंमें सबसे श्रेष्ठ, प्रख्यात-नामा और बहादुर हुआ। वह भाषाका कवि भी था। साहित्यमें विशेषकर कवितामें उसकी प्रबल रुचि थी।

मुगल सम्राट अकबरके दरबारमें नवाब अलिफखाँ अपनी बाल्यावस्थासे ही अपने बाबा नवाब ताजखाँके साथ ही जाने लगा था। नवाब ताजखाँके मरनेके बाद (अपने राजत्वमें) मुगलोंके दरबारमें वह पूर्ववत् ही जाता रहा। उसने अपना सम्पूर्ण जीवन मुगलोंकी ओरसे लड़ाइयाँ करते ही बिताया। बहुतसे देशों और राजाओं पर उसने सम्राट अकबर और जहाँगीरके राजत्व-कालमें उनसे आदेशित होकर चढ़ाइयाँ कीं और उन्हें जीत लिया।

—जहाँगीरनामा, पृष्ठ २

* यह गांव भूतोंके बहमसे उजाड़ हो गया था, संवत् १६०९ में—सेवा जाटने इसका पुनरुद्धार किया।

बादशाह जहाँगीरके सेनापतियोंमेंसे एक सेनापति नवाब अलिफ खाँ भी था। वह २ हजारी और १५०० घोड़ोंका मनसबदार था *। अपने बड़े लड़के दौलतखाँको भी वह शाही दरबारमें ले जाया करता था। उसके दौलतखाँ, नियामतखाँ † जरीफखाँ, फकखाँ, शरीफखाँ आदि ५ लड़के थे, सबसे बड़ा उक्त दौलतखाँ ही था।

नवाब अलिफखाँने हलदी घाटीके प्रसिद्ध युद्धमें सम्राट अकबरकी ओरसे जाकर अपनी वीरताका परिचय दिया था। उस युद्धका सकारण विवरण नीचे उल्लिखित किया जाता है।

सम्राट अकबरसे आदेशित होकर शोलापुर (दक्षिण) विजयार्थ गये हुए राजा मानसिंह, जब शोलापुर-विजय करके लौटे आते थे तो रास्तेमें उन्हें महाराणा प्रतापसे मिलनेकी सूझी। वह महाराणासे मिलनेके लिए कमलमीर ‡ पहुंचे। महाराणाने अतिथ्योचित स्वागत करके उन्हें सम्मानित किया।

राजा मानसिंह जब महाराणाके यहां भोजन करनेके लिए बैठे, तब महाराणा प्रताप उनके साथ भोजन करनेको तैयार न हुए, इससे राजा मानसिंहके क्रोधका वारापार न रहा। वे तत्काल दिल्लीकी ओर प्रस्थित हुए।

दिल्ली पहुंचकर राजा मानसिंहने सम्राट अकबरसे महाराणाके पास जानेका वृतान्त आद्यन्त कह सुनाया। सुनकर सम्राट अत्यन्त कुपित हुआ। युद्धके लिए तैयारियां होने लगीं।

---

* अलिफखाँ कायमखानी २ हजारी १५००

† कायमरासा नामक पुस्तकका प्रणेता।

‡ कमलमीर उदयपुरसे उत्तरमें, हल्दी घाटीके पास है।

उधर स्वदेश और स्वजाति पर प्राणोत्सर्ग करनेके लिए उद्धत हिन्दू-कुल-रवि महाराणा प्रताप भी लड़ाईकी तैयारीमें लगे। इस तरह दोनों ओरसे लड़ाईकी पूर्ण तैयारी हो जानेपर दोनोंकी सेनाएँ हल्दी घाटी * के मैदानमें आ डटीं।

संवत् १६३२ में यह लड़ाई हल्दी घाटीके मैदानमें लड़ी गयी। सम्राट अकबरकी सेनाके प्रधान सेनापति राजा मानसिंह थे। उप-सेनापति कुमार सलीम था। सलीमको युद्धकी बातें समझानेके लिए मुहब्बतखाँ † था। आसफखाँ, नवाब अलिफखाँ, और राना शक्तिसिंह भी उस सेनामें सम्मिलित थे। दोनों तरफके योधाओंमें भयङ्कर युद्ध हुआ। पश्चात् महाराणाके पराजित होने पर कमलमीर और गोगन्दके किले उनसे छीन लिये गये। महाराणा जंगलकी ओर चले गये।

नवाब अलिफखाँने इस लड़ाईमें बड़ी वीरता दिखलायी, जिससे लड़ाई विजय करके आने पर उसको सम्राट द्वारा उचित सम्मान प्राप्त हुआ।

सम्राट अकबरके दरबारमें बराबर जाते-आते रहनेसे नवाब अलिफखाँकी बातों पर भी सम्राट ध्यान देने लगा था। झुंझुनूका नवाब शमशखाँ, जिससे सम्राटने झुंझुनूकी नवाबी छीन ली थी, वह

‡ हल्दी घाटी एक पार्वत्य-पथ है, जो कमलमीरके पास ही दक्षिणमें है।

"Huldighat is the Thermopyloe of Mewar; the field Deweir her marathon"

—Tod.

* मुहब्बतखाँ सगरका लड़का, जो मुसलमान हो गया था।

नवाब अलिफखाँके पास आया और दुखित होकरके बोला कि मुझे सम्राट अकबरके पास ले जाकर मेरी सिफारिश यदि तुम्हारे जैसे अकबरके दरबारमें उपस्थित होनेवालेके द्वारा की जाय, तब कहीं राज्य मिल सकता है। ये बातें सुनकर नवाब अलिफखाँको तरस आया, उसने उसको सम्राटके पास ले जानेका बचन दे दिया।

अपने बचनानुसार नवाब अलिफखाँ, शमशखाँको लेकर बादशाहके दरबारमें गया और उसके अपराध बादशाहसे क्षमा कराके उसे झुंझुनूका राज्य फिरसे दिलवा दिया।

जब काबुलका शासनकर्ता मिर्जा मुहम्मद हकीम * संवत् १६४१ में मर गया, तब उसके मन्त्रियोंने मध्य एशियाके तत्कालीन शासक अब्दुल्लाकी सहायतासे अपना स्वतन्त्र राज्य आरोपण करना चाहा। उस समय सम्राट अकबरने राजा मानसिंह, राजा जगतसिंह † और नवाब अलिफखाँको सेना देकर काबुल पर भेजा। उन्होंने वहाँसे सहज ही में विजय प्राप्त कर ली। राजा जगतसिंह काबुल राज्यकी सम्भाल करनेके लिए वहीं रहे। राजा मानसिंह और नवाब अलिफखाँ, मिर्जा मुहम्मद हकीमके दोनों बेटोंको लेकर दिल्ली चले आये।

---

* सम्राट अकबरका भाई

† राजा मानसिंहका पुत्र

संवत् १६६२ में सम्राट अकबरके देहावसान होनेके बाद जहाँगीर दिल्लीके सिंहासन पर आसीन हुआ। नवाब अलिफखाँ सम्राट जहाँगीरके दरबारमें भी पूर्ववत् जाता रहा।

सम्राट जहाँगीरने गद्दीपर बैठतेही संवत् १६६२ में उदयपुरके राणा अमरसिंह * पर एक सेना शाहजादा परवेजके साथ भेजी, जिसमें २०००० घुड़सवार भेजे। परवेजको युद्ध सम्बन्धी मंत्रणा देनेके लिए आसफखाँको भेजा। अब्दुलरज्जाक मामूरी और मुख्तारबेग भी उचित सलाह देनेमें प्रवीण समझे जाने पर शाहजादा के साथमें भेजे गये। इनके अलावा राजा जगन्नाथ † राजा माधवसिंह ‡ शेखावत रायसल दरबारी, नवाब अलिफखाँ, शेरखाँ-पठान, शेख अब्दुर्रहमान, राजा महासिंह, वज़ीर जमील, वज़ीर कारखाँ, और राय मनोहर प्रभृति सामन्त इस लड़ाईमें गये थे। युद्धके अन्तमें सम्राटकी सेनाने विजय पायी, जिसके फल-स्वरूप संवत् १६६३ में राणा थाने मंडल † की ओर भागकर चला गया। शाही सेनाने उसका पीछा न छोड़ा। आखिर राणा अमरसिंहको अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

---

* महाराणा प्रतापका पुत्र

† राजा भारमलका पुत्र

‡ राजा मानसिंहका भतीजा

† अजमेरसे ३० कोस पर स्थित है।

संवत् १६६५ में महावतखाँके सेनापतित्वमें एक सेना * राणा अमरसिंह पर सम्राट द्वारा फिर भेजी गयी। महावतखाँके साथ नवाब अलिफखाँ, जफरखाँ, शुजाअतखाँ, राजा वरसिंह देव, किशनसिंह और मुअज्जुलमुल्क बख्शी आदि भेजे गये। युद्धमें बादशाहकी सेनाने विजय पायी।

राणापर विजय पानेपर संवत् १६६६ में नवाब अलिफखाँ वगैरह शाहजादा परवेजके सेनापतित्वमें दक्खिन पर भेजे गये। सेनामें ५००० घुड़सवार और १००० अहदी भेजे। इस लड़ाईमें गिरिधरराय और बादिसुरराय भी गये थे। घमसान लड़ाईके बाद सम्राटकी सेना विजयी हुई। नवाब अलिफखाँने इस लड़ाईमें बड़ी वीरता दिखलायी, जिसके पुरस्कार स्वरूप नवाबको "हरनर" † परगना और उदयपुर ‡ मिले।

---

* सेनामें—घुड़सवार १२०००

अहदी	५००
पैदल बंदूकची	२०००
तोपें	१७०
हाथी	६०
रुपये	२०००००

—जहांगीरनामा, पृष्ठ १०८

† नाहरखां अफगानकी अधीनतामें था।

‡ शेखावाटीमें स्थित है।

भिवानीके राजपूत और जाटोंपर संवत् १६६६ में नवाब अलिफखाँ ने चढ़ाईकी और उन्हें पराजित करके लूट लिया। लूट में प्राप्त धन, बादशाहको दे दिया।

राजा दलपतसिंहसे शासनाधिकार छीनकर सूरसिंहको बीकानेर का शासक बनानेका अधिक श्रेय नवाब अलिफखाँको था। जब राजा दलपतसिंह * ने बादशाही आज्ञाके प्राप्त किये बिनाही संवत् १६७० में बीकानेर आकर अपने भाई सूरसिंह † की सम्पूर्ण जागीर अपने अधीन करली, तब सूरसिंहकी अधीनतामें एक फलोदी ही रहा। आरम्भमें तो बीकानेरमें ही सूरसिंह अपनी जागीर पानेकी कोशिशें करने लगा। बादमें वहां कुछ कार्य-सिद्धिके चिन्ह न देख पड़नेके कारण वह सम्राटके पास दिल्ली पहुंचा और अपने भाई दलपतसिंह द्वारा अपनी सम्पूर्ण जागीर छीनी जानेकी कथा वहां कह सुनायी।

दिल्लीपति पहलेसे ही दलपतसिंह पर रुष्ठ था, क्योंकि वह बगैर शाही इजाजतके दिल्ली-दरबारसे आ गया था। सूरसिंहकी व्यथा-भरी बातोंने सम्राटको दलपतसिंह पर और भी क्रोधित बना दिया। क्रोधावेशमें आकर उसने तुरन्त ५०००० आदमियोंकी सेना नवाब जियाउद्दीनके साथ देकर बीकानेर पर भेजी। यह लड़ाई द्रोणपुरमें हुई। दोनों तरफके योधा धराशायी होगये।

---

* बीकानेरके राजा रायसिंहका लड़का।

† दलपतसिंहका भाई और रायसिंहका लड़का।

अन्तमें मुसलमानोंकी पराजय होनेपर वे लोग लड़ाईके मैदानसे भाग गये। जियाउद्दीन भी अपना प्राण लेकर पलायित हुआ।

जियाउद्दीन भागता हुआ दिल्ली पहुंचा। तब बादशाहने नवाब अलिफखाँ और अमीरुलउमराको योग्य जानकर बीकानेर पर भेजा और दलपतसिंहको पकड़ लानेकी आज्ञा दी। सूरसिंहने भागती हुई सेना में से कुछ सेनाको फिर इकट्ठी की और दलपतसिंह का सामना करनेपर उद्यत हुआ। सम्राटके भेजे हुए नवाब अलिफखाँ और अमीरुलउमरा भी सूरसिंहसे आ मिले। दलपतसिंह एक बड़ी राठौर सेना सहित मैदानमें आ पहुंचा। लड़ाईको शुरू हुए कुछ ही समय हुआ था कि चूरूके ठाकुरने दलपतसिंहको पकड़ लिया। दलपतसिंह पकड़ा जानेपर सम्राटके पास भेज दिया गया। उसने उसे अजमेरके किलेमें कैद करवा दिया। सूरसिंहको सिरोपाव और राजाकी उपाधि दी और बीकानेरका पूर्णाधिकार प्रदान कर दिया। इस लड़ाईमें अमीरुलउमरा और नवाब अलिफखाँ ने अच्छी वीरता दिखलायी।

संवत् १६७२ में बादशाहने नवाब अलिफखाँको एक सेना देकर मेवाड़के राणा पर फिर भेजा। नवाब वहांसे विजय प्राप्त करके दिल्ली चला आया।

संवत् १६७२ में मुरतिजाखाँ * के साथ एक सेना कांगड़ा † पर भेजी गयी। उसमें राजा बासुका बेटा सूरजसिंह और नवाब

* पंजाबका सूबेदार

† कांगड़ाका किला एक सुदृढ़ किला है, जो कि लाहौरके उत्तरमें पहाड़ों

अलिफखाँ भी गये थे। मुरतिजाखाँ लड़ाई करते हुए विजय होनेसे पहले ही संवत् १६७३ के जेष्ठ मासके शुक्लपक्ष में मारा गया, तब सेना वापिस दिल्ली लौट आयी ; परन्तु सम्राटको यह न रुचा उसने फिर वही सेना राजा बासुके बेटे सूरजसिंहके सेनापतित्वमें कांगड़े भेजी। सेना बीचहीमें भंग हो जानेसे कांगड़ाका किला जीतनेमें बिलम्ब हो गया, इससे किला न जीता गया। उसी साल फिर तीसरी बार इतमादुद्दौलाके कहनेपर बादशाहने कांगड़ा जीतनेको एक सेना राजा मानसिंहके सेनापतित्वमें भेजी। नवाब अलिफखाँ उसमें भी गया था।

राजा मानसिंह सेना लिये कांगड़ेकी ओर लाहौर होते हुए जा रहे थे। उन्होंने वहां सुना कि संग्राम * ने बादशाही-राज्यका कुछ हिस्सा दबा लिया है, तब उन्होंने संग्रामको जा घेरा और लड़ाई शुरू करदी। संग्राम इतना शक्तिशाली न था कि राजा मान

* पंजाबके पहाड़ी राजाओंमेंसे एक राजा।

में स्थित है। यह एक पुराना दुर्ग है। इसके ७ दर्वाजे हैं और २३ बुर्जें हैं। किलेके अन्दरका घेरा एक कोस १५ डोरी है। पाव कोस २ डोरी लम्बाई और चौड़ाई १५ से २२ डोरीके बीचमें हैं। किलेकी ऊँचाई ११४ गज है। २ कुंड किलेमें बने हुए हैं, जो २-२ डोरी लम्बे और १॥-१॥ डोरी चौड़े हैं।

पहले कांगड़ेमें कटोच राजाओंका शासन था, उन दिनों इसे नगरकोट कहते थे। यहां दुर्गाका एक विख्यात मन्दिर है, जिसे यहां भवन कहते हैं। भारतमें यह मन्दिर पहले सबसे अधिक धन-सम्पन्न देवस्थान समझा जाता

सिंहका सामना करे, इससे वह पहाड़ोंमें भाग गया। राजा मानसिंह ने उसका पीछा किया। वह अपने बच निकलनेका रास्ता न देख कर राजा मानसिंह से भिड़ गया। राजा मानसिंहके एक पत्थरकी ऐसी लगी कि वहीं प्राणान्त हो गया। प्राणान्त होते ही उनकी बची-खुची सेना भाग गयी, इस तरह वे कांगड़ा तक न पहुंच पाये।

था। महमूद गजनवीने सन् १००९ में इस मन्दिरको लूटा। सोने चांदी का सामान ७०० मनका; २०० मन सोना, २००० मन चांदी और २० मन रत्न इत्यादि लूटकर ले गया। सन् १९०५ में एक भोंचाल हुआ, जिससे भी इस मन्दिरकी बड़ी हानि हुई। इस मन्दिरके पासमें एक गन्धककी खान है, जिसमेंसे रात दिन उत्तप्त ज्वालाकी लपटें निकला करती हैं, जो मूर्ख और अन्ध-विश्वासी लोगोंके लिए दैवी-चमत्कार है। पौराणिकोंकी कपोल-कल्पना है कि शिवकी स्त्री पार्वतीकी छाती इसी स्थान पर गिरी थी, इसीसे यह एक पवित्र स्थान है।

यह किला दुर्जय है। दिल्लीके मुसलमान बादशाहोंकी नजर हमेशा कांगड़ा लेने पर रही, फीरोजशाह बादशाह एवं और दूसरे २ दिल्लीके बादशाह इस पर चढ़ाई करते आये, पर इसे न ले सके। सम्राट अकबरने भी इस पर विजय प्राप्त करनेके लिए सेना भेजी थी, परन्तु ऐसा न हो सका। सम्राट जहांगीरने भी इसे प्राप्त करनेमें बड़ी कठिनाइयां उठायीं। वह कांगड़े पर ३ बार सेना भेज चुका, पर कुछ सफलता न मिली। आखिर चौथी बार संवत् १६७६ में कांगड़े पर एक सेना उसने भेजी, जिससे कांगड़ा जीतकर अधिकृत कर

अब कांगड़ा विजय करनेके लिए सम्राटने खुर्रमको नियुक्त किया। उसने संवत् १६७६ में एक सेना सुन्दर * के साथ कांगड़ा पर भेजी। सेना ४ महीने तक किलेको घेरे पड़ी रही, जिससे किले में आने-जानेका रास्ता बन्द हो गया था, इस कारण किलेमें खाद्य सामग्री न पहुँच पायी, जिससे बादशाहकी सेनाके आगे उन लोगोंको हार माननी पड़ी। मगसिर (अगहन) सुदी २ संवत् १६७७ को किले पर विजय पायी।

जिस समय कांगड़े पर विजय पायी, उस समय बादशाह लाहौरमें था। उसके पास कांगड़ा विजयका समाचार भेजा गया। विजयका समाचार पाकर उसकी खुशीकी सीमा न रही।

अब्दुल अजीजखाँ, कांगड़ेका फौजदार, नवाब अलिफखाँ किलेदार, शेख फैजुल्लाह † रखवाली पर नियुक्त किये गये।

खुर्रमने ३-४ चढ़ाइयाँ दक्खिन पर की थी, उनमें भी नवाब अलिफखाँ गया था। संवत् १६७८ में सम्राट कांगड़े पहुंचा तब नवाब अलिफखाँ और शेख फैजुल्लाह उसे स्वागत सहित किलेमें ले गये। सम्राटने उन दोनोंको हाथी घोड़े देकर उन पर अपनी

---

* खुर्रमका सेवक

† मुरतिजाखाँका जमाई

लिया गया। काँगड़ेकी मीनाकारी और चांदीके गहनोंकी बनावट मशहूर है।

कृपा दिखलायी और स्वयं एक दिन किलेमें रहकर दिल्ली लौट गया।

नवाब अलिफखाँ सम्राट द्वारा किसी कार्यवश पटना भेजा गया था; वह वहांसे संवत् १६८० में वापिस लौटा, तब सम्राटने उसे कांगड़े की रक्षाके लिए फिर भेज दिया।

संवत् १६८२ में उत्तर पंजाबके पहाड़ोंका फौजदार मर गया, तब सम्राटने नवाब अलिफखाँको वहांका फौजदार नियुक्त किया।

जब नवाब अलिफखाँ कांगड़ेमें रहता था, तब वहांके पहाड़ियोंने संवत् १६८३ में उससे लड़ाई आरम्भ कर दी। दस दिन तक भयङ्कर युद्ध हुआ। दोनों तरफके बहुत से योद्धा सदाके लिए सो गये, परन्तु युद्ध अभी तक शांत न हुआ था कि बीचमें ही नवाबके पास एक पत्र आया, जो कि सादिब अलिखाँ अफगानका था। उसने नवाबको ससैन्य अपनी सहायताके लिए बुलवाया था, पर नवाब कैसे जा सकता था, वह तो स्वयं समरांगणमें था। उसने अपनी सेनाका कुछ हिस्सा सादिब अलिखाँकी सहायतार्थ भेज दिया, तब थोड़ी-सी सेना नवाबके पास बची। थोड़ी सेना देखकर तलवाड़ाके पहाड़ियोंने नवाब पर आक्रमण कर दिया। नवाब बिलकुल दब गया और मारा गया। उसके १३०० सिपाही भी मार डाले गये।

नवाब अलिफखाँका शव सन्दूकमें सिया जाकर फतहपुर लाया गया। फतहपुरमें उसे दफनाकर उसके बेटे दौलतखाँने उसकी कब्र पर एक सुन्दर मकबरा बनवाया, जो कि आज तक फतहपुरमें पूर्वकी ओर मौजूद है।



नवाब दौलतखाँ [२]



राव शेखाजी

८---नवाब दौलतखाँ (२)

(संवत् १६८३ से १७१० तक, तदनुसार सन् १६२६ से १६५३ तक)

नवाब अलिफखाँके मारे जानेके बाद संवत् १६८३ में उसका लड़का दौलतखाँ फतहपुरकी गद्दी पर अधिष्ठित किया गया। वह भी अपने पूर्वजोंकी तरह ही वीर था। उसने अपने नामको अमर बनानेके लिए "दौलतपुरा" गांव बसाया जो वर्तमानमें बीकानेर जिलेमें है।

नवाब दौलतखाँ अपने पिताकी जीवितावस्थामें उसके साथ बादशाही दरबारमें जाया करता था, जिससे उसकी वीरता रूपी चिनगारी उसकी छोटी अवस्थामें ही, दरबारमें सुने हुए वीरता-भावोपेत कथानक रूपी पवन द्वारा उत्तेजित हो चुकी थी।

तीन लड़के नवाब दौलतखाँके हुए, जिन्हें ताहिरखाँ * महरखाँ, और असदखाँ कहा करते थे। बड़ा लड़का ताहिरखाँ था, जो कि गद्दी पानेका अधिकारी था, वह नवाबकी जीवितावस्थामें ही मर गया था।

नवाब दौलतखाँने अपने पिता नवाब अलिफखाँके राजत्वमें

---

* ताहिरखाँ—नवाब दौलतखाँके तीन लड़कों में सबसे बड़ा था। अपने पिताके साथ, वह बादशाही दरबारमें आता जाता था। उसने अपने नाम से "ताहिरपुरा" गांव बसाया। दो लड़के उसके हुए, जिनके नाम सरदारखाँ और दीनदारखाँ थे।

उससे आदेश पाकर अपने दादा नवाब फतहखाँ द्वारा निर्मापित फतहपुरके किलेका जीर्णोद्धार संवत् १६६२ में करवाया। जीर्णोद्धार के समय ही किलेके चारों ओर खाई भी बनवायी गयी, जो आजतक बनी हुई है। अलिफखाँके राजत्वमें ही संवत् १६७१ में दौलतखाँ की निगाहसे नागोरके शेख महदूद द्वारा "वावड़ी" बनवायी गयी, जो फतहपुरमें आज तक विद्यमान है।

सिंहासनासीन होनेके थोड़े समय बाद ही संवत् १६८४ में नवाब दौलतखाँ, सम्राट जहांगीर द्वारा कांगड़ा (जहां नवाब अलिफखाँ, सम्राटकी ओरसे किलेदार नियुक्त हुआ था) भेजा गया। कांगड़ेके पहाड़ी लोग अभी तक शान्त न हुए थे। नवाबने वहां जाकर बड़ी वीरतासे काम लिया। पहाड़ियोंको इतना श्रान्त कर दिया कि उनके नाकमें दम आ गया।

संवत् १७०१ में बादशाहके दरबारमें सलावतखाँ और अन्य बादशाही ५ सामन्तोंको जानसे मारकर स्वयं भी वहीं मारे जानेवाले अमरसिंह राठौर के अधिकारस्थ नागौर परगनेपर विजय प्राप्त करनेके लिए सम्राट शाहजहाँने संवत् १७०३ में ताहिरखाँ को ही भेजा। ताहिरखाँ ने नागौर जाकर राठौरोंको घेर लिया, तदनन्तर उन्हें वहांसे मारकर भगा दिया और नागौरको अपने अधिकारमें कर लिया। सम्राट ने उसके नागौर विजयका समाचार सुनकर, उसकी वीरताके पुरस्कार में नागौर उसे ही सौंप दिया।

नागौर विजय करके वहां अपना अधिकार स्थापित करनेकी यादगारी में ताहिरखाँ ने नागौरके किलेके पास उत्तर में एक-

लड़ाईका अन्त भी न होने पाया था कि वि० सं० १६८३ में सम्राट जहांगीरका मृत्यु-समाचार कांगड़ा पहुंचा। समाचार पाकर कांगड़ाके सिपाही और सामन्त दिल्ली आनेको उद्यत हुए, पर नवाब दौलतखाँको यह मंजूर न था, इससे वे लोग दिल्ली न आ सके।

कांगड़ेके पहाड़ियोंने बादशाहका मरना जानकर नवाब दौलतखाँ पर जोरसे आक्रमण कर दिया। नवाब और उसकी सेनाने भी अपनी वीरता दिखलानेमें कसर न रखी। निदान सहस्रों मनुष्योंको यमलोक भेजकर नवाब विजयी हुआ। पहाड़ी लोग बहुतसे तो मारे गये और जो बाकी बचे वे भाग गये। नवाब विजय करके दिल्ली लौट आया।

संवत् १७०३ में नवाब दौलतखाँ सम्राट शाहजहां द्वारा खुराशान (काबुल) की लड़ाईमें भेजा गया। लड़ाई खतम हो जाने पर नवाब दिल्ली चला आया।

तदनन्तर सम्राटने नवाब दौलतखाँको शाहजादा मुरादके साथ बलख बुखाराकी लड़ाईमें जानेका आदेश किया। शाहजादा मुराद

मसजिद बनवायी, जो आजतक बनी है।

बलख-बुखारेकी लड़ाई जो संवत् १७१० में हुई थी, उसमें भी ताहिरखाँका पिता भेजा गया था। ताहिरखाँ उस समय नागौरमें था। उसने सम्राटको एक पत्र लिखा, जिसमें बलख-बुखाराकी लड़ाईमें जानेकी प्रार्थना की गई थी। प्रार्थना स्वीकार हो जानेपर वह बलख-बुखारा चला गया। वहां बड़ी वीरता से लड़ा। बादमें वहीं बीमार होकरके मर गया। उसका शव फ़तहपुर लाकर दफनाया गया।

उस समय पेशावरमें था, नवाब उससे पेशावरमें जा मिला। इस लड़ाईमें नवाबका लड़का ताहिरखाँ भी गया था। लड़ाईका इन्तिजाम अच्छी तरह किया गया था। अन्दरके मोर्चेका प्रबन्ध शाहज़ादे मुरादने अपने हाथमें लिया और दक्खिनके मोर्चेका प्रबन्ध नवाब दौलतखाँ और रुस्तमखाँको सौंप दिया। लड़ाई लम्बे अरसे तक होती रही। अन्तमें बलख-बुखाराके उजबक लोगोंको शाहज़ादा मुरादने बुरी तरह हराकर उन पर विजय पायी।

नवाब दौलतखाँका लड़का ताहिरखाँ वहीं बीमार होकर दुनिया से कूच कर गया। ताहिरखाँका मरना सुनकर, कंधारके पास में लड़ाई करनेमें रत नवाब दौलतखाँने संवत् १७१० में लड़ाईमें ही प्राण दे दिये। बादशाहने ताहिरखाँ और नवाबकी मृत्युकी खबर पा कर ताहिरखाँके लड़के सरदारखाँको दिल्ली बुलवाकर उससे समवेदना प्रकाशित की और उसे ही फतहपुरका नवाब नियत कर दिया।

६---नवाब सरदारखाँ (१)

(संवत् १७१० से १७३७ तक, तदनुसार सन् १६५३ से १६८० तक)

नवाब दौलतखाँ और ताहिरखाँके संवत् १७१० में प्राणान्त हो जानेके बाद, ताहिरखाँके पुत्र सरदारखाँको शासनाधिकार मिला। अपने नामसे उसने "सरदारपुरा" गांव आबाद किया। वह स्वशासनस्थ प्रजाकी और अपने राज्यकी रक्षा करनेमें हर समय लगा रहता था।

फदनखाँ नामका एक लड़का नवाब सरदारखाँके था, जो असमयमें नवाबकी जिन्दगीमें ही मर गया था, इससे नवाब दुःखी रहने लगा। रात-दिन दुःखमें डूबे रहनेसे उसे राज्य-कार्य अरुचिकर हो गया था, जिससे उसने संवत् १७३७ तक २७ वर्ष ही राज्य करनेके बाद गद्दी छोड़ दी और राज्यका अधिकार अपने छोटे भाई दीनदारखाँके सुपुर्द कर दिया।

१०---नवाब दीनदारखाँ

(संवत् १७३७ से १७६० तक, तदनुसार सन् १६८० से १७०३ तक)

संवत् १७३७ में नवाब सरदारखाँने, अपने पुत्रकी मृत्युसे दुखित होनेके कारण राज्यासन छोड़कर अपने भाई दीनदारखाँको गद्दी पर बैठाया। वह पहलेके नवाबोंकी तरह बहादुर और बुद्धिमान न था; वल्कि शक्तिहीन और मूर्ख था।

अपने नामसे "दीनदारपुरा" नाम रखकर नवाब दीनदारखाँने एक गांव झुंझुनूके रास्तेमें बसाया। नवाब के २ लड़के पैदा हुए, जिनके नाम रसीदखाँ * और मुजफ्फरखाँ रक्खे गये।

कम अकल होनेसे नवाब दीनदारखाँ अधिक दिन तक राज-काज न निभा सका, इससे उसके पौते सरदारखाँने संवत् १७६० में उससे राज्य-भार ग्रहण करके नवाबी अपने हाथमें ले ली।

---

* रसीदखाँ—नवाब दीनदारखाँका बड़ा बेटा था। उसने अपने नाम से "रसीदपुरा" बसाया। उसके २ लड़के थे—सरदारखाँ और मीरखाँ। सरदारखाँ उसका बड़ा बेटा था, इससे उसे ही नवाब दीनदारखाँ ने अपनी गद्दीपर बैठाया।

११—नवाब सरदारखाँ (२)

(संवत् १७६० से १७८६ तक, तदनुसार सन् १७०३ से १७२९ तक)

नवाब दीनदारखाँके राज-काज न सम्भाल सकनेके कारण उसके पौते सरदारखाँको उसके जीते-जी ही संवत् १७६० में गद्दी सौंप दी गयी। वह भी नवाब दीनदारखाँके समान मूर्ख और बलहीन था। ऐयाश भी अव्वल दर्जेका था। उसने एक तेलिनको उसके रूप पर आसक्त होकर, रख लिया था, जिसका महल आज तक फतहपुरके किलेमें विद्यमान है, जो "तेलिनका महल" ऐसा कहा जाता है। तेलिन से एक लड़का भी नवाबके हुआ, जिसका नाम महबूब था।

संवत् १७८२ में नवाब सरदारखाँ ने किसी कारणवश क्रोधावेश में आकर भोजराजजीके वंशज बरवाके केशरीसिंह और सुखसिंह को जानसे मरवा दिये थे। यह बात जब भोजराजजीके वंशज वीरवर शार्दूलसिंहजी ने सुनी, तो वे इतने क्रोधित हुए कि शिरसे पैर तक क्रोधाग्निसे तमतमाने लगे। उन्होंने तुरन्त ही राव शिव सिंहजीको साथमें लेकर १५० सवारों सहित फतहपुर पर चढ़ाई की।

फतहपुरकी बीहड़में पहुंचकर शार्दूलसिंहजी और राव शिव सिंहजीने नवाबके ऊंटोके समूहको वहां चरता हुआ पाया, उन्होंने उस समूहको घेरा। नवाबने अपने सर्वेसर्वा काजीको वहां भेजा। काजी और शार्दूलसिंहजी वगैरह में लड़ाई छिड़ गयी। अन्तमें

काजी और ग्यारह कायमखानी उस स्थान पर मारे गये और बाकी भाग गये।

उसी समय से शार्दूलसिंहजी और राव शिवसिंहजी कायमखानियोंको नीचा दिखाने और उनकी भूमिको उनसे छीन लेनेके लिए प्रयत्नशील हुए। अपने प्रयत्नमें लगे हुए उन्होंने झुंझुनूको संवत् १७८६ में कायमखानियों से छीनकर, उसपर अपना अधिकार कर लिया। बादमें फतहपुर पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहा, इसके लिए वे उचित अवसरकी बाट जोहने लगे।

महबूबको अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहनेके कारण नवाब सरदारखाँसे अन्य कायमखानी सरदार मनमुटाव रखने लगे थे। कायमखानी चाहते थे कि अधिकार महबूबको न मिल कर कामयाबखाँको मिले ; पर नवाब यह न चाहता था। उसने तो महबूबको ही उत्तराधिकार देना चाहा ; यद्यपि वह कायमखानियोंके कहनेसे कामयाबखाँको दत्तक-पुत्र बना चुका था।

कायमखानी नवाबसे बिलकुल असंतुष्ट हो गये। चूड़ी और वेसवाके कायमखानियों ने राव शिवसिंहजी के पास जाकर करबद्ध प्रार्थना की कि "आप फतहपुरका अधिकार कामयाबखाँ को दिलादें, आपकी सेवामें हम २५ गांव भेंट स्वरूप दे देंगे और फतहपुरकी राज्य-व्यवस्था भी आपकी सलाह से की जावेगी।"

कायमखानियोंकी प्रार्थना सुनकर राव शिवसिंहजी ने काशली के कुंवर रामसिंहको बुलवाया। रामसिंह और प्रार्थी कायमखानियों

को साथ लेकर संवत् १७८६ में राव शिवसिंहजी ने फतहपुर पर चढ़ाई की। भयङ्कर लड़ाई हुई, दोनों तरफके अनेक वीर आहत हुए और अनेक मारे गये। बादमें नवाब ने यह जानकर कि कायमखानियोंने ही शेखावतोंको साथ लेकर चढ़ाई की है, तब वह राव शिवसिंहजीके चरणोंमें आ पड़ा। राव शिवसिंहजीने नवाब के लिए नौ हजार रुपया वार्षिक निश्चित किया और कामयावखाँको गद्दी पर बैठा दिया।

१२---नवाब कामयाबखाँ

(संवत् १७८६ से १७८७ तक, तदनुसार सन् १७२९ से १७३० तक)

नवाब सरदारखाँ, जो महबूबको राज्याधिकार देना चाहता था, उससे राव शिवसिंहजीने राज्यका अधिकार संवत् १८८६ में कामयाबखाँको दिलवा दिया, जो नवाबके छोटे भाई मीरखाँका लड़का था और नवाबके द्वारा दत्तक भी स्वीकृत किया जा चुका था।

नवाब कामयाबखाँ अपने से पूर्वके दो नवाबोंकी भांति ही बल बुद्धि से रहित था। वह राज्यकी व्यवस्था पर ध्यान न देकर अपने आरामकी तरफ ही विशेष ध्यान देता था। हिताहितकी बातोंकी उसे पहिचान न थी।

राव शिवसिंहजी ने नवाब कामयाबखाँको जब गद्दी दिलवायी थी, तब अपने श्वशुर भावसिंहजी बीदावतको, उन्होंने नवाबका कामदार नियत किया था। नवाब कामयाबखाँ ने गद्दी पानेमें कामयाब होकर भावसिंहजी और चूड़ी, बेसवाके कायमखानियोंको

थोड़े दिनों बादही अपने राज्य फतहपुरसे निकाल बाहर किया। राव शिवसिंहजीने यह बात सुनी। उन्होंने इसे एक अच्छा मौका समझा। तुरन्त शार्दूलसिंहजीको बुलवाया और उनसे सलाह करके चैत्र कृष्णा १३ संवत् १७८७ को फतहपुर पर दो हजार घुड़सवारों की सेना लेकर चढ़ आये।

समस्त कायमखानी, झुंझुनूके जैसे फतहपुरको अपने हाथसे जाता देख एकत्रित होकर नवाबकी पक्षमें आ डटे। केवल बेसवा के कायमखानी नहीं आये।

शेखावतों और कायमखानियोंमें प्रबल युद्ध हुआ। दोनों तरफ के योद्धा प्रबल विक्रम से लड़े, जिनमें कई घायल हुए और कई मारे गये, जिससे चारों तरफ रुधिरसे लथ-पथ रुण्ड और मुण्ड ही नजर आते थे।

निदान नवाब सरदारखाँ घायल हो गया * और नवाब कामयाबखाँ मैदान छोड़कर भगा † जिसके फल-स्वरूप कायमखा-नियोंकी पराजय हुई। उनसे राज्य छीनकर शेखावतों ने उसपर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। संवत् १७८७ की समाप्तिके रोज से राव शिवसिंहजी फतहपुरके शासक पद पर आरूढ़ हुए।

* नवाब सरदारखाँ, आहत दशामें ही हिसार ले जाया गया, जहाँ पर उसका प्राणान्त हो गया।

† नवाब कामयाबखाँ, भागकर कुचामण (मारवाड़) में चला गया। वहीं अपनी जिन्दगीके दिन पूर्ण होनेपर मृत्युको प्राप्त हुआ। उसकी सन्तान आजतक कुचामण में विद्यमान हैं।

उपसंहार

फतहपुर-राज्यके हाथसे चले जानेके बाद कायमखानी हार मानकर चुप न बैठ सके। वे राज्यको फिर हस्तगत करनेके लिए कोशिशें कर रहे थे। उन्होंने दिल्ली जाकर दिल्लीके तत्सामयिक मुगल बादशाह मुहम्मदशाहके दरबारमें शेखावतोंके विरुद्ध दावा पेश किया, लेकिन शेखावतोंने पहले से ही सवाई जयसिंहजी (द्वितीय), जो कि शाही दरबारके मान्य व्यक्ति थे, को फतहपुर पर अधिकार-स्थापनकी कथा कह सुनायी थी, जिससे उनकी इच्छित बात ही शाही रजिस्टरोंमें दर्ज हो गयी थी, इससे कायमखानियोंके दावे पर ध्यान न दिया गया। फतहपुर पर राव शिवसिंहजीका ही अधिकार रहा।

संवत् १८०८ में कायमखानियोंने, समर्थसिंहजी और राव चांदसिंहजीकी अनुपस्थिति * में सिन्धी और बिलोचियों की सेना सहित फतहपुर पर चढ़ाई की और उसे हस्तगत कर लिया। चांदसिंहजी ने यह समाचार सुनकर लाडखानियों और अपने मामोंसे सैनिक सहायता लेकर फतहपुरके लिए प्रस्थान किया। सीकरसे बुधसिंहजी ससैन्य आ पहुंचे। फतहपुर पर आक्रमण करके फिर कायमखानियोंके हाथसे वह छीन लिया गया।

---

* समर्थसिंहजी और चांदसिंहजी, जोधपुरके महाराजा अभयसिंहजीके पुत्र रामसिंहकी सहायतार्थ गये हुए जयपुरके महाराजा ईश्वरीसिंहजीके साथ जानेके कारण अनुपस्थित थे।

तदनन्तर फिर संवत् १८३१ में कायमखानियोंने, बादशाह शाह आलम (द्वितीय) से मदद मांगी। उसने पीरूखाँ बिलोची और मित्रसेन अहीरको सेना देकर शेखावाटी पर भेजा। राव देवीसिंहजी भी शेखावत-सेना सहित, जयपुरकी सैन्य सहायता प्राप्त करके मैदानमें आगये। लड़ाई "मांडण" गांवमें हुई। लड़ाई होते होते अन्तमें पीरूखाँ धराशायी हुआ और मित्रसेन भाग गया। अपने प्रमुखको भगा देखकर सेना भी पलायित हुई, इस तरह शेखावतोंने विजय पायी।

तत्पश्चात संवत् १८३६ में बादशाह शाहआलम (द्वितीय) ने पुनः एक सेना कायमखानियोंकी सहायता-स्वरूप शेखावाटी पर आक्रमण करनेके लिए भेजी। शेखावतोंके पक्षमें जयपुरपति की भेजी हुई एक सेना और ससैन्य अलवर-नरेश प्रतापसिंहजी आये। दोनों पक्षोंमें घमासान युद्ध हुआ। अन्तमें शाही सेना की पराजय हुई और उसका सेनापति निराश होकर दिल्ली चला गया।

एक सेना फिर कायमखानियोंको सहायतार्थ देकर संवत् १८३७ में बादशाह शाहआलम (द्वितीय) ने शेखावाटी पर भेजी। राव देवीसिंहजी शेखावतोंको एकत्रित कर "खाटू" के मैदान में आ डटे। युद्ध आरम्भ हो गया। सहस्रों मनुष्य दोनों तरफके मारे गये; परन्तु किसी पक्षकी विजय नहीं हुई। दोनों तरफके योद्धा लड़ते-लड़ते बहुत अधिक थक चुके थे; निदान बादशाही सेना दिल्लीको लौट गयी और शेखावत अपने स्थानोंको चले गये।

परिशिष्ट १

(क) नवाबों की हैसियत

फतहपुर पर नवाबों ने संवत् १७८७ तक २७६ वर्ष राज्य किया। इतने कालमें १२ नवाब गद्दी पर बैठे, जिनमें प्रारम्भके ८ तो शक्तिशाली और सामर्थ्यशाली हुए और बादके ४ कमजोर। नवाब अलिफखाँ (फतहपुरका ७वां नवाब) सर्वश्रेष्ठ नवाब हुआ।

इन नवाबोंकी हैसियत बहुत ऊँची थी। दिल्लीके बादशाहोंके यहाँ भी ये नवाब ही कहलाये। दिल्ली दरबार में नवाब ताजखाँ (२), नवाब अलिफखाँ और नवाब दौलतखाँ (२) बराबर जाते रहे ; अपने समसामयिक सम्राटोंकी ओरसे इन्होंने अनेक लड़ाइयाँ वीरतापूर्वक लड़ी और उनके लिए सम्मान पाया।

(ख) नवाबोंका राज्य-विस्तार

आजकी शेखावाटी नवाबोंके शासन-कालमें फतहपुरवाटी और झुंझुनूवाटी के नामसे प्रसिद्ध रही है; बादमें परम प्रतापी राव शेखाजीके नामसे इसका नाम शेखावाटी पड़ गया।

इसका नवाबी शासन-कालका भूमि-विस्तार कितना था, इस सम्बन्धमें यथेच्छ जानकारी मुझे नहीं हुई ; यद्यपि इस बारेमें मैंने काफी छानबीन भी की ; पर जितना, इतिहासोंमें इस सम्बन्धका उल्लेख मिलता है, उससे यह तो भली भाँति अनुमान लगाया जा

सकता है कि फतहपुरवाटी और झुंझुनूवाटीकी भूमि दूर तक विस्तृत थी। जोधपुरमें सम्मिलित झाटोदकी पट्टीके ५७ गाँव और बीकानेर में सम्मिलित फतहपुरपट्टीके १२० गाँव * जिनमें रतनगढ़ और चूरू भी है, नवाबोंके शासन कालमें फतहपुरवाटी के ही अंतर्गत थे।

* फतहपुरपट्टीके ये गांव राव लूणकरणजी ने नवाब दौलतखाँ (१) से ले लिये थे। इस बारेमें अधिक जानकारीके लिए इसी पुस्तकके तीसरे खण्डमें "नवाब दौलत खाँ (१)" शीर्षक के अन्तर्गत देखिए।

चौथा खण्ड

—— ⁘ ——

शेखावत शासक

शेखावत राजपूत

सूर्यवंशी क्षत्रियोंकी कछवाहा शाखामें से ही शेखावत राजपूतों का आविर्भाव हुआ है। उनके आदि पुरुष राव शेखाजी, जिनसे उनकी "शेखावत" नाम से प्रसिद्धि हुई, कछवाहा वंशीय चौदहवें आमेराधिपति नरसिंहजीके छोटे भाई बालाजीके पौत्र थे।

शेखाजीके पिता मोकलसिहजी, * बड़ी उम्र होनेतक निःसंतान थे। संतानका अभाव उनको बड़ा खटकता था; परन्तु उसके लिए वे कर क्या सकते थे? आखिर गौ-सेवा कर पुत्र प्राप्ति करनी चाही।

---

* मोकलसिंहजी—आमेर राज्यके तेरहवें अधिपति उदयकरणजीके पुत्र बालाजीके लड़के थे। अपने पिताके बड़े पुत्र न होनेके कारण उनके पिता बालाजीको आमेर की राजगद्दीका अधिकार प्राप्त न हो सका, उनको बरवाड़ा गांव प्रदान किया गया, जहां से मोकलसिंहजी अमरसर आ गये और वहीं रहने लगे। संवत् १४९३ से १५५४ तक वे अमरसर में राज्य करते रहे।

एक रोज एक फकीर उन्हें जङ्गलमें शिकार खेलते समय मिला। फकीरका नाम शेख बुरहान * था। उसके सामने भी उन्होंने अपने हृदयस्थ संतानाभावके दुःखको, आंखोंमें आँसू निकालकर प्रकट किया। फकीर दयार्द्र हो गया और कहने लगा—"राजन्! इस प्रकार दुखित न रहिए, अब आपको अवश्य पुत्र-प्राप्ति होगी।"

शेख बुरहानके कथनानुसार थोड़े ही समयमें मोकलसिंहजी को पुत्र-प्राप्ति हुई। पुत्रका नाम उन्होंने शेख बुरहानकी यादगारी में "शेखा" रख दिया। वही शेखाजी, शेखावतोंके आदि पुरुष हुए और उन्हींके नामसे शेखावत राजपूत जातिका प्रवर्तन हुआ।

---

* शेख बुरहान—एक मुसलमान फकीर था, जो तैमूरलङ्ग के साथ इस्लामके प्रचारार्थ आया था और यहीं (हिन्दुस्तान में) रहने लगा। उसका मकबरा टाला धोला गांव (अमरसर से ७ कोसकी दूरी पर है) में स्थित है। इस गांव में उसके वंशज आजतक मौजूद हैं।

राव शेखाजी

(अमरसर के शासक)

(संवत् १५५४ से १५६६ तक, तदनुसार सन् १४९७ से १५०९ तक)

संवत् १५५४ में अपने पिता मोकलसिंहजी के बाद राव शेखाजी अमरसर में गद्दीस्थ हुए। वे प्रबल प्रतापी राजा थे, वीरता भी उनमें कुछ कम न थी। पांच सौ पन्नी पठानोंके, उनके आश्रयमें रहनेके कारण, वे और भी सशक्त बन गये थे। अपनी वीरतासे उन्होंने ३६० गांवोंपर स्वत्व प्राप्त कर लिया था। *

बारह लड़के राव शेखाजीके हुए, जिनके नाम क्रमशः दुर्गाजी, भरतजी, तिलोकजी, रतनजी, अभाजी, अचलजी, पूरणजी, प्रतापजी, कुंभाजी, रिड़मलजी, भारमलजी और रायमलजी थे।

बालाजी (शेखाजीके दादा) के राज्य-कालसे एक नियम चला आता था, जिसके अनुसार आमेरपति को एक घोड़ेका बच्चा † प्रति वर्ष भेजा जाता था। पहले शायद कौटुम्बिक अनुराग से घोड़ा आमेरको भेजा गया होगा; पर बादमें यही प्रथा, जयपुरकी अधीनता के कर-स्वरूप हो गयी।

---

* ३६० गांवों पर स्वत्व प्राप्त करनेकी बात टाड साहब ने अपने "राजस्थान" में लिखी है।

† बलदेवप्रसाद मिश्र द्वारा अनुवादित टाड साहब के "राजस्थान" के पृष्ठ ६९८ में लिखा है "घोड़ेका बच्चा कर-स्वरूप में दिया जाना, यह फारस राज्यकी रिवाज थी। दूरके शासनकर्त्ता इस प्रकारसे घोड़ेके बच्चेको कर में भेजते थे"।

राव शेखाजी इस कर-स्वरूप घोड़े भेजनेकी प्रथाको सहन न कर सके। अतः उन्होंने अपने समसामयिक आमेरके राजा चन्द्रसेनजीको घोड़ा न भेजकर, इस प्रथाको तोड़ दिया।

राजा चन्द्रसेनजीका क्रोध उबल पड़ा। उन्होंने छः लड़ाइयाँ राव शेखाजीके साथ की ; परन्तु विजय शेखाजी की ही हुई। अंतिम लड़ाई राजगढ़में लड़ी, जिसमें विजय पाने पर शेखाजी ने उनका आमेर तक पीछा न छोड़ा। आखिर चन्द्रसेनजीने शेखाजी की बात मानकर उनसे सुलह करली।

राव शेखाजी की गौड़वाटीके राजपूतोंके साथ ग्यारह लड़ाइयाँ हुईं, जिनमें वे ही विजयी हुए। अंतिम लड़ाई उन्होंने एक स्त्री की मान-रक्षार्थ की थी, जिसमें विजय प्राप्त करके विजय-लक्ष्मीके साथ ही—अधिक घायल होनेके कारण—वे संवत् १५६६ में सुरपुर सिधार गये।

१—राव शिवसिंहजी

(संवत् १७७८ से १८०५ तक, तदनुसार सन १७२१ से १७४८ तक)

फतहपुर में—

(संवत् १७८८ से १८०५ तक, सन् १७३१ से १७४८ तक)

राव शेखाजीकी दशवीं पीढ़ी में राव शिवसिंहजी हुए, जिन्होंने अपने पिता दौलतसिंहजी की मृत्यु हो जाने पर संवत् १७७८ में सीकरकी गद्दीका अधिकार प्राप्त किया। वे बड़े ही शूरवीर

और प्रातापी थे। उनके प्रतापी होनेसे कितने ही तत्सामयिक ठाकुर उनके प्रति ईर्ष्यान्वित रहने लगे थे।

ईर्ष्यावश ही संवत् १७८१ में काशलीके ठाकुर सरदारसिंहजी ने उन पर एक लूटका दोषारोपण कर दिया, जिसके फल-स्वरूप दिल्लीके मुगल बादशाह मुहम्मदशाह की ओर से जानिसारखाँ ससैन्य सीकर आ पहुंचा, उसने राव शिवसिंहजीको गिरफ्तार करके दिल्ली ले जाना चाहा।

शेखावत सेना एकत्रित करके राव शिवसिंहजी ने जानिसारखाँ का सामना किया और स्वरूपसिंहजी * को आमेर-नरेश सवाई जयसिंहजी †—जिनका दिल्लीकी बादशाहीमें उस समय पूरा दबदबा था—के पास इसलिए भेजा कि वे किसी तरह इस शाही सेना से उनका पिण्ड छुड़ा दें।

सावई जयसिंहजीने दिल्ली जाकर बादशाहकी अनुमतिसे, जानिसारखाँको सीकरसे लौट आनेके लिए लिख दिया। पत्र पाकर वह सेना सहित लौट गया।

संवत् १७८२ में फतहपुरके नवाब सरदारखाँ द्वारा भोजराजके वंशधर बरवाके केशरीसिंहजी और सुखसिंहजीका मरवाया जाना, शेखावतोंके क्रोधानलको भभकानेमें घृतका काम कर गया।

---

* राव शिवसिंहजी का भाई

† सवाई जयसिंहजी—संवत् १७५७ में आमेर की गद्दी पर बैठे। गद्दीपर बैठनेके २८ वर्ष बाद उन्होंने संवत् १७८५ में अपने नाम से जयपुर शहर बसाया।

शार्दूलसिंहजी राव शिवसिंहजीके साथमें १५० आदमियोंकी सेना सहित फतहपुर पर चढ़ आये। उन्होंने फतहपुरकी बीहड़में नवाबके ऊटोंके एक झुंडको पकड़ा। नवाबने अपने सर्वेसर्वा एक काजीको सेना देकर उनका सामना करनेके लिए भेजा। दोनों तरफ से लड़ाई होने लगी। काजी और ग्यारह कायमखानी मार डाले गये, शेष पलायित हुए।

तब ही से शेखावत वीर शिवसिंहजी और शार्दूलसिंहजीने नवाबोंकी कमजोरीसे लाभ उठाकर झुंझुनू और फतहपुर पर अपना अधिकार-स्थापन करना चाहा। उन्होंने संवत् १७८६ में कायम-खानियोंसे झुंझुनू प्राप्त कर लिया, उस पर शार्दूलसिंहजीका शासन रहा। तत्पश्चात् उनकी दृष्टि फतहपुर पर ही रही, वे इसे पानेके लिए सुअवसरकी इन्तजारीमें थे।

फतहपुरके नवाब सरदारखाँने 'तेलिन' के पुत्र महबूबको अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा। समस्त कायमखानियोंने इसका विरोध किया; परन्तु नवाब सरदारखाँ अधिकार सम्पन्न था, वह कब माननेवाला था ?

चूड़ी और वेसवाके कायमखानियोंने राव शिवसिंहजीके सम्मुख जाकर, कामयाबखाँ * को राज्याधिकार दिलानेकी प्रार्थना की और

* कामयाबखाँ—नवाब सरदारखाँ के भाई मीरखाँ का पुत्र था, जो कायमखानियों के कहने पर, सरदारखाँ द्वारा दत्तक पुत्र बना लिया गया था। यह फतहपुर का अन्तिम नवाब हुआ, जिसका पूरा विवरण तीसरे खण्ड में पढ़ जाइए।

कहा कि "यदि आपके प्रयत्नसे कामयाबखाँको राज्याधिकार पानेमें कामयाबी हुई तो हमारी ओरसे २५ गांव, आपको भेंट-स्वरूप दिये जायेंगे और फतहपुरके शासनकी व्यवस्था भी आप ही की परामर्शसे होगी।"

राव शिवसिंहजीने तुरन्त ही कुंवर रामसिंहजी काशलीवालेको बुलाया। उनके आजाने पर कायमखानियों सहित, वे संवत् १७८६ में फतहपुर पर चढ़ आये। भयंकर युद्ध हुआ। बहुतसे वीर सदा के लिए सो गये और कितने ही जख्मी हुए। युद्ध-रूपी चपेटिकासे नवाब सरदारखाँका दिमाग ठिकाने आगया। अब उसने समझा कि घरकी फूट कितनी विनाशकारी होती है। वह शिवसिंहजीके पांवोंमें गिर गया। उन्होंने उसके लिए नौ हजार रुपये वार्षिकका प्रबन्ध कर दिया और कामयाबखाँको गद्दी दिला दी।

राव शिवसिंहजीने अपने श्वशुर भावसिंहजी बीदावतको नवाब कामयाबखाँका कामदार नियत किया था; परन्तु कुछ ही समय बाद भावसिंहजी और चूड़ी-बेसवाके कायमखानी, नवाब द्वारा निकाल दिये गये।

राव शिवसिंहजीको जब यह समाचार मिला तो उन्होंने शार्दूल-सिंहजी, गुमानसिंहजी लाडखानी और कुं० रामसिंहजी काशलीवाले के साथ, दो हजार सेना लेकर फतहपुर पर, चैत्र कृष्णा १३ संवत् १७८७ को धावा बोल दिया।

नवाब ३५० साढ़े तीन सौ घुड़सवार और ११०० ग्यारह सौ पैदल सैनिक लेकर सामने आया। सिवा बेसवेवालोंके, सभी

कायमखानी, नवाबकी ओरसे युद्धमें सम्मिलित हुए थे। दोनों तरफ के योद्धाओंने प्रबल पराक्रम से लड़कर अपना-अपना युद्ध-कौशल दिखलाया। अनेक वीर, वीरगतिको प्राप्त हुए और अनेक क्षत-विक्षत होकर तड़फड़ाने लगे। अन्तमें नवाब सरदारखाँ घायल हो गया * और कायमयाबखाँ मैदान छोड़कर भाग गया † इस प्रकार शेखावतों ने विजय प्राप्त की, जिसके फल-स्वरूप, फतहपुर पर राव शिवसिंहजीका अधिकार हो गया।

चैत्र शुक्ला १ संवत् १७८८ ‡ को फतहपुर की गद्दी पर राव शिवसिंहजी अधिष्ठित हुए। तदनन्तर वे और शार्दूलसिंहजी, आमेरपति सवाई जयसिंहजीके यहां गये और फतहपुर झुंझुनू पर अधिकार-स्थापन की कथा सुनादी।

फतहपुर हाथ से निकल जाने पर कायमखानियोंने दिल्ली जाकर शेखावतोंके विरुद्ध अपील की ; पर होना जाना क्या था ? जब कि सवाई जयसिंहजी ने शिवसिंहजी और शार्दूलसिंहजी की इच्छित बात ही शाही रजिस्टरों में दर्ज करा दी थी। तब ही से सवाई जयसिंहजीके प्रभाव से प्रभावित होकर शार्दूलसिंहजी और शिवसिंहजी ने जयपुर की आधीनता स्वीकार करली।

---

* सरदारखां घायल अवस्था में ही अपने सेवकों द्वारा हिसार पहुंचाया गया, वहीं उसका प्राणान्त हुआ।

† कामयाबखां भागकर कुचामण चला गया।

‡ संवत् १७८८ का प्रारम्भिक दिन।

सवाई जयसिंहजी जब दिल्ली के सम्राट द्वारा संवत् १७८६ में मालवाके सूबेदार नियत करके भेजे गये, तब मार्ग में ही मौजाबाद में राव शिवसिंहजी और शार्दूलसिंहजी उनसे जा मिले। वहीं डेरा डाल दिया। उस समय भयङ्कर वर्षा हुई। अविश्रान्त वर्षा के कारण कुछ खाने के लिए न बन सका ; इसलिए सभी परेशान हो गये। शिवसिंहजी ने खिचड़ा तैयार करवाया। तैयार हो जाने पर सब ने भोजन कर लिया। सवाई जयसिंहजी उसी समय से शिवसिंहजीको थाल के ६००) रुपये वार्षिक देने लगे। वे ६००) रुपये अब तक शिवसिंहजी के वंशजों को मिलते हैं। वार्षिक कर जो प्रतिवर्ष सीकर से जयपुर राज्य को भेजा जाता है, उसमें से ही ६००) रुपये काटे जाते हैं।

जब सवाई जयसिंहजी का देहान्त संवत् १८०० में हो गया, तब ईश्वरीसिंहजी उनकी गद्दी पर बैठे। उनके भाई माधवसिंहजी * को यह बात न रुची, उन्होंने स्वयं गद्दीपर बैठना चाहा, इसलिए वे संवत् १८०५ में बूंदी-नरेश उम्मेदसिंहजी और मल्हारराव होलकर की मदद से एक बड़ी सेना लेकर जयपुर पर चढ़ आये। ईश्वरीसिंहजी की तरफ से शिवसिंहजी ससैन्य शत्रुओं का सामना करने के लिए गये। उन्होंने शत्रु-दल को पराजित करके भगा दिया।

* माधवसिंहजी—ईश्वरसिंहजी की विमाता के पुत्र थे। मेवाड़वालोंके भानजे थे।

कछवाहोंके साथ बूँदी और कोटाकी जो लड़ाइयाँ हुईं उनमें भी राव शिवसिंहजी ने अपनी वीरता का खासा परिचय दिया था।

संवत् १८०५ में कछवाहों का जो युद्ध मराठों के साथ हुआ, राव शिवसिंहजी उसमें प्रधान सेनापति बनाये गये थे। उसीमें वे घायल भी हुए। घायल होने पर उनके छोटे बेटे * चांदसिंहजी पिता के पास आ पहुंचे और सेवा-शुश्रूषा में लग गये। जख्मोंका उपचार उचित रूप से होने लगा; परन्तु घाव भर न पाये थे कि अचानक उनका देहावसान हो गया। मरते समय उन्होंने ईश्वरीसिंहजीसे कहा कि "चांदसिंह को सीकर का अधिकार सौंप देना।"

* पांचबेटे, राव शिवसिंहजी की ४ रानियों से हुए, जिनके नाम—समर्थसिंहजी, कीरतसिंहजी, मेदसिंहजी, चांदसिंहजी और बुधसिंहजी थे।

२—राव समर्थसिंहजी

(संवत् १८०५ से १८११ तक, तदनुसार सन् १७४८ से १७५४ तक)

राव शिवसिंहजीका देहावसान होने पर संवत् १८०५ में सीकर में उपस्थित समर्थसिंहजी ने गद्दी पर अपना अधिकार कर लिया। जयपुर में महाराजा ईश्वरीसिंहजी ने चाँदसिंहजी को सीकरके लिए अभिषिक्त किया। बाद में चाँदसिंहजी जयपुर से आ गये। सीकर की गद्दी पर समर्थसिंहजी ही रहे। उनके ३ पुत्र थे, जिनके नाम क्रमशः नाहरसिंहजी, गुमानसिंहजी और बाघसिंहजी थे।

राज-काज सम्भालने में राव समर्थसिंहजी पहले से ही चतुर थे; क्योंकि उनके पिता राव शिवसिंहजी जब जयपुर चले जाते थे, तब उनके पीछे से वे ही राज्य की देख-भाल किया करते थे, जिससे उन्हें राज्य-व्यवस्था की जानकारी हो गयी थी।

राव समर्थसिंहजी की नृशंस प्रकृति होने के कारण राव शिवसिंहजी उनसे असंतुष्ट रहते थे। एक पिता का अपने पुत्र के प्रति जितना प्यार होना चाहिए, उतना शिवसिंहजी का समर्थसिंहजी के प्रति नहीं था। इसका मुख्य कारण यह था कि समर्थसिंहजी ने शिवसिंहजी के ही राज्य काल में अपने २ भाइयों (कीरतसिंहजी और मेदसिंहजी) * को जानसे मारकर † अपनी निर्दयता का परिचय दे दिया था।

---

* कीरतसिंहजी और मेदसिंहजी दोनों सहोदर भाई थे। राव समर्थ-सिंहजी की विमाता के पुत्र—भाई—थे।

† समर्थसिंहजी का अपने भाई कीरतसिंहजी और मेदसिंहजी से प्रायः अनबनाव ही रहा करता था; उनको किसी बहाने से, समर्थसिंहजी फतहपुर ले गये थे और वहीं उनको बध कर डाला।

अब कीरतसिंहजीके वंशज बठोठ, पाटोदा में और मेदसिंहजीके सरवड़ी और दीपपुरा में हैं।

राव समर्थसिंहजी और चाँदसिंहजी संवत् १८०८ में, जब जयपुर-नरेश महाराजा ईश्वरीसिंहजी के साथ, जोधपुर के महाराजा अभयसिंहजी के पुत्र रामसिंहजी की सहायता के लिए गये हुए थे, तब उनको अनुपस्थित देखकर कायमखानियों ने सिंधी और बिलोचियों की सेना सहित फतहपुर पर आक्रमण कर के उसे फिर हस्तगत किया। यह समाचार जब समर्थसिंहजी के कर्णगोचर हुआ तो उन्होंने अपने समीपस्थ चांदसिंहजी को शीघ्र ही फतहपुर के लिए प्रस्थित कर दिया। चांदसिंहजी ने मेड़तियों और लाड़खानियोंको साथ लिया और फतहपुर पहुंच गये। उधर सीकर से बुधसिंहजी * भी आये थे। उन सब ने मिलकर कायमखानियों को मार भगाया, इस तरह फतहपुर उनके हाथ से निकलते-निकलते बचा।

तब से चांदसिंहजी ने यह विचार कर कि कहीं कायमखानी फिर फतहपुर पर आक्रमण न कर दें, फतहपुर में ही रहना शुरू कर दिया। यह देखकर ईर्षालु लोगों ने समर्थसिंहजी को चांदसिंहजी के विरुद्ध भड़का दिया; तब समर्थसिंहजीने मौका पाकर चांदसिंहजी को बलाराँ † भेज दिया ‡ और स्वयं सीकर का राज्य संवत् १८११ तक करके स्वर्ग सिधारे।

---

* बुधसिंहजी, समर्थसिंहजी के वैमातृक भाई थे।

† सीकर से उत्तर में १३ कोस की दूरी पर स्थित है।

‡ बलाराँ में चांदसिंहजी ने एक दुर्ग संवत् १८०८ में तैयार करवाया और वहीं रहने लगे।

३—राव नाहरसिंहजी

(संवत् १८११ से १८१३ तक, तदनुसार सन् १७५४ से १७५६ तक)

संवत् १८११ में राव समर्थसिंहजी के बाद उनके पुत्र राव नाहरसिंहजी गद्दीस्थ हुए। वे राज-काज को अच्छी तरह न सम्भाल सके, इससे सीकर की प्रजा ने चाहा कि किसी तरह चांदसिंहजी शासक बना दिये जायँ।

जयपुरपति महाराजा माधवसिंहजी भी नाहरसिंहजी की अव्यवस्थित राज-रीतिको अच्छी तरह जान गये थे। उन्होंने, जब चांदसिंहजी जयपुर गये तब उनसे कहा कि "सीकर का राज-काज आप सम्भाल लेवें, अन्यथा नाहरसिंहजी से सीकर का कुछ भी भला न हो सकेगा।"

चांदसिंहजी ने महाराजा माधवसिंहजी की बात मानली। उन्होंने अपने कु० देवीसिंहजी की "हर्षकी जात" का बहाना बनाया, साथमें ५० सशस्त्र नौजवानोंको जनानी रथों में चढ़ा लिया और सीकर की तरफ चल पड़े। रात्रि के करीब ११ बजे सीकर आ पहुंचे। सीकर का द्वार उस समय बंद हो चुका था, चांदसिंहजी ने उसको खुलवाया। द्वार खुलते ही जनानी रथ भीतर चले गये। ५० सशस्त्र नौजवानों ने उतर कर तुरंत ही सीकर पर चांदसिंहजी का अधिकार घोषित कर दिया।

४—राव चाँदसिंहजी

(संवत् १८१३ से १८२० तक, तदनुसार सन् १७५६ से १७६३ तक)

राव चाँदसिंहजी ने संवत् १८१३ में सीकर की गद्दी का अधिकार, नाहरसिंहजी से छीन लिया और स्वयं गद्दीपर बैठ गये।

तत्पश्चात् नाहरसिंहजी की ओर से, ठा० गोपालसिंह उग्रावत* ने हरगोबिन्द नाटाणी † की सहायता से सीकर पर आक्रमण कर दिया। राव चांदसिंहजी सेना लेकर सामना करने के लिए आये; परन्तु दोनों ओर से आपस में संधि करली गयी। चांदसिंहजी ने बलाराँ और कई गाँव नाहरसिंहजी को दे दिये।

मल्हारराव के सेनापति गंगाधर द्वारा, संवत् १८१६ में जयपुर पर जो आक्रमण किया गया था, उसमें गंगाधर को हार खानी पड़ी। विजय का सेहरा, जयपुरवालोंके ही शिर बांधा गया। अपने सेनापति को पराजित जान, मल्हारराव ने जयपुर पर धावा बोल दिया। उस समय जयपुरकी ओर से जो सेना उनका सामना करने को गयी थी, उसमें राव चांदसिंहजी भी गये थे। विजय, फिर जयपुर की ही हुई। इस लड़ाई में चांदसिंहजी ने अच्छी वीरता दिखलायी थी।

आधा रींगस ‡ जो परशुरामजीकों के अधिकार में था—उसको भी राव चांदसिंहजी ने—परशुरामजीकों से छीनकर अपने अधिकार में कर लिया।

---

* नाहरसिंहजी के पिता समर्थसिंहजी द्वारा नियत किया हुआ वकील।

† जयपुर-नरेश का मन्त्री

‡ पहले आधा रींगस, सीकरवालोंका था और आधा परशुरामजीकों का।

बीदावतों के उपद्रव के शमनार्थ राव चांदसिंहजी, जब "गनेड़ी" में ही थे, तभी उनका देहान्त संवत् १८२० में हो गया।

५—राव देवीसिंहजी

(संवत् १८२० से १८५२ तक, तदनुसार सन् १७६३ से १७९५ तक)

संवत् १८२० में राव चांदसिंहजीके बाद, उनके पुत्र देवीसिंहजी गद्दी के अधिकारी हुए। वे अपनी शूरवीरता और हिम्मत के लिए प्रसिद्ध थे। अपने समयमें, उन्होंने सीकर-राज्यको विस्तृत ही नहीं किया; बल्कि सुव्यवस्थित भी किया।

एक किला सीकरसे ३ कोस दक्खिन, लोहार्गलके पहाड़ पर बनवाया, जिसका नाम अपने नामको अमर करने के लिए "देवगढ़" * रक्खा। रघुनाथगढ़† और रामगढ़‡ २ शहर भी आबाद किये।

* संवत् १८४१ में देवगढ़ का किला बनवाया गया।

† संवत् १८४८ में खोह ले लेने के बाद, खोह की पहाड़ी पर, राव देवीसिंहजी ने रघुनाथगढ़ बसाया।

‡ राव देवीसिंहजीने संवत् १८४८ में "नासा" गांवको शहर का रूप देकर उसका नाम रामगढ़ रक्खा। चूरू के पौद्दार, जिनकी ठाकुरोंसे, किसी बात के कारण से अड़ गयी थी, वे रामगढ़ में आ बसे थे। देवीसिंहजी ने उनको सम्मान के साथ रामगढ़ में स्थान दिया, जिससे "रामगढ़-सेठान" कहलाया।

राव देवीसिंहजी गुणियोंके आश्रयदाता थे। उनके आश्रयमें ही, राजस्थान के सुप्रसिद्ध कवि कृपारामजी बारहठ * और कवि कवीन्द्र रहा करते थे। कृपारामजी बारहठ द्वारा रचित राजियाके सोरठे —जिनको राजस्थानमें आबाल-वृद्ध जानते हैं—नीति और सुधार-प्रियतासे लबालब भरे हैं, जिससे पता लगता है कि कृपारामजी बारहठ एक विद्वान् और सुधारक मनोवृत्तिके आदमी थे। ऐसे सद्भाव-सम्पन्न कविका राव देवीसिंहजीके आश्रयमें रहना, उनके सद्विचारक होनेका द्योतक है।

* कृपारामजी बारहठ, राजस्थान के एक अमर कवि होगये हैं; यद्यपि उनका पार्थिव शरीर आज विद्यमान नहीं है, तथापि वे सुकवि होने के नाते आज भी अमर हैं। उनके शिक्षा, सुधार और नीतिसे परिपूर्ण सोरठे, आज भी विद्वानोंके हृदयमें उनकी स्मृति को सजग कर देते हैं।

राव देवीसिंहजी के आश्रय में वे सम्मान सहित रहा करते थे। राज-काज भी अधिकतर उनकी ही सलाह से होता था। एक गांव भी रावजी की ओर से उनको मिला था, जो चरणोंकी ढाणी कहलाता है।

राजिया उनके नौकरका नाम था, जिसको अमर करनेके लिए, उन्होंने स्वरचित हरएक सोरठेके अन्तमें राजियाका नाम लगा दिया है। वे रावराजा लक्ष्मणसिंहजीके वयस्क होने तक सीकरमें रहे।

राजियाके नीतिपूर्ण सोरठे, जिन्हें पढ़नेकी उत्कण्ठा हो वे, मेरी बनायी हुई "राजिया-काव्य" देखें और ललित सोरठोंका रसास्वादन करें।

राव देवीसिंहजीको सिंहासनस्थ हुए थोड़ा ही समय हुआ था कि जयपुरपति महाराजा माधवसिंहजी पर संवत् १८२४ में भरतपुरके जवाहरसिंह जाट ने चढ़ाई कर दी। इस लड़ाईमें रावजीकी ओरसे उनके चचा (काका) बुधसिंहजी गये थे उन्होंने अच्छी वीरता प्रदर्शित की। आखिर गहरी चोट लग जानेसे वहीं स्वर्ग सिधारे। जयपुरपतिने तबसे सीकरको वार्षिक करमें ४०००) रुपयेकी छूट करदी।

संवत् १८३१ में बादशाह आलीगोहर शाह आलमने कायमखानियोंकी मदद करनेके लिए, पीरूखाँ बिलोची और मित्रसेन अहीर की प्रमुखतामें एक सेना फतहपुर पर भेजी। देवीसिंहजी, अन्य शेखावतों समेत, जयपुरसे सैनिक सहायता पाकर "मांडण" * रण-क्षेत्रमें आगये। लड़ाई होने लगी। अन्तमें पीरूखाँ मारा गया और मित्रसेन मैदान छोड़कर भाग गया।

परशुरामजीकोंने संवत् १८३२ में सीकरकी ओरसे नियत, रींगसके ताल्लुकदारको रींगससे निकाल कर, वहां अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। राव देवीसिंहजीने वहां जाकर रींगसको वापिस अपने अधिकारमें किया।

संवत् १८३६ में नजफकुलीखाँके सेनापतित्वमें दिल्लीके बादशाहने १६००० आदमियोंकी एक सेना शेखावाटी पर भेजी। शेखावतोंने

---

* एक गांवका नाम है। १८३१ में कायमखानी और शेखावतोंमें जो युद्ध हुआ, उसके लिए यह रणक्षेत्र बना था।

उसका सामना किया। जयपुरके महाराजा प्रतापसिंहजीकी भेजी हुई एक सेना और स्वयं अलवरेश्वर प्रतापसिंहजी ससैन्य शेखावतों की सहायतार्थ आये। इस लड़ाईमें नजफकुलीखाँ पराजित होकर दिल्ली लौट गया।

संवत् १८३७ में फिर ५२००० आदमियोंकी एक बड़ी सेना, दिल्लीके बादशाहकी ओरसे शेखावाटी पर आयी। सेनापति मुरतिजा खाँ भड़ेच * था, उसको राव देवीसिंहजीने लिख भेजा कि—"यदि अपनी खैरियत चाहते हो तो पत्र पढ़ते ही चले जाओ, यह शेखावतोंकी भूमि है।"

उत्तरमें भड़ेचने लिखा कि—"मैं अमीर नहीं हूं, मैं एक सैनिक हूं। मुझे अपने सैनिकत्वका अभिमान है। जानते नहीं? मेरा नाम मुरतिजाखाँ है। मेरा तोपखाना जब गोला उगलने लगेगा, तब तुम्हारी अनधिकार चेष्टासे तुम्हारे अधिकारमें आये हुए, झुंझुनू, फतहपुर पुनः कायमखानियोंको मिल जायेंगे।"

भड़ेच सेना सहित आगे बढ़ आया, उसने माधवपुर, थोई और रींगस लूट लिये। यह देखकर राव देवीसिंहजीने शार्दूलसिंहजीके पौत्र सुजानसिंहजी, दांताके बख्तावरसिंहजी और कूहड़के गुमानसिंह जीको बुलवाया। उनके आ जाने पर देवीसिंहजी रणभूमि "खाटू" की ओर बढ़े। जयपुरपतिने भी दूल्लसिंह खंगरोत और भूरसिंह नाथावतको एक सेना देकर शेखावतोंकी सहायतार्थ भेजा। महन्त

* पठान जातिका मुसलमान था, भड़ेच उसका आस्पद था।

मङ्गलदासजी भी जयपुरपतिके आदेशसे, अपनी युद्ध-कौशलमें निपुण साधु सेना सहित आये।

घमासान लड़ाई छिड़ गयी। तलवार, भाले और बर्छी स्वतन्त्रतासे चलाये जाने लगे। दोनों ओर के अनेक वीर, वीर गतिको प्राप्त हुए और अनेक क्षत-विक्षत होकर भूमि-शय्या पर खून से लथपथावस्थामें ही कराहनेके स्वरमें मा रण-चण्डीकी उपासनामें लग गये।

राव देवीसिंहजी लड़ाईके अन्त तक लड़ते रहे। सूरजमलजी और देवकरणजी धाभाईने अच्छी वीरता दिखायी, जिससे रावजीने उनको उचित सम्मान दिया। एक हजार नागा साधु तथा और-और अनेक वीर लड़ाईमें मारे गये। वीरता दिखाते हुए जिन्होंने प्राण त्याग किये, उनमेंसे कूहड़के बख्तावरसिंहजी, दूजोदके सलहदी सिंहजी, बलारांके हनूतसिंहजी, मिसरीखाँ कायमखानी, अर्जुन और उम्मेद कायस्थ, स्वरूपा बड़ुआ, हमीरा नाई और हुकुमसिंहजी लाड़खानीके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

विजय न तो शाही सेनाकी हुई और न शेखावतोंकी ही।* दोनों ओर के योद्धा लड़ाई करते-करते परिश्रान्त हो गये, इससे

---

* हिन्दू तुरकाण जुट घणी धर धपायीं।
दोनोंकी हारजीत जाणमें न आयी॥
शेखावत जाति भी न आयी खेत कानी।
मुरतिजाखान भी हियामें हार मानी॥

शेखावत तो अपने-अपने स्थान पर चले गये और भड़ेच वापिस दिल्ली लौट गया।

राव देवीसिंहजीने संवत् १८४४ में काशलीके ५ गांवोंको दबा लिया और बठोठके ठाकुर पद्मसिंहजीके सुपुर्द करके उनसे कहा कि "इन गांवोंकी सम्भाल आप रखें।"

थोड़े ही दिन बाद काशलीके ठाकुर पूर्णमलजीने पद्मसिंहजीको मार डाला। इस समाचारसे राव देवीसिंहजीके हृदयमें दुःख और क्रोध पनप आये. उन्होंने काशलीको पूर्णमलजीसे छीन लेनेका विचार कर लिया।

युद्धकी तैयारी करनेमें इधर तो राव देवीसिंहजी लगे हुए थे और उधर पूर्णमलजी। अलवरेश्वर प्रतापसिंहजीसे पूर्णमलजीने सहायता मांगी। अलवरेश्वरने लिख भेजा कि "मैं लोहार्गलमें आऊंगा, तब तुम्हारा समझौता करवा दूंगा।"

तदुपरान्त अलवरेश्वर लोहार्गल आये। उन्होंने राव देवीसिंहजी और पूर्णमलजीको बुलवा भेजा। रावजी आगये परन्तु पूर्णमलजी नहीं आये। उनके इस घमण्डको देखकर अलवरेश्वर बोल उठे कि "पूर्णमलजीका घमण्ड चूर होनेके काबिल ही है।"

राव देवीसिंहजीके हृदयमें प्रतिहिंसाकी अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, वे कब माननेवाले थे। उन्होंने तुरन्त ही काशली पर चढ़ाई की और पूर्णमलजीको पराजित करके काशलीसे निकाल दिया। काशली तथा चौरासी गांव रावजीके अधिकारमें आगये।

संवत् १८४५ में शार्दूलसिंहजीकोंने सीकर राज्यकी सीमाके अन्तर्गत बेरी गाँवकी बीहड़ काटकर नवलगढ़का विस्तार बढ़ाना चाहा। इस बातको लेकर शार्दूलसिंहजीकों और शिवसिंहजीकों में पारस्परिक विरोध पैदा हो गया।

जब बीहड़ कटने लगी, तब राव देवीसिंहजीके एक आश्रित कविने उन्हें सावधान करते हुए कहा—

नीलो घोड़ो जीन बनाती, चढ़कर आयो तेरीको।
बैठ्यो "देवा" के देखै है, बीड़ कटै है बेरी को॥

राव देवीसिंहजी सेना इकट्ठी कर शीघ्र ही शार्दूलसिंहजीकों पर चढ़ दौड़े। कई दिनों तक लड़ाई हुई। निदान आपसमें सन्धि होगयी।

राव देवीसिंहजीने संवत् १८४५ में बलारॉं, भोजासर, मगलूणा और हर्षके पहाड़के इर्द-गिर्दके गांव और संवत् १८४८ में खोह, पीपराली इत्यादि गांव सीकरमें सम्मिलित कर लिये।

सीकरकी ओरसे जयपुरको प्रतिवर्ष दिये जानेवाले कर का विरोध, राव देवीसिंहजीने संवत् १८४६ में किया, परन्तु वे सफल-मनोरथ नहीं हुए, फलतः सीकरकी ओर से जयपुरको राज्य-कर दिये जानेका कार्य पूर्ववत् जारी रहा।

तदनन्तर संवत् १८५२ में ३२ वर्ष राज्य करके वे मृत्युको प्राप्त

हुए

६—रावराजा लक्ष्मणसिंहजी

(संवत् १८५२ से १८९० तक, तदनुसार सन् १७९५ से १८३३ तक)

राव देवीसिंहजी की मृत्यु के बाद संवत् १८५२ में लक्ष्मणसिंहजी को शासनाधिकार पाते देखकर, राव देवीसिंहजी के द्वारा त्रास-प्राप्त, उनके विपक्षीदल (खण्डेलेवालों, बलारांवालों और भोजराजजीकोंकी सम्मिलित शक्ति) ने यह प्रसिद्ध कर दिया कि लक्ष्मणसिंहजी, राव देवीसिंहजी के वास्तविक पुत्र नहीं हैं, दत्तक हैं; इसलिए वे गद्दी के अधिकार से वंचित रखे जावें। एस बातको लेकर शेखावतों में उस समय एक बड़ा उत्पात खड़ा हो गया था।

राव देवीसिंहजीके परम बिश्वसनीय कृपारामजी बारहठ और सूरजमलजी धाभाई ने किसी भी विपक्षी की परवा न करते हुए, लक्ष्मणसिंहजी को राज्यासनारूढ कर दिया। जिस समय वे गद्दी पर बैठाये गये उस समय उनकी आयु केवल ८ वर्ष की ही थी * उनकी माता कान्हलोतजी मन्त्रियोंकी मन्त्रणा के सहयोग से राज-काज की सम्भाल करने लगीं।

रावराजा † लक्ष्मणसिंहजी के गद्दी नशीन होने का समाचार पाते ही विपक्षी जन, जयपुर से एक सेना, नन्दराम हलदिया ‡ के

* संवत् १८४४ में कान्हलोतजीके गर्भसे लक्ष्मणसिंहजीका जन्म हुआ था।

† संवत् १८७१ में जयपुरपति महाराजा जगतसिंहजी-द्वारा रावराजाकी उपाधि लक्ष्मणसिंहजीको मिली थी।

‡ जयपुरके तत्कालीन मन्त्री दौलतराम हलदियाका भाई।

सेनापतित्व में सीकर पर चढ़ा लाये ; परन्तु उनकी दाल न गल सकी ; क्योंकि नंदराम के भाई दौलतराम हलदिया का राव देवीसिंहजी के साथ पहलेका मैत्री सम्बन्ध था, उस सम्बन्धको कृपारामजी बारहठ और सूरजमलजी धाभाई ने नन्दराम के सामने प्रकट किया। नन्दराम ने कह दिया कि "आप मेरी ओर से किसी अनिष्ट की आशङ्का न करें, यद्यपि मैं जयपुर की अनुज्ञा को टाल नहीं सकता। आपको मेरी इज्जत बचाने के लिए केवल दिखावटी युद्ध करना पड़ेगा, जिससे किसी को यह पता न लग जाय कि मैं सीकर से मिला हुआ हूं।"

नन्दरामकी इच्छानुसार कई दिनों तक युद्ध जारी रहा। आखिर उसने जयपुरपतिको लिख दिया कि सीकरसे लड़नेमें धन और समय व्यर्थ नष्ट होते हैं, और स्वयं ३ लाख रुपये —दो लाख दण्डके और एक लाख रिश्वतके—लेकर जयपुर चला गया।

संवत् १८५४ में ठा० पूर्णमलजी (जिनसे राव देवीसिंहजीने काशली छीन ली थी) ने बीदावत, लाडखानी और मेड़तियोंकी सहायता पाकर सीकर पर चढ़ाई की, उसमें सीकरकी ही विजय रही।

बलारांवाले संवत् १८५६ में पंजाबसे जार्ज फ्रांसिस * को चढ़ा कर लाये। उन्होंने फतहपुर पर धावा बोल दिया। सीकरसे उनका सामना करनेके लिए सूरजमलजी धाभाई ससैन्य आये। मेदसिंहजी

* जार्ज फ्रांसिस हांसी (पंजाब) का तत्सामयिक शासक था, यह शेखावाटी में "जहाज साहब" कहलाता था।

परशुरामजीकाको जयपुर सैनिक सहायता पानेको भेजा गया था, वे भी जयपुरकी सेना सहित युद्धस्थल पर आ पहुंचे।

लड़ाईका उपक्रम होगया। रण-चण्डीको सन्तुष्ट करनेके लिए योद्धा लोग वीर तालसे नृत्य करने लगे। आखिर जार्ज फ्रांसिसकी सेना लड़ते-लड़ते थक गयी, जिससे वे हार मानकर फतहपुरसे चले गये।

शाहपुरा, बठोठ और नेछवा संवत् १८५७ में रावराजा लक्ष्मण-सिंहजीके बाहुबलके प्रतापसे उन्हींके अधिकारमें आगये।

उस समय स्वार्थी लाड़खानियोंकी कृपासे रावराजा लक्ष्मण-सिंहजीकी माता कान्हलोतजी, उनसे रुष्ट होकर रामगढ़ चली गयी थीं और वहीं रहने लगीं। रावराजाजीको यह बात कब अच्छी लग सकती थी? उन्होंने रामगढ़ जाकर स्वमातासे भेंट की। बात होने पर माता और पुत्र दोनोंका स्वाभाविक प्रेम उमड़ आया। कान्हलोतजीने अब समझा कि किस प्रकार स्वार्थियोंने मुझे, उलटी-सीधी बातें बनाकर लक्ष्मणसिंहके विरुद्ध कर दिया।

रावराजा लक्ष्मणसिंहजीने उन लाड़खानियोंको दण्डित किया, तभी से वे, रावराजाजीके विरोधी हो गये थे। खाचरयावासके ठाकुर शिवदानसिंहजीने अपनी बुद्धिमानीसे उनके इस विरोधका अन्त किया।

सीकर राज्यके अन्तर्गत शाहपुरा पर संवत् १८६० में जोधपुर-राज्यकी एक सेना चढ़ आयी, उसका सामना शाहपुराके दुर्गरक्षक दूजोदके ठा० मुहब्बतसिंहजीने किया। वे, और उनके १५० साथी लड़ाईमें मारे गये।

जोधपुरकी सेना शाहपुराके किलेमें घुसने लगी। यह देखकर शाहपुराके एक सेवकने बारूदकी बुर्जमें आग लगा दी, जिससे जोधपुरकी सेनाके १५५५ आदमी जलकर मर गये। सीकरसे रावराजा लक्ष्मणसिंहजी आये, जिन्होंने जोधपुरकी सेनाको मार भगाया।

संवत् १८६३ में धौंकलसिंहको * जोधपुरका राज्यासन दिलानेके लिए उत्सुक पोकरनके ठाकुर सवाईसिंहजीके अनुरोधसे जयपुरपति महाराजा जगतसिंहजीने जोधपुर पर आक्रमण किया था, † उसमें दशहजार शेखावत भी जयपुरकी सेनामें सम्मिलित थे, जिनका नेतृत्व रावराजा लक्ष्मणसिंहजी, खेतड़ीके राजा अभयसिंहजी और बिसाऊके ठाकुर श्यामसिंहजीने किया।

लक्ष्मणगढ़ ‡ बसानेके बाद संवत् १८६४ में बीकानेरके राजा

---

* जोधपुरके महाराजा भीमसिंहजीके बाद महाराजा मानसिंहजी जोधपुरके सिंहासन पर बैठे, उनसे पोकरनके ठाकुर सवाईसिंहजीका पारस्परिक द्वेष था, जो धौंकलसिंहको महाराजा भीमसिंहजीका पुत्र बतलाकर, उसे राज्य दिलाना चाहते थे।

† जयपुरके महाराजा जगतसिंहजीकी जोधपुरके महाराजा मानसिंहजीसे मेवाड़की कृष्णाकुमारीके सम्बन्धमें भयंकर शत्रुता होगयी थी, उसीसे प्रेरित होकर महाराजा जगतसिंहजीने पोकरनके ठाकुर सवाईसिंहजीके प्रस्तावको मानकर जोधपुर पर चढ़ाई की थी।

‡ सीकरसे ९ कोस उत्तरमें "बेड़" नामका एक गांव था, उसमें एक छोटी पहाड़ी भी थी, जिस पर रावराजा लक्ष्मणसिंहजीने लक्ष्मणगढ़का किला संवत् १८६२ में बनवाया और उसी किलेके नीचे संवत् १८६४ में लक्ष्मणगढ़ आबाद किया गया।

सूरतसिंहजीको ओर से बीदावतोंकी एक सेना लक्ष्मणगढ़ पर आयी। लक्ष्मणगढ़को उन्होंने लूटना चाहा, इसी बातको ध्यानमें रखकर उन्होंने मालकी कतारके ऊंट घेर लिये। बख्तमल दरोगा सीकरसे सेना लेकर लक्ष्मणगढ़ पहुंचा, उसने समस्त बीदावतोंको मार भगाया।

रावराजा लक्ष्मणसिंहजीने संवत् १८६६ में २००००० रुपये दो पठानों (मन्नाखाँ और महावतखाँ) को देने किये और उनकी सहायता पाकर, खण्डेले पर अधिकार पानेकी इच्छासे आक्रमण कर दिया।

खण्डेलापति अभयसिंहजी और प्रतापसिंहजीकी अधिकार-रक्षार्थ, हनुमन्तसिंहजीने खण्डेलेको बचानेकी प्राण-प्रणसे चेष्टा की। उन्होंने महावतखाँ पठानको रावराजा लक्ष्मणसिंहजीसे विरुद्ध करना चाहा। ५०००० रुपये महावतखाँको दिये और कह दिया कि खण्डेलाके विरुद्ध न लड़े।

महावतखाँ रुपये हजम कर गया और खण्डेलेवालों को धोखा देकर रावराजा लक्ष्मणसिंहजी से जा मिला।

यह देखकर हनुमन्तसिंहजी स्वयं एक बड़ी सेना लेकर आये। उन्होंने वीरतापूर्वक ३॥ महीने तक युद्ध किया। एकाएक छातीमें एक गोली के लग जाने से उनके प्राणान्त वहीं हो गये! इस तरह रावराजा लक्ष्मणसिंहजी की विजय हुई और संवत् १८७० में खण्डेला उनके अधिकार में आ गया।

संवत् १८७१ में अमीरखाँ—महाराष्ट्र सेनापति आया, उसने ६००००० रुपये जयपुर से नजराने के मांगे। शिवनारायण मिश्र उस समय जयपुर के प्रधान मंत्री थे, उन्होंने रावराजा लक्ष्मणसिंह जी के पास सीकर लिख भेजा कि "आपने बिना जयपुरपतिकी अनुमतिके ही खण्डेले पर अधिकार-स्थापन किया है, तिस पर भी अभीतक आपने खण्डेले की शासन-सनद नहीं पायी। यदि आप खण्डेले की सनद चाहते हैं तो आपके लिए यह उपयुक्त होगा कि आप अमीरखाँ को ६००००० रुपये—५००००० अपने पास से और ४००००० शार्दूलसिंहजीकों से लेकर—दे देवें, आपको खण्डेले की शासन सनद मिल जायगी।

रावराजा लक्ष्मणसिंहजी ने ६००००० रुपये एकत्रित करके अमीरखाँ को दे दिये और जयपुरपति से खण्डेलेकी शासन सनद अपने नाम करवाली। तत्पश्चात् जब वे जयपुर गये तब जयपुर द्वारा नियत ५७००० रुपये खण्डेला का राजस्व अग्रिम दे आये; उस समय ही जयपुरपति ने उन्हें रावराजा की पदवी से विभूषित किया था।

अपनी खोयी हुई सम्पत्तिको पुनः प्राप्त करने के लिए खण्डेले-वाले, जयपुर के ब्राह्मण मंत्री (जो शिवनारायणजी मिश्र के बाद में हुआ) से मिले। ब्राह्मण मंत्री. रावराजा लक्ष्मणसिंहजीसे—उनके जयपुर रहने और वहां अपना कुछ दबदबा प्राप्त कर लेने से—शङ्कित हो द्वेष रखने लगा था। उसने तुरन्त ही एक सेना लेकर खण्डे-लेवालोंके साथ खण्डेले पर चढ़ाई करदी।

रावराजा लक्ष्मणसिंहजी ने जमशेदखाँ पठान के पास बहुत-सा धन भेजकर उससे खण्डेला-रक्षा का मनोभाव प्रकट किया। जमशेदखाँ सेना सहित ब्राह्मण मंत्री के डेरे पर पहुंचा और उसे डर दिखाकर उसके पासका सारा सामान छीन, उसे जयपुर भगा दिया। मंत्री ने जयपुर पहुंच कर रावराजाजी को पकड़ना चाहा; परन्तु वहां से रावराजाजी पहले ही नो-दो-ग्यारह होगये थे।

संवत् १८८१ में खण्डेला—धोकर, बराल गावोंको छोड़कर—जयपुर की राजमाता भटियानीजी के कहने से खण्डेलेवालों को वापिस लौटा दिया गया।

जयपुर की सहायता पाकर संवत् १८८४ में रावराजा लक्ष्मणसिंहजी ने झुंझुनू पर हमला किया। तत्पश्चात् खेतड़ी पर करना चाहा; परन्तु उनके हितचिन्तकों ने ऐसा न होने देकर शेखावत शक्ति को छिन्न भिन्न होने से बचा लिया।

अपने पिता राव देवीसिंहजी की तरह ही रावराजा लक्ष्मणसिंहजीने सीकर-राज्यका विस्तार खूब बढ़ाया। वे १५०० गांवोंके स्वामी हो गये थे, जिनसे ८००००० रुपये वार्षिक आय उनको होती रही।

लक्ष्मणगढ़ तथा और कई गांव रावराजाजी ने दुर्गबन्द किये। ८ बंदूकधारी दल बनाये, जिनका नाम "अलीगोल दल" रक्खा गया। १००० शिक्षित घुड़सवारोंकी सेना भी उनके पास थी। ५०० घुड़सवार भूवृत्तिवाले और ५०० वेतन पानेवाले थे।

संवत् १८६० में ३८ वर्ष राज्य करके रावराजा लक्ष्मणसिंहजी ४६ वर्ष की अवस्था में स्वर्गस्थ हुए।

७—राव राजा रामप्रतापसिंहजी

(संवत् १८९० से १९०७ तक, तदनुसार सन् १८३३ से १८५० तक)

रावराजा लक्ष्मणसिंहजी के देहावसान होने पर संवत् १८६० में उनके पुत्र रावराजा रामप्रतापसिंहजी, जिनकी अवस्था केवल पांच ही वर्ष की थी, * राज्यासनारूढ़ हुए। उनकी माता राठोड़जी राजकाज देखने लगीं। राज्यकी व्यवस्था पूर्ववत् ही रही, उसमें राठोड़जी ने कोई त्रुटि न होने दी; पर खवासवाल—मुकुन्दजी, हुकुमजी, चिमनजी—और रामबख्शजी (पालितपुत्र), उस समय जोर पकड़ गये थे; उन्होंने इस अवसर को अपना स्वार्थसिद्धि के लिए उपयुक्त समझा; अतः फतहपुर रामगढ़ और लक्ष्मणगढ़ पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

श्री राठोड़जी ने खवासवालों और रामबख्शजीको—उनकी आजीविका के लिए—सिंगरावट और नेछवा ५० गांवों सहित देदिये, जिनसे करीब एक लाख रुपयेकी वार्षिक आय थी। फतहपुर, रामगढ़ और लक्ष्मणगढ़ वापिस लौटा लिये।

इसके कुछ दिन बाद ही रामगढ़ पर, शेखावाटी के प्रसिद्ध वीर

---

* रावराजा लक्ष्मणसिंहजी की धर्मपत्नी राठोड़जी के गर्भ से संवत् १८८५ में रावराजा रामप्रतापसिंहजी का जन्म हुआ था।

डूंगजी और जवाहरजी * ने चढ़ाई कर दी, वे रामगढ़ को लूटना चाहते थे। रामगढ़ के सेठ गुरुसहायमलजी पौद्दार † ने उनको २००००) रुपये देकर रामगढ़ से बिदा किया, जिससे रामगढ़ लूट-खसोट से बच गया। श्री राठोड़जी ने उक्त सेठजी के इस दूर-दर्शिता-पूर्ण कार्यकी बड़ी प्रशंसा की। इस प्रकार पोद्दार-परिवार की सीकर-राज्य में और भी प्रतिष्ठा बढ़ गयी।

* डूंगजी और जवाहरजी—राव शिवसिंहजी के पुत्र कीरतसिंहजी के वंशज थे। शेखावाटी के प्रसिद्ध वीर होनेके कारण उनका नाम शेखावाटीका बच्चा-बच्चा जानता है। वे शेखावाटी की वीर-प्रसविनी भूमिके वीर डाकू थे। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वे निर्धन मनुष्य और स्त्री-जाति को लूटना पाप समझते थे। वे तो केवल धनियोंको ही लूटते थे। शेखावाटी भरमें उनका बड़ा प्रभाव था। लोग—खासकर धनवान्—उनके नाम से थर थर कांपने लग जाते थे।

एक समय एक डाके के अपराध में डूंगजी, पकड़कर आगरे में कैद कर लिये गये थे ; उनको, जवाहरजी तथा अन्यान्य वीर जेलका दरवाजा तोड़ कर निकाल ले गये ; जाते समय रास्ते में वे लोग नसीराबाद के सरकारी खजाने पर चढ़ दौड़े और ५२०००) रुपये लेकर वहां से चम्पत हो गये, जिसके अपराध में उनको नजरबंद रहना पड़ा, बाद में उक्त सरकारी खजानेकी क्षति-पूर्ति सीकर-राज्य को करनी पड़ी।

† रामगढ़ के प्रसिद्ध पौद्दार-परिवार के नामी सेठ थे। आजकल इनके यहां "ताराचन्द घनश्यामदास" के नाम से व्यापार होता है।

संवत् १८९१ में कर्नल लाकेट * द्वारा लिखी शेखावाटी के भ्रमण की रिपोर्ट पर, ब्रिटिश सेना का एक भाग—जिसमें तोपें और घुड़सवार भी थे—नसीराबाद से शेखावाटी में आया, जिसका काम था लुटेरों और उपद्रवियों से जनता के धन-मालकी रक्षा करना और शांति-स्थापन करना।

शेखावाटी स्थित कई लूट-खसोट करनेवाले ठाकुरों के किले उसी समय, इस सेना द्वारा तोड़े गये थे। सीकरके रघुनाथगढ़ और देवगढ़ भी सीकरवालों को खाली करने पड़े थे, जो कुछ समय बाद उनको वापिस मिल गये।

यह सेना "शेखावाटी ब्रिगेड" नामसे यहीं रहने लगी। मेजर फारेस्टर † इसके अधिनायक नियुक्त हुए। उन्होंने यहीं के लुटेरों और डाकुओंको वेतन देकर सेना में रक्खा, इस तरह अच्छा संगठन बना लिया। सेना के प्रतिवर्षके व्यय में ७३५००) रुपये लगने

* कर्नल लाकेट—ब्रिटिश गवर्नमेंट द्वारा आदेशित होकर संवत् १८८८ में राजपूताना के प्रथम ए० जी० जी० बनकर आये थे। उन्होंने संवत् १८८९ में डाकू और लुटेरों की जांचके लिए शेखावाटीका एक दौरा किया। दौरा करनेके बाद उन्होंने एक रिपोर्ट लिखी, जिसके फलस्वरूप उपर्युल्लिखित ब्रिटिश सेना का ब्रिगेड शेखावाटी में आया।

† मेजर फारेस्टर—एक सैनिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति थे। कुछ समय पिंडारियों के साथ भी रहे। बादमें "शेखावाटी ब्रिगेड" के मुखिया बनकर आये थे।

लगे। २२०००) बीकानेर-राज्यसे और ५१५००) शेखावाटी के सामन्तों से लिये जाने लगे।*

संवत् १८६३ में "शेखावाटी ब्रिगेड" जयपुर के अधिकार में आ गया। मेजर फारेस्टर ही उसके प्रधान पद पर रहे। तदनन्तर यही ब्रिगेड संवत् १६०० में घटाकर पैदल सिपाहियों का एक रेजिमेंट बना दिया गया, जिसका व्यय ब्रिटिश गवर्नमेंट देने लगी।

रावराजा रामप्रतापसिंहजी संवत् १८६३ में केवल ८ ही वर्षके हो पाये थे। उस समय उनकी बाल्यावस्था देख, स्वार्थी लोग राज्य में नित नये बखेड़े खड़े कर देते थे। बिना किसी उत्पात के स्वार्थियों को कब चैन पड़ सकती थी! राज्य उपद्रवोंका केन्द्र बन गया था, जिससे प्रजाके सुखकी तो कौन कहे, नींद और भूख तक उड़ गयी थीं।

समर्थसिंहजी के वंशधर श्यामसिंहजी ने इसी साल जयपुर कोर्टमें सीकर पर १२० गांवों † की नालिश कर दी, जिसके फलस्वरूप उन्हें ११ गांव सीकर से मिल गये।

भैरवसिंहजी ‡ की माता मेड़तनीजी ने भी जयपुर दरबार में

---

* शेखावाटी की गरीब प्रजा को ही उपर्युक्त रकम कर-रूप में अपने सामन्तों को देनी पड़ती थी।

† समर्थसिंहजीकों के गांव जो राव देवीसिंहजी द्वारा छीने जाकर अधिकृत कर लिये गये थे।

‡ रावराजा रामप्रतापसिंहजीके वैमातृक भाई, जो उनके पश्चात् सीकर की गद्दीपर बैठ चुके हैं।

अपने पुत्र के लिए आधे राज्य का दावा कर दिया। उनके दावेकी यथाविधि जांच हो जाने के बाद, कुड़ली और सीमालला गांवों सहित उन्हें ५०००) रुपये वार्षिक आमदनी की जागीर, सीकर से दिलादी गयी।

श्री राठोड़जी का हृदय, इस तरह के उत्पातों से सीकर-राज्यकी उत्तरोत्तर क्षति देखकर, दहल उठा। वे किसी प्रबल शक्ति के सहयोग की अपेक्षा करने लगीं। उन्होंने जयपुरके पी० ए० (पोलिटिकल एजेण्ट) को अपनी कष्ट-कथा लिख भेजी। पी० ए० ने पुरोहित रामनाथजी * को कामदार के पद के लिए नियुक्त करके भेज दिया ; परन्तु पुरोहितजी सीकर अधिक दिन न टिक सके ; कारण उनकी नीतिसे रावराजाजी सहमत नहीं थे।

रावराजाजी चाहते थे कि वे एक बार अपनी प्रजाकी वास्तविक स्थिति देखकर, उसके सुख-दुःखका अनुमान लगावें। इसीसे उन्होंने संवत् १८९८ में अपने राज्य भर का पर्यटन किया। कर्नल सदरलैण्ड से भी मिले, तभी से उनकी सदरलैण्ड से मैत्री हो गयी थी।

संवत् १९०३ में रावराजा रामप्रतापसिंहजी सदरलैण्ड से मिलने अलवर गये, तब उन्होंने अपने खवासवाल भाई तथा रामबख्शजी

* खेतड़ी राज्य के कामदार थे। उनका खेतड़ीमें काफी दबदबा था। उनकी हवेली, जिसमें आजकल खेतड़ो का जेलखाना है, पुरोहितजी की हवेली के ही नाम से विख्यात है।

द्वारा उपभोग की जानेवाली सम्पत्ति के सम्बन्ध में जिक्र करते हुए कहा कि "हमारी जिस सम्पत्तिका ये लोग उपभोग कर रहे हैं, वह हमें वापिस मिल जानी चाहिए।"

कर्नल सदरलैण्ड ने जयपुर जाकर रावराजा रामप्रतापसिंहजी के प्रस्ताव को जयपुर रिजेंसी के सामने पेश किया, जिसे रिजेंसी ने मंजूर कर लिया और एक सेना रावराजाजी की सहायतार्थ जयपुर से भेजी।

रावराजाजी जयपुरकी सैन्य-सहायता प्राप्त करके खवासवालोंके किले सिंगरावट पर चढ़ दौड़े। उधरसे डूंगजी, जवाहरजी और भूपालसिंहजीकी मदद पाकर, खवासवाल और रामबख्शजीने उनका सामना किया। तब क्या था! दोनों ओरके वीर परस्पर भिड़ गये। कई दिनों तक लड़ाई होती रही। आखिर सिंगरावटका किला ले लिया गया। खवासवाल और रामबख्शजी आकर राव-राजाजीके पैरों पड़ गये, जिससे रावराजाजीने दयार्द्र होकर ·०००) रुपये वार्षिक आमदनीकी जागीर खवासवालोंको दी तथा १२५०) रुपये वार्षिक आयकी रामबख्शजी को। तिसपर भी वे लोग शान्तिपूर्वक नहीं रहे।

रावराजा रामप्रतापसिंहजी एक सुयोग्य सच्चरित्र शासक थे। राजनीति अच्छी जानते थे, जिसके लिए उनकी अच्छे-अच्छे राज-नीतिज्ञ भी प्रशंसा किया करते थे। एकबार कर्नल सदरलैण्डने भी उनकी राजनीतिज्ञताकी तारीफ की थी।

धर्मशास्त्रोंके अध्ययनके लिए रावराजा रामप्रतापसिंहजीने "सिद्धान्त-कौमुदी" पढ़ी थी।* "सिद्धान्त-कौमुदी" पढ़कर उन्होंने मनोयोगपूर्वक स्मृतियोंका अध्ययन किया एवं स्मृति वचनों पर सश्रद्धा चले भी। उदाहरण लीजिये,—लक्ष्मणगढ़के परम वैष्णव पूर्णमलजी प्रेमसुखदास गनेड़ीवाला—जो स्वयं चक्रांकी वैष्णव थे—ने रावराजाजीसे भी चक्रांकित हो जानेका अनुरोध किया। राव-राजाजीने चक्रांकित होना, स्मृति वचनोंके प्रतिकूल समझ,—इनकार कर दिया।

स्मृति वचनों पर रावराजाजीकी इतनी आस्था थी कि अपने गुरु पं० श्रीरामजी—जिनसे कौमुदी सीखी थी—का भी, दक्षिणाके लोभसे चक्रांकित हो जानेके कारण, उन्होंने सीकरके गढ़में प्रवेश निषेध कर दिया था।

रावराजा रामप्रतापसिंहजी निरामिष भोजी थे। उन्होंने जीवन में कभी मांस-भक्षण और मद्य-पान नहीं किया। एक क्षत्रिय होते हुए निरामिष भोजी होना, उनके ऊंचे चरित्रका द्योतक है।

संवत् १९०७ में रावराजा रामप्रतापसिंहजी रोगाक्रांत होगये। उनकी अवस्था दिन पर दिन खराब होती गयी। आखिर जब उनको बचनेकी उम्मेद न रही, तब भैरवसिंहजीको दत्तक रूपमें ले लेनेका विचार किया। उन्होंने भैरवसिंहजीको बुला भेजा; लेकिन

---

* रींगसके पं० श्रीरामजीने रावराजा रामप्रतापसिंहजी को सिद्धान्त-कौमुदी पढ़ायी थी।

श्रीराठोड़जीके डरसे वे आ न सके और रावराजाजी, बिना किसीको दत्तक स्वीकार किये, मृत्युको प्राप्त होगये।

इस तरह रावराजाजी २२ वर्षकी छोटी अवस्थामें ही केवल १७ वर्ष राज्य करके स्वर्ग सिधारे।

८—रावराजा भैरवसिंहजी

(सम्वत् १९०८ से १९२२ तक, तदनुसार सन् १८५१ से १८६५ तक)

रावराजा रामप्रतापसिंहजीके मरनेके बाद, उनकी ज्येष्ठा रानी* रानावतजीने भैरवसिंहजीको दत्तक स्वीकार करके, उन्हें शासनाधिकार देना चाहा; परन्तु उनकी सास श्रीराठोड़जीने उन्हें ऐसा करने से रोका और कहा कि "भटियानीजी (स्वर्गीय रावराजाजीकी कनिष्ठा रानी) गर्भवती हैं, सम्भव है उनके गर्भसे कोई लड़का पैदा हो जाय।"

उपर्युक्त वार्ताको लेकर श्री० राठोड़जी और रानावतजीमें एक प्रकारकी कलह पैदा हो गयी। घरकी कलह बुरी होती है, उसके भावी परिणामके सम्बन्धमें श्री० राठोड़जीका सौतिया डाहसे जला-भुना हृदय न विचार सका; इसीसे उन्होंने अपनी सहपत्नी (सौत)†

* रावराजा रामप्रतापसिंहजी की, रानावतजी और भटियानीजी, दो रानियां थीं।

† भैरवसिंहजी की माता मेड़तनीजी और श्री० राठोड़जी दोनों ही रावराजा लक्ष्मणसिंहजीकी पत्नी एवं परस्पर सहपत्नी (सौत) थीं।

के पुत्र भैरवसिंहजीके दत्तक रूपमें लिये जानेका विरोध किया, और अन्त तक करती रहीं।

भैरवसिंहजीको सीकरकी गृह-कलहका पता लग गया था, उन्होंने अवसरकी उपयुक्तताको हाथसे जाने देना उचित नहीं समझा। तुरन्त ही जयपुर जाकर सीकर पर अपने स्वत्वका दावा कर दिया। इसी तरह एक साल निकल गया। आखिर भैरवसिंहजीका सीकर-राज्य पर स्वत्व, न्यायसम्मत सिद्ध होगया।

जयपुरसे भैरवसिंहजीका अधिकार घोषित कर दिया गया; तब भैरवसिंहजी संवत् १६०८ में सीकरके सिंहासन पर विराजे। प्रारम्भमें कुछ छोटे आदमियोंके संसर्गके कारण, उनकी अपकीर्त्ति हुई।

जयपुर भरमें सीकरकी बदनामी फैल गयी थी। जयपुरकी ओर से करोलीके एजेण्ट केप्टेन हार्ड कासल, शेखावाटीकी व्यवस्था करनेके लिए आये और सीकरमें ठहर कर उन्होंने व्यवस्था की।

रावराजा भैरवसिंहजी भी इधर कुछ सावचेत हुए। उन्होंने सीकरकी सुव्यवस्थाका काम अपने हाथमें लिया; क्योंकि उनका विश्वास अपने कतिपय विश्वासपात्र सेवकोंसे भी—उनकी स्वार्थ-परता देखकर—बिलकुल उठ गया था।

संवत् १६०६ में रावराजा भैरवसिंहजीने अपना एक दरबार किया, उसमें उन्होंने अपने समस्त अभिजनोंको आमंत्रित किया। आमंत्रण पाकर प्रायः सभी कुटुम्बीजन सीकर पहुंचे। उनमेंसे मुकुन्दजी, हुकुमजी, चिमनजी (खवासवाल बन्धु), भूपालसिंहजी,

जवाहरजी और जवानजीके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। मुकुन्दजी, प्रधान मन्त्रीके पद पर नियुक्त किये गये।

रावराजा रामप्रतापसिंहजीसे त्रास पाकर जिन लोगोंने सीकर छोड़ दिया था, वे लोग भी भैरवसिंहजीके राजत्वमें फिर सीकरमें आकर रहने लगे।

संवत् १९१४ में गदर—जो सन् ५७ के गदरके नामसे प्रसिद्ध है—छिड़ गया, जिसमें भारतीय सैनिक, ब्रिटिश गवर्नमेंटके विद्रोही हो उठे थे। उस समय ब्रिटिश गवर्नमेंटने राजपूतोंसे सहायता चाही। राजपूताना प्रान्तान्तर्गत विविध ठिकानोंके अधिपतियोंसे भी सहायता मांगी गयी थी।

उस सिपाही-विद्रोहमें जयपुरकी ओर से एक सेना, ब्रिटिश गवर्नमेंटकी सहायतार्थ भेजी गयी, * उसीके साथमें सीकरके रावराजा भैरवसिंहजीने भी अपनी एक घुड़सवार सेना भेजी, जिसके लिए उनको सधन्यवाद ५०००) की खिलअत † प्राप्त हुई।

रावराजा भैरवसिंहजी सरल प्रकृतिके मनुष्य थे। सरलता उनमें आवश्यकतासे अधिक थी। जोरावरसिंहजी लाड़खानीने रावराजाजीकी सरलतासे लाभ उठानेका एक उपाय सोचा। उन्होंने संवत् १९१८ में एक बनावटी लड़का बनाकर, उसे स्वर्गीय रावराजा जी (रामप्रतापसिंहजी) का पुत्र सिद्ध करना चाहा। जयपुरकी

* जयपुर को इस सहायताके लिए कोट-कासिम का परगना मिला था।

† खिलअत—बादशाह-द्वारा दी गयी पोशाक को कहते हैं।

कोर्टमें उसका मुकद्दमा दायर किया गया, लेकिन मुकद्दमा झूठा और निराधार साबित होनेसे खारिज हो गया।

रावराजा भैरवसिंहजी बड़े लोभी थे। वे रुपये संचित करना जानते थे, खर्च करना नहीं। हर साल अपनी प्रजाके लोगोंसे, वे बिना किसी कारणके ही, धन संग्रह करते थे और अपना खजाना भरते रहते थे; इसीसे जब वे मरे, सीकरका खजाना भरा-पूरा था।

संवत् १९२१ में रावराजा भैरवसिंहजीकी तंदुरुस्ती बिगड़ गयी। वे प्रायः बीमार ही रहने लगे। निःसन्तान होनेसे उन्हें अपने उत्तराधिकारी रूपमें किसीको दत्तक लेनेका विचार हुआ। तब उन्होंने अपने निकटस्थ कुटुम्बी स्व० ठाकुर बिड़दसिंहजी* के छै वर्षीय पुत्र माधवसिंहजीको दत्तक स्वीकार कर लिया और स्वयं संवत् १९२२ में स्वर्गस्थ हुए।

* राव शिवसिंहजी के तृतीय पुत्र मेदसिंहजी के वंशधर।

९—रावराजा माधवसिंहजी बहादुर

(संवत् १९२३ से १९७९ तक, तदनुसार सन् १८६६ से १९२२ तक)

संवत् १९२३ के पादार्पणके साथ, चैत्र शुक्ला ७ को रावराजा भैरवसिंहजीके बाद, उनके दत्तक पुत्र रावराजा माधवसिंहजीको सीकरकी गद्दीका अधिकार मिला। रावराजाजी उस समय केवल छै ही वर्षके थे, पर थे चपल। उनकी बाल्यसुलभ चपलता देखकर लोग अवाक् रह गये और लगे उनकी प्रशंसा करने। वास्तवमें उस समय सभीको अनुपम आनन्दोपलब्धि हुई थी। मुकुन्दजी, उस समय सीकरके शासन-व्यवस्थापक थे, जो बड़ी ही योग्यतासे राज-कार्यका संचालन किया करते थे।

इतनी छोटी अवस्थामें रावराजा माधवसिंहजीके सिंहासनासीन होनेसे शेखावाटीके डाकू और लुटेरोंके मनको नवीन उत्साहकी प्राप्ति हुई। उन्होंने सीकर रियासतमें उपद्रव मचाना शुरू किया; लेकिन मुकुन्दजीने उनका दमन अति शीघ्र ही कर दिया, जिससे उनको शांत होना पड़ा।

संवत् १९२५ में अनावृष्टि अकाल पड़ा। उस समय भी मुकुन्द-जीने सीकर-राज्यकी ओर से अकाल पीड़ित जनोंकी सहायता करके राज्यका यश परिवृद्ध किया।

संवत् १९२८ में रावराजा माधवसिंहजी लार्ड मेयोके दरबारमें सम्मिलित होनेके लिए जयपुर गये। उस समय लार्ड मेयोने खिल-अत देकर उनको सम्मानित किया था।

मुकुन्दजी—जो अब तक निःस्वार्थ होकर सीकरका राज-काज चलाते थे—के हृदयमें संवत् १९३० में स्वार्थका पौधा पनप आया। वे अपने लिए सीकर-राज्यसे १०००) रुपये मासिक चाहने लगे, जिसके विषयमें उन्होंने जयपुरसे भी लिखा-पढ़ी की और जयपुरके तत्कालीन पोलिटिकल एजेण्टसे इस सम्बन्धमें कहलाना चाहा। यही उपाय अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिए उन्हें उचित जान पड़ा।

तदनन्तर बिना किसी की इजाजतके ही वे सीकरके राज-कोषसे १०००) रुपये, प्रतिमास उठाने लगे। अपनी जागीरके गांवोंको भी उन्होंने बड़े गांवोंसे बदल लिया। मुकुन्दजीकी इस प्रकारकी स्वार्थ-भरी नीति देखकर रावराजा माधवसिंहजीने उनको प्रधानामात्यके पदसे च्युत कर, उस पद पर दूसरे किसी सुयोग्य व्यक्तिको नियुक्त कर देना चाहा।

रावराजा माधवसिंहजीकी अपने प्रति अप्रसन्नता देखकर मुकुन्द-जीने इस्तीफा पेश किया, जिसे रावराजाजीने बिना किसी आनाकानी के स्वीकार कर लिया। इलाहीबख्शजी (खाँजी) * उक्त पद पर नियुक्त किये गये।

महारानी विक्टोरियाकी राजराजेश्वरी उपाधिके ग्रहणोपलक्षमें संवत् १९३३ में जब लार्ड लिटन-द्वारा दिल्लीमें दरबार किया गया,

* फतहपुर-निवासी झुंझुनू निजामतके एक वकील, जो बाद में राव-राजा माधवसिंहजीकी कृपाके अधिकारी होनेसे प्रधानामात्यके पदपर नियुक्त किये गये।

उस अवसर पर रावराजा माधवसिंहजी, जयपुरेश सवाई रामसिंहजी के साथमें दिल्ली जाकर, दरबारमें समुपस्थित हुए। तभीसे रावराजाजी पर जयपुरपतिका स्नेह कुछ अधिक होगया था। उन्होंने रावराजाजीको पंचरंग झंडा और शिरोपाव देकर सम्मानित किया।

इलाहीबख्शजी जो कुछ समय-पूर्व, मुकुन्दजीके बाद, रावराजाजी के प्रधानामात्यके पद पर नियुक्त किये गये थे, वे संवत् १९३६ में अपने त्रुटिपूर्ण शासन-विधानके कारण रावराजा माधवसिंहजी-द्वारा पदच्युत कर दिये गये और कारावासमें डाल दिये गये। राय परमानन्दजीने रावराजाजीकी अनुज्ञा पाकर उक्त पदको सुशोभित किया। चिमनजी उनके सहायक बने।

कुछ समय बाद, जब मुकुन्दजीका देहान्त होगया, तब उनके पुत्र पन्नासिंह * ने सीकरमें उपद्रव करना शुरू कर दिया। रावराजा माधवसिंहजीने उस पर कुरकी भेज दी और मुकुन्दजीके बदले हुए गांवोंको अपने अधिकारमें कर लिया। प्रार्थना करने पर पन्नासिंह को उसके पिताकी पूर्वकी जागीरके गांव दे दिये गये।

जयपुर-राज्यकी ओर से, संवत् १९३९ में † एक आदेश-पत्र निकाला गया, जिसमें जयपुरकी फौजदारी और दीवानी अदालतें सीकर और खेतड़ीमें स्थापित करनेकी बात लिखी थी। इससे सीकर और खेतड़ीके फौजदारी और दीवानी अधिकार लोप होते

* मुकुन्दजीका पुत्र, जो बादमें हुकुमजी के दत्तक आ गया था।

† महाराजा सवाई माधवसिंहजी के राजत्व में।

थे। रावराजा माधवसिंहजी और खेतड़ीके तत्सामयिक राजा अजीतसिंहजीने अन्यान्य शेखावतोंके साथ, इसका विरोध किया, जिससे सीकर और खेतड़ीके दीवानी और फौजदारी स्वत्व पूर्ववत् रहें।

रावराजा माधवसिंहजी संवत् १९४३ में जयपुर-नरेशके जुबिली महोत्सव पर जयपुर पधारे, उस समय उनको 'बहादुर' की उपाधि जयपुरपतिकी ओर से दी गयी।

संवत् १९५६ में जब भीषण अकाल पड़ा, तब रावराजा माधवसिंहजीने अकाल-पीड़ित लोगोंकी सहायतार्थ मकान बनवाने शुरू कर दिये। उस समय कोई भी दीन-हीन वहाँ काम करके मजदूरी प्राप्त कर, अपने उदरकी पूर्ति कर सकता था।

रावराजा माधवसिंहजीने सीकरमें एक हस्पताल बनवाया तथा अन्यान्य कई नूतन भवन भी निर्माण करवाये, जिनको विद्युच्छटाके आलोकसे आलोकित किया गया। इस तरह सीकरकी शोभा पहले से द्विगुणित होगयी।

संवत् १९५८ में रावराजा माधवसिंहजीने कलकत्तेकी यात्रा * की। उस समय उनको भगवानदासजी बागलाके हस्पताल-भवनमें अवस्थान मिला और सेठ ताराचन्दजी घनश्यामदासके यहां उनका अभिनन्दन हुआ। इस यात्रामें वे करीब १ महीने कलकत्ता ठहरे थे।

---

* रावराजा माधवसिंहजीने ४ बार कलकत्तेकी यात्रा की थी, जिनमें से उपर्युल्लिखित दूसरी है।

तत्पश्चात् रावराजा माधवसिंहजी जयपुरेश महाराजा सवाई माधवसिंहजीके साथ, संवत् १६५६ में सम्राट सप्तम एडवर्डके राज्याभिषेकोत्सव पर इङ्गलैंड पधारे।

संवत् १६६६ में रावराजा माधवसिंहजी फतहपुर आये और फतहपुर पिंजरापोल नामक संस्थाके भवनका शिलारोपण किया।

रावराजा माधवसिंहजी प्रजावत्सल, उदार और दयाप्रेमी नरेश थे। उन्होंने अपने राज्यके सुप्रसिद्ध दानवीर प्रातःस्मरणीय स्व० सेठ सुखानन्दजी सरावगी * के अनुरोधसे फतहपुर, रामगढ़, लक्ष्मणगढ़ और सीकरमें प्रत्येक मासकी शुक्ला १४ को तथा दश-लक्षणी पर्व † के दिनोंमें पशु-वध और मांस बिक्री न करनेकी आज्ञा जारी कर अपनी दयालुताका परिचय दिया। तत्पश्चात् फतहपुर, रामगढ़ और लक्ष्मणगढ़के दशहरेका पशु-बलिदान भी रावराजाजीने उपर्युक्त सेठजीके कहनेसे सदाके लिए बन्द करके अपने नामको चिरस्मरणीय बना लिया।

पिछले महायुद्धके अवसर पर रावराजा माधवसिंहजीने ब्रिटिश गवर्नमेंटकी, करीब ४ लाख रुपये वारलोनमें देकर सहायता की।

ब्रिटिश गवर्नमेंटने रावराजाजीको सन् १६२२ ई० (संवत् १६७६) के जनवरी मासमें नूतन वर्षारम्भके उपलक्षमें "के० सी० आई० ई०" की उपाधिसे विभूषित किया।

---

* सेठजी के विषयमें अन्यत्र, इसी पुस्तक के पंचम खण्डमें पढ़िये।

† दशलक्षणी पर्व—जैनियोंका एक पर्व, जो भाद्रपद की शुक्ला पंचमी से शुक्ला चतुर्दशी तक रहता है।

इसके थोड़े दिन बाद ही रावराजाजी रोग-शय्या-शायी होगये। उनको अपने बचनेकी आशा न रही। उन्होंने अपने बड़े भाई विलापसिहजीके लड़के कल्याणसिंहजीको अपना दत्तक बना लिया। तत्पश्चात् आषाढ़ शुक्ला ४ संवत् १९७९ को उनका स्वर्गवास होगया।

१०—रावराजा कल्याणसिंहजी बहादुर

(संवत् १९७९ से, तदनुसार सन् १९२२ से)

रावराजा माधवसिंहजीका उत्तरकृत्य सम्पन्न हो जानेके बाद, संवत् १९७९ के आषाढ़ मासकी शुक्ला १५ को रावराजा कल्याणसिंहजी सीकरकी गद्दी पर अधिष्ठित हुए। सीकरकी प्रजाने उसी रोज संध्या समय इनका हर्षपूर्वक अभिनन्दन-समारोह मनाया, जिसमें इनको एक अभिनन्दन-पत्र भी दिया गया।

रावराजा कल्याणसिंहजीका भव्यभाल और चमकता हुआ मुख देखकर प्रजा-जन फूले नहीं समाते थे। उस समय सब यही कहते थे कि कल्याणसिंहजी द्वारा सीकर-राज्य अवश्य कल्याणको प्राप्त होगा। रावराजाजीकी स्वभाव-सुलभ विनम्रता, धर्म-प्रियता और दयालुता देखते हुए, लोगोंका इस प्रकार सुन्दर भविष्यकी कल्पना करना अनुचित नहीं था।



वर्तमान जयपुर-नरेश



वर्तमान सीकर-नरेश

अपनी दयालुताका परिचय तो, रावराजा कल्याणसिंहजीने गद्दी पर बैठनेके थोड़े समय बाद ही संवत् १९८२ की माघ कृष्णा १३ को, फतहपुर-निवासी प्रातः स्मरणीय दानवीर, सीकर-राज्यमें अहिंसा परमोधर्मः की पवित्र पताका फहरा देनेवाले स्व० सेठ सुखानन्दजीके कहनेसे, अगतों * पर किये जानेवाले पशुबध और मांस-विक्रय जैसे घृणित कार्य सदाके लिए बन्द करके, दिया। नवाब जलालखाँ द्वारा पशुओंके चरनेके लिए छोड़ी गयी बीहड़में बिना राज्यकी सनदके शिकार न करनेकी इजाजत भी रावराजाजीने दी तथा स्व० रावराजा माधवसिंहजी द्वारा, फतहपुर, रामगढ़ और लक्ष्मणगढ़में जारी की हुई दशहरेके पशु-बलिदानकी निषेधाज्ञामें रावराजाजीने सीकरका नाम और जोड़कर सीकरसे भी इस

---

* अगते (जिन पर पशुबध और मांस बिक्री निषेध हैं) :—

(१) रावराजा भैरबसिंहजी की दाग तिथि
(प्रत्येक मासकी शुक्ला १०)

(२) रावराजा माधवसिंहजीकी दाग तिथि
(प्रत्येक मासकी शुक्ला ४)

(३) धार्मिक अगते ([क] प्रत्येक मासकी कृष्णा ११ और १५)
([ख] प्रत्येक मासकी शुक्ला ११ और १५)
([ग] प्रत्येक मासकी शुक्ला १४ और ८)
(घ] दशलक्षणी पर्व—भादवा सुदी ५से १४ तक)
([ङ] प्रत्येक रविवार और मंगलवार)

कलंकिनी रूढ़िको सदाके लिए निर्वासित कर अपनी महानता दिखलायी।

राज्यमें किये गये उपर्युक्त सुधारोंके प्रतिकूल आचरण करने पर रावराजाजीने २००) रुपया जुर्माना और छै मासका कारावास दण्ड नियत किया।

सीकरकी शासन व्यवस्था भी —जो पहले पुराने ढर्रेसे परिचालित की जाती थी—रावराजा कल्याणसिंहजी द्वारा अतिशय परिवर्तनको प्राप्त होकर, चमक उठी। ७ विभाग, इन्होंने अपने शासन कार्योंके चलानेके लिए बनाये, जिनका विवरण निम्नाङ्कित है।

१. "पुलिस विभाग" जो पहले फौजदारी विभागके अन्तर्गत था, वह अब फौजदारी अदालतोंसे बिलकुल पृथक् कर दिया गया और एक अलग विभाग "पुलिस डिपार्टमेण्ट" नामसे बनाया गया, जिसका संचालन सीकरके पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट करते हैं।

२. लगान पहले ठेके * से वसूल किया जाता था, वह अब "रिवेन्यू डिपार्टमेण्ट" द्वारा नियुक्त किये हुए तहसीलदारोंकी मातहतीमें लटारों † द्वारा वसूल किया जाने लगा।

---

* ठेका—किसानोंसे लगान वसूल करने के लिए, ३—३ वर्ष का ठेका दिया जाता था। तीन वर्ष के बाद ठेका दूसरे आदमी को दे दिया जाता था। अधिक लगान वसूल करके देनेवाले ही प्रायः ठेका पानेके अधिकारी होते थे। ऐसी अवस्था में बेचारे किसानों की शामत आ जाती थी। यह ठेका रिवेन्यू डिपार्टमेंट द्वारा सदाके लिए बंद कर दिया गया।

† लटारे—लगान वसूल करने के लिए रक्खे हुए राज्यके नौकर।

३. न्याय-इन्साफके लिए जो विभाग खोला गया, उसको "जुडीशियल डिपार्टमेण्ट" कहते हैं। इस विभागके लिए एक सुयोग्य जुडीशियल आफिसर तथा एक जुडीशियल सेक्रेटरी नियुक्त किये गये। दीवानी और फौजदारी मुकद्दमोंके इब्तिदायी (प्रारम्भिक) अधिकार तथा अपीलांटके अधिकार जुडीशियल आफिसरको मिले। इसके अतिरिक्त फौजदारको भी दीवानी और फौजदारी मामलोंमें इब्तिदायी अधिकार प्राप्त हुए।

४. "फाइनेन्स डिपार्टमेण्ट" राज्यके खजानेके नामसे, पहले एक महाजनकी देखरेखमें चलता था, उसको उक्त नाम देकर एक अकाउण्टेण्टके अधीन कर दिया गया।

५. शिक्षाकी उन्नतिके लिए "एजुकेशन डिपार्टमेण्ट" खोला गया। पहले २४००) रुपये वार्षिक शिक्षाके लिए खर्च किये जाते थे, वे अब बढ़ाकर ६०००) वार्षिक कर दिये गये। सीकर मिडिल स्कूल हाई स्कूल बना दी गयी एवं छात्रोंके रहनेके लिए एक बोर्डिङ्ग हाउस भी बना। इसके अलावा सीकर राज्यमें कई पाठशालाओंको सहायता दी जाने लगीं तथा कई पाठशालाएं राज्यके गांवोंमें खोली गयीं, जिनको भी राज्यकी ओर से सहायता मिलती है। शिक्षा-सम्बन्धी सब कार्य एक उच्च शिक्षा प्राप्त सुयोग्य आफिसरके निरीक्षण में होते हैं।

६. सीकरके राजकीय हस्पतालका काम एक असिसटेंट सर्जन चलाते थे। अब "मेडीकल डिपार्टमेण्ट" ने एक एम्० बी० बी० एस्०

मेडीकल आफिसरको बुलाकर उक्त संस्थाके लिए नियुक्त कर दिया है, जो सीकरके सभी चिकित्सालयोंकी देख-भाल करते हैं।

७. जगात वसूल करनेके महकमेमें भी कई सुधार हुए। उसे "कस्टम डिपार्टमेण्ट" नाम देकर उस विभागके सब पुराने कार्य-कर्त्ताओंको निकाल दिया गया और नये-नये अधिकारियोंकी नियुक्ति की गयी।

उपर्युक्त सुधार करनेके बाद रावराजा कल्याणसिंहजीका ध्यान, राजपूतोंमें प्रचलित कन्या-बधकी ओर गया। इन्होंने उस गर्हणीय प्रथाके समूल उत्पाटनार्थ प्रत्येक धनहीन राजपूतको उसकी कन्याके विवाहके लिए १००) रुपये राज्यसे देनेका नियम बनाया। रावराजा-जीकी इस अनुपम उदारताके कारण न जाने कितनी अबोध निरपराध बालिकाएं कालके गालसे बचीं।

तत्पश्चात् अपने राज्यमें और-और सुधार करनेके लिए लाला-यित रावराजा कल्याणसिंहजीने एक सुयोग्य राजनीतिज्ञ आफिसरका नियुक्त किया जाना उचित समझा। ए० जी० जी० राजपूतानासे इस सम्बन्धमें परामर्श करनेके बाद, इन्होंने, बदायूं (यू० पी०) की जजेज कोर्टके मुन्सरिम खानसाहिब ख्वाजा अजीजुर्रहमानको संवत् १६८१ में अपना सीनियर आफिसर बनाया। तीन वर्षके लिए खानसाहिब नियुक्त किये गये ; परन्तु बीचमें ही संवत् १६८२ के आषाढ़ मासमें--जब उनकी नियुक्तिको दश महीने ही हो पाये थे—उनका देहान्त होगया।

खानसाहिबके समय तक सीकर राज्यमें जो सुधार होने थे,

हो चुके ; पश्चात् ऐसा कोई सुधार नहीं हुआ, जिसका उल्लेख किया जाय ।

खानसाहिबके बाद रावराजा कल्याणसिंहजीने कई सीनियर आफिसर रक्खे और निकाल दिये । संवत् १९८२ से १९९१ तकके ९ वर्षके अल्प कालमें ही ७ सीनियर आफिसर नियुक्त किये गये, जिनमेंसे अन्तिम केप्टेन ए० डब्ल्यू० टी० वेब हैं, जो संवत् १९९१ में सीनियर आफिसर पदके अधिकारी हुए ।

उपर्युल्लिखित ९ वर्षकी अवधिमें ही सीकर राज्यको कई उपद्रवों का सामना करना पड़ा । समय-समय पर शासन-व्यवस्था सम्बन्धी त्रुटियोंके कारण नये-नये उपद्रव खड़े हो जाते थे । 'फतहपुर और रामगढ़के हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़े' * और 'जाट-आन्दोलन' † प्रभृति कई उत्पात हुए । इन उत्पातोंके कारण सीकरको कम क्षति नहीं उठानी पड़ी है ।

---

* (क) संवत् १९८५ में मुहर्रम के अवसर पर फतहपुर में हिन्दू-मुसलमानोंका झगड़ा हुआ ।

(ख) संवत् १९८९ में बिसाऊ दरवाजे के बाहर बनी हुई मुसलमानों की एक मसजिद के निकट में स्थित पीपल के पेड़ के प्रश्न को लेकर रामगढ़ में हिन्दू-मुसलमानोंका पारस्परिक संघर्ष हुआ ।

† अधिकार मदसे मतवाले राज्य-कर्मचारियों द्वारा की गयी ज्यादतियों के कारण संवत् १९९० में जाट-जातिमें एक नवीन जोश उत्पन्न हो गया था, वही आगे चलकर संवत् १९९१ में एक आन्दोलन का रूप बन गया ।

नये-नये सीनियर आफिसरोंकी नियुक्ति और निष्कासनको ही इन उपद्रवोंका श्रेय है। न वे जल्दी-जल्दी आते और न बरखास्त किये जाते तो सीकरको, ये दिन, जो आज देखने पड़ रहे हैं, नहीं देखने पड़ते। पर किया क्या जाय, जब सीकरके शासन-विधानको अव्यवस्थित बनानेके लिए विधिका विधान ही ऐसा था।

सुनते हैं, सीनियर आफिसरके रहते हुए भी रावराजा कल्याण-सिंहजी, बालाबख्शजी कायस्थकी सलाहसे राजकाज चलाते थे। यह बात कहां तक सत्य है, मैं नहीं कह सकता। किसी सीनियर आफि-सरने रावराजाजीके विरुद्ध, बालाबख्शजीकी सलाहसे परिचालित सीकरकी शासन-व्यवस्थामें हस्तक्षेप चाहते हुए, जयपुर शिकायत भेजी, जिसके फलस्वरूप बालाबख्शजी निर्वासित कर दिये गये और सीकर ठिकानेको कोर्ट ऑफ वार्डस् के अधीन कर देनेकी धमकी रावराजाजीको दी गयी।

तत्पश्चात् उपर्युक्त ७ सीनियर आफिसरोंमेंसे अंतिम केप्टेन ए० डब्ल्यू० टी० वेब संवत् १९९१ में सीकरके सीनियर आफिसर पदके लिए नियोजित किये गये। द्वितीय बैसाख शुक्ला १० बृहस्पति-वारके रोज केप्टेन वेबकी उक्त पद पर तीन वर्षके लिए नियुक्ति हुई।

सीनियर आफिसर होनेके १५ दिन बाद ही केप्टेन वेबने रावराजा कल्याणसिंहजीको एक प्रार्थना-पत्र, एग्जीक्यूटिव और जुडीशियल अधिकारोंकी प्राप्तिके लिए, लिखा। रावराजाजीने उक्त प्रार्थना-पत्रको स्वीकार करते हुए उनको याचित अधिकार देकर संतुष्ट

कर दिया। पूर्वके किसी भी सीनियर आफिसरको ये अधिकार प्राप्त नहीं हुए थे।

इसके अतिरिक्त केप्टेन वेबको तत्सामयिक जाट आन्दोलनसे उत्पन्न अशांतिको मिटा देनेके लिए, तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण अधिकार प्रदान कर दिये गये। केप्टेन वेबने अधिकार प्राप्त कर जाट-जाति के असंतोषको मिटा कर शांति-स्थापन करनेकी पूर्ण चेष्टा की।

रावराजा कल्याणसिंहजी द्वारा केप्टेन वेबकी उपर्युक्त अधिकार-प्राप्ति, रावराजाजी और उनके सीकर-राज्यके लिए हितकर ही सिद्ध हुई। तत्पश्चात् रावराजाजीने फतहपुरके एक धनी सेठको, कस्टम ड्यूटीज, कोर्ट-फीस और फुटकर खर्च माफ कर सम्मानित किया, जिसकी चर्चा जयपुर तक पहुंची। जयपुर-नरेशने, किसी धनी-मानीका इस प्रकार कोर्ट-फीससे मुक्त किया जाना अनुचित और गैरकानूनी बतलाया। उसी समयसे जयपुर-गवर्नमेंटने राव-राजाजीसे सीकर ठिकानेका शासनाधिकार छीन लेनेका विचार कर लिया। केप्टेन वेबकी भी रावराजाजीके विरुद्ध अपने कार्यमें हस्त-क्षेप करनेकी शिकायत जयपुर पहुंची।

जिस पर जयपुर-स्टेट-कौंसिलसे वाइस प्रेसीडेण्टके हस्ताक्षर सहित १२ अप्रैल सन् १९३७ ई० (संवत् १९९४) को एक आर्डर निकला, जो संक्षिप्तमें निम्नाङ्कित है :—

१. "सीकरके शासन-सुधारमें सहयोग देनेके लिए सीकरके राव-राजाजीको तैयार करनेका, विगत कुछ वर्षोंका प्रयत्न निष्फल रहा,

इस प्रकार सीकर ठिकानेकी शांतिको खतरेमें डालते हुए, रावराजाजीने अपने आपको शासनके लिए अयोग्य साबित कर दिया है; इसलिए जयपुराधिपतिने यह निर्णय किया है कि १२ अप्रैल सन् १६३७ ई० (संवत् १६६४) से लेकर १० वर्ष तकके लिए रावराजाजी के तमाम अधिकार, जो सीकरके शासन-विभागों पर हैं, जयपुर-राज्य द्वारा नियुक्त किये गये सीनियर आफिसरको सौंप दिये जायँ।"

२. "भविष्यमें सीकर ठिकानेका सुशासन कुमार हरदयालसिंहके उचित रीतिसे पालन-पोषण और शिक्षण पर निर्भर करता है। इस सम्बन्धमें रावराजाजीको सीनियर आफिसरकी परामर्शका अनुसरण करना होगा।"

३. "सीकर ठिकानेकी वार्षिक आमदनीमेंसे रावराजाजीको हर साल १०००००) एक लाख रुपये बारह महीनोंकी बारह किस्तों द्वारा दिये जायेंगे। इसके अतिरिक्त कुमार हरदयालसिंहकी शिक्षा के लिए एक पृथक् 'ग्रांट', सीनियर आफिसर देंगे।"

* * * *

जयपुर गवर्नमेंट द्वारा संवत् १६६४ में केप्टेन वेबकी कार्यविधि —जो समाप्त होनेको ही थी—बढ़ा दी गयी। वे ही पुनः सीनियर आफिसरके पद पर अवस्थित रहे। उनको उपर्युक्त अधिकारोंके अतिरिक्त शासनके और भी अधिकार प्राप्त हुए, जो मई सन् १६३७ ई० (संवत् १६६४) को निकली हुई, प्राइम मिनिस्टर (जयपुर)

के हस्ताक्षर सहित एक विज्ञप्तिमें प्रगट हो चुके हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिए वे नीचे उद्धृत किये जाते हैं *

१ "किसानोंको खेतीके लिए दश साल तक जमीन मंदे पर देना।"

२ "किसानोंको एक हफ्ते तक लगानके लिए रोक रखना।"

३ "शहरों या कसबोंमें मकानोंके लिए जमीन बेचना।"

४ "बजट † के अलावा ३०००) रुपये तक एक मुश्त खर्च करना।"

५ " ३०) रुपये माहवार पाठशालाओंको मदद करना।"

६ " ६०० वर्ग गज जमीन धार्मिक कामोंके लिए देना।"

७ "१५०) रुपयेके नीचेकी तनख्वाहवाले कर्मचारियोंको रखना या निकालना।"

× × × ×

संवत् १९९४के माघ मासमें केप्टेन वेबसे रावराजा कल्याणसिंह-

---

* ये अधिकार, यहां "दैनिक हिन्दुस्तान" के एक अङ्क से उद्धृत किये गये हैं।

† जयपुर के प्राइम मिनिस्टर द्वारा तैयार किया हुआ सीकर का वार्षिक बजट।

जीने कुमार हरदयालसिंह * के, जयपुरेश महाराजा मानसिंहजी † के साथ इंग्लैंड जानेकी बात सुनी। इस सम्बन्धमें उन्होंने फाल्गुण में ही जयपुर महाराजासे भेंट की। महाराजाने उनसे कहा कि कुमार उनके साथ इंग्लैंड जा रहा है; इसलिए उन्हें चिन्तित नहीं होना चाहिए।

इस बात से रावराजाजीको संतोष नहीं हुआ। वे पुनः चैत्र शुक्ला ५ संवत् १९९५ को महाराजा से मिले और कुमारको इङ्गलैण्ड न ले जानेकी प्रार्थना की। महाराजाने कुमारके इङ्गलैण्ड ले जाने के विषय पर रावराजाजी की उदासीनताका कारण जानना चाहा। उन्होंने रावराजाजी से पूछा कि "कुमारको मेरे साथ इङ्गलैण्ड भेजने में आपको क्या आपत्ति है ?"

रावराजाजीने महाराजाके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा कि "कुमार की अवस्था अभी छोटी ही है। उसे मैं, उसके विवाहके पहले इङ्गलैण्ड भेजना नहीं चाहता; क्योंकि मैं, राजा साहब ध्रांगध्रा, जिनकी लड़की से कुमारकी शादी होनेवाली है, से संवत् १९८० में यह तय कर चुका हूं कि मैं कुमारको शादी से पहले इङ्गलैण्ड नहीं भेजूंगा।"

---

* रावराजा कल्याणसिंहजी के सुपुत्र, सीकर ठिकाने के युवराज।

† जयपुर के वर्तमान नरेश। स्व० जयपुराधीश महाराजा माधवसिंहजी ने संवत् १९७८ में इनको दत्तक स्वीकार किया। उनके निधनके बाद ये संवत् १९७९ में मानसिंह नाम धारण कर जयपुर के राज्यासन पर बैठे।

महाराजाने कहा— 'तीन महीने बाद जब मैं वापिस लौटूंगा तब आप अपने कुमारका विवाह-कार्य सानन्द सम्पन्न कर सकते हैं। तीन महीने कोई ज्यादा नहीं हैं।"

रावराजाजी तो, तीन मास क्या, तीन दिनके लिए भी अपने प्यारे पुत्रको अपने से विलग देखना नहीं चाहते थे। उन्हें महाराजा की कही हुई उपर्युक्त बातें कब मंजूर हो सकती थीं। उनको "परदेश कलेश नरेशन को" यह सूक्ति स्मरण हो आयी। परदेशमें जिन कष्टोंका सामना करना पड़ता है, उनका स्पष्ट चित्र उनकी आँखोंमें खिंच गया। वे एक प्रकार से सहम-से गये। उन्होंने महाराजाके सामने अनावश्यक चुप्पी साधली। महाराजाकी इच्छाके प्रतिकूल उनसे जवाब न दिया गया।

महाराजा ने कुमारको अजमेर से बुलाकर जयपुरके रामनिवास बागमें अपने पास रख लिया और उसे इङ्गलैण्ड ले जाना चाहा; परन्तु बादमें उन्होंने उसके माता-पिताकी अनुमतिके बिना उसे इङ्गलैण्ड ले जाना उचित न समझा। उसको कुछ समयके लिए जोधपुर भेज दिया गया।

जोधपुरसे, महाराजाके आदेशानुसार कुमारको काश्मीर भेजा गया और कहा गया कि जब तक महाराजा इङ्गलैण्ड जाकर वापिस न आ जायँ, उसको वहीं रहना चाहिए।

कुमारके काश्मीर भेजे जानेकी खबर पाकर रावरानीने अनशन प्रारम्भ कर दिया, जिसका समाचार चारों ओर फैलते देर न लगी। सीकरके तथा निकटस्थ गांवोंके हजारों मनुष्य आ-आकर इकट्ठे

होने लगे। सभीने रावरानीसे अनशन छोड़ देनेका अनुरोध किया।

रावरानीने लोगोंके अनुरोधकी ओर ध्यान न देते हुए अपना अनशन जारी रक्खा। इस तरह रावरानीकी बुभुक्षानलकी ज्वालाके साथ-साथ, सीकर-जयपुर-संघर्षकी अग्नि भी अत्यन्त प्रज्वलित हो गयी।

चैत्र शुक्ला ६ संवत् १९९५ को केप्टेन वेबने जयपुर लिख भेजा कि "सीकरकी परिस्थिति भयावह हो गयी है, शांति खतरे में है। ३००० राजपूत और कायमखानी सीकरके गढ़में एकत्रित हैं।" इस पर जयपुरकी ओरसे सशस्त्र पुलिस सीकर आ पहुंची। सीकर के चारों ओर पुलिसने घेरा डाल दिया। बात-की-बातमें सीकर उत्तेजना और आतंकका केन्द्र बन गया।

जयपुरके प्राइम मिनिस्टरका एक तार, चैत्र शुक्ला १४ को, रावराजाजीको प्राप्त हुआ, जिसमें चैत्र शुक्ला १५ को रामबाग-पैलेसमें महाराजाके सामने रावराजाजी की उपस्थितिकी अपेक्षा की थी। रावराजाजीने तारके उत्तरमें रावरानीके अनशनके कारण अस्वस्थ होनेकी बात लिखते हुए महाराजाके सामने उपस्थित हो सकनेकी असमर्थता दिखलायी। जिसके उत्तरमें रावराजाजीको फिर एक तार जयपुरका मिला, जिसमें अनशनके बहानेको अस्वीकार्य और उनकी उपस्थिति आवश्यक बतलायी। पर रावरानी स्वस्थ न हो पायी थीं, इससे रावराजाजी जयपुर नहीं जा सके और न जयपुरसे आये हुए तारका ही जवाब उन्होंने दिया।

जयपुरके प्राइम मिनिस्टर ने चैत्र शुक्ला १५ के दिनके २ बजे तक रावराजाजीके उत्तरकी प्रतीक्षा की ; परन्तु उनका कुछ भी उत्तर नहीं मिला, तब उन्होंने मि० एफ० एस्० यंग—इंसपेक्टर-जनरल-पुलिस, (जयपुर) और केप्टेन वेबको रावराजाजीके जयपुर लिवा लानेके लिए सीकर भेजा।

बैसाख कृष्णा २ को रावराजाजीने मि० एफ० एस्० यंग और केप्टेन वेब से देवीपुराकी कोठीमें भेंट की। वहां उनसे जयपुर चलनेके लिए कहा गया ; लेकिन वे अपने साथके राजपूतोंके अनुरोधसे जयपुर न जाकर सीकर ही लौट आये। मि० एफ० एस्० यंग और केप्टेन वेबका रावराजाजीके साथ इस प्रकार सम्मिलन, लोगोंकी दृष्टिमें रावराजाजीकी गिरफ्तारीका षड्यंत्र था।

रावराजाजीके, सीकरके गढ़में प्रविष्ट हो जानेके बाद सीकरके दरवाजे बन्द कर दिये गये और हड़ताल बोल दी गयी। फतहपुर, रामगढ़ और लक्ष्मणगढ़में भी हड़तालका अनुकरण किया गया।

सीकरकी हड़तालका समाचार पाकर रेजिडेण्ट साहब (जयपुर) ने रावराजाजीको जयपुर बुलवाया ; परन्तु रावराजाजी प्रजाके प्रतिरोधके कारण जा न सके। इससे रेजिडेण्ट साहब स्वयम्, सीकरकी परिस्थितिका अध्ययन करनेके लिए, प्राइम मिनिस्टर साहबको साथ लेकर बैसाख कृष्णा ६ को सीकर आ पहुंचे। उनसे मिलनेके लिए रावराजाजी अपने महलसे बिदा ही हुए थे कि मार्गमें सीकर-निवासियों ने उनको रोक लिया और समझा-बुझाकर वापिस सीकर ले आये। इस तरह प्राइम मिनिस्टर

और रेजिडेण्ट साहबको बिना रावराजाजीसे मुलाकात किये ही जयपुर लौट जाना पड़ा।

बैसाख कृष्णा १३ को महाराजा और प्राइम मिनिस्टर ने 'सीकरमें किस तरह शांति स्थापित की जाय' इस विषयपर आनरेबल मि० ए० सी० लोथियन—ए० जी० जी० राजपूतानासे विचार-विनिमय किया, जिसमें लोथियन साहबको शांति-स्थापनार्थ सीकर भेजना निश्चित रहा।

बैसाख कृष्णा १४ को लोथियन साहब सीकर आ पहुंचे। रावराजाजी ने उनसे मुलाकात की। बातचीतके सिलसिलेमें लोथियन साहबने रावराजाजीसे सीकरकी हड़ताल खोल देने एवम् अपने साथ अजमेर चलनेका अनुरोध किया।

लोथियन साहबके अनुरोधको मानकर रावराजाजीने सीकर एवं फतहपुर, रामगढ़ और लक्ष्मणगढ़की हड़तालें खुलवा दीं और स्वयं उनके साथ अजमेर चले गये। पश्चात् उन्हींके कहने पर बैसाख शुक्ला १ को वे जयपुर आये और महाराजासे क्षमा-याचना की। महाराजाने उन्हें क्षमा न देकर, जयपुर राज्यसे बाहर चले जानेकी आज्ञा दी और कहा कि जब तक दूसरी आज्ञा न निकल जाय वे जयपुरसे बाहर ही रहें। इस आज्ञाको सुनकर रावराजाजी चिन्तित-से होकर अजमेर चले गये।

रावराजाजीके इस प्रकार अपमानित होनेके समाचारसे सीकरकी प्रजाने उबाल खाया और शहरमें पुनः हड़ताल घोषित कर दी।

जयपुर-राज्यकी ओर से बैसाख शुक्ला ६ को एक आर्डर जारी किया गया, जिसमें रावराजाजीका दिमाग खराब बतलाते हुए उनको शासन करनेमें अकुशल बतलाया।

जयपुर-राज्यकी, रावराजाजीके छिद्रान्वेषणकी, इस प्रकारकी नीति, सीकरकी प्रजा (जो रावराजाजीसे सहानुभूति रखती थी) को अच्छी न लगी, वह उबल पड़ी। चारों ओर भयङ्कर युद्ध और रक्तपातके आसार दिखायी देने लगे। इस तरह उपद्रव शांत होनेकी बजाय बढ़ता ही गया।

सीकरमें आम हड़तालके कारण खतरेकी घंटी तो पहले ही बज चुकी थी। अब स्थिति और भी भयंकर होनेसे जनताको खतरेका अंत, बिना युद्धके होता दिखाई नहीं दिया। जनता जहां-तहांसे उमड़ पड़ी, जिससे सीकर शहर एक युद्ध-स्थलमें परिणत हो गया। सीकरके बाहर जयपुरकी सेना आ गयी और डेरा डाल कर रहने लगी।

सीकरका यह आन्दोलन दिन-प्रति-दिन जोर पकड़ता गया। रावराजाजीके जो अधिकार, संवत् १९९४ में जयपुर-राज्य-द्वारा छीने गये थे, उनकी मांग करने लगा; यद्यपि आन्दोलनोत्पत्तिके कारण और ही थे, पर वे कारण बिना अपनी कार्य-सिद्धिके ही केवल साधन मात्र (जिससे कार्यकी सिद्धि हो) ही उत्पन्न करके, रावराजाजीके अधिकारोंकी मांगके आवरणसे आच्छादित होगये।

बड़े आश्चर्यकी बात तो यह थी कि दो पुराने राजवंशोंका

परम्परागत प्राचीन सम्बन्ध-सूत्र बात-की-बातमें ढीला पड़ गया। एक ही वंशकी दो शाखाएं परस्पर कुल्हाड़ियाँ बनकर एक-दूसरीको काटनेके लिए कटिबद्ध होगयीं।

सीकर और जयपुरका पारस्परिक मनोमालिन्य अपरिवर्त्तित ही रहा। जेष्ठ कृष्णा ११ को जयपुर-राज्यकी ओर से एक कमीशन प्रस्तुत उपद्रवके शमनार्थ नियुक्त किया गया, जिसका अध्यक्ष इंडियन पोलिटिकल सर्विसका एक कर्मचारी बना। सीकरवालोंने कमीशनको अस्वीकार करते हुए उसका विरोध किया; इससे कमीशन कार्य प्रारम्भ न कर सका।

अपनी हरएक बातका विरोध होते देख जयपुरके अधिकारियोंसे चुप न रहा गया, उन्होंने जेष्ठ शुक्ला ४ को सीकरकी जनता पर लाठीचार्ज करवाके ही दम लिया। सीकरकी पब्लिक कमेटी * के प्रचार के कारण यह समाचार हिन्दुस्तान भर में फैल गया, जिससे

---

* सीकर की विकट परिस्थितिके समय गठित की हुई सीकर ठिकानेकी प्रतिनिधि सभा। सीकरके प्रमुख नागरिकों और राज्यकर्मचारियोंको लेकर ही इस सभाका गठन हुआ था। इसीके तत्वावधानमें सीकरके पक्षमें आन्दोलन का परिचालन किया गया। उस समय सभाका कर्त्तव्य था कि प्रजाके लिए उत्तरदायी शासनकी मांग करती, लेकिन उसने ऐसा न करके एक सुवर्णावसर हाथ से खो दिया। प्रजाके हितकी दृष्टि से, इस सभा-द्वारा कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ और न होने की आशा ही थी; क्योंकि, यह तो बङ्गालकी प्रजापार्टीके समान ही एक संगठन मात्र था।

जगह-जगह, इस सम्बन्धमें सभाएं हुईं, जिनमें जयपुरके रुखको निन्दास्पद बतलाया गया ।

ए० जी० जी० राजपूतानाने आषाढ़ कृष्णा ११ तकका समय रावराजाजीको सीकरमें शांति-स्थापनके लिए दिया । ए० जी० जी० के आदेशानुसार उपर्युक्त समय तक रावराजाजी सीकरकी हड़ताल खुलाकर शांति-स्थापनके लिए सन्नद्ध होगये । उन्होंने एक आदेश-पत्र अपनी ओर से निकाला, जिसमें स्वाधिकार-प्राप्तिकी लड़ाई स्वयं लड़नेकी बात कहकर, प्रजाको हड़ताल खोल देनेका आदेश दिया ; परन्तु प्रजाने न तो हड़ताल खोलनेका उद्योग किया और न रावराजा-जीकी अधिकार-प्राप्तिके बिना शांति-स्थापन करनेका ही ।

तदनन्तर ब्रिटिश गवर्नमेण्टका एक नोटिस रावराजाजीको मिला, जिसमें लिखा थां कि "बिना रक्तपातके १५ दिनमें शांति स्थापित कर दी जाय, नहीं तो सर्वोच्च सत्ता हस्तक्षेप करनेके लिए वाध्य होगी ।"

प्रजाने शांति-स्थापन की, रावराजाजीकी कोशिशको सफल न होने दिया और न सीकर जयपुरका समझौता—जिसके लिए आबूमें कार्यवाही हो रही थी—ही होने पाया । आषाढ़ शुक्ला ४ के दिन पुनः जयपुरकी पुलिस सीकर आ पहुंची । सीकरकी सभी सड़कों पर पुलिसका पहरा बैठ गया । जयपुर-दण्ड-विधानकी १३८ धारा, जो भारतीय-दण्ड-विधानकी १४४ होती है, सीकरवालों पर लगा दी गयी तथा सीकर आनेवाले मुसाफिरोंकी तलाशी ली जाने लगी ।

जयपुर-पुलिसने आषाढ़ शुक्ला ७ को आवश्यकता पड़ने पर सीकर शहरमें दो बार गोली चलायीं एवं १४ आदमियोंको पकड़ लिया। लुहारिया-का-बास मुहल्लेके कोई ५०० व्यक्तियोंने उस रोज जयपुर-लांसर्सके एक घुड़सवार पर, कुछ सशस्त्र व्यक्तियोंको सीकरमें प्रवेश न करने देनेके कारण, आक्रमण कर दिया, जिसका समाचार जयपुर पहुंचने पर जयपुरसे रिजर्वड् आर्मड् पुलिस फोर्स की तीन लारियाँ सीकर आयीं। कर्नल डॉड और मि० यंग भी आये। उन्होंने आक्रमणकारियोंको भगा दिया। ७ आदमी बन्दूक और तलवार सहित पकड़े गये।

नाली-का-बासके पास मि० यंग और कर्नल डॉडको लक्ष्य करके, उनकी मोटरों पर पत्थर फैंके गये तथा गोलियां चलायी गयीं। तत्पश्चात् लाला-के-बासकी ओर एकत्रित भीड़मेंसे गोलियाँ आयीं, जिनसे जयपुर-पुलिसका एक कान्स्टेबल आहत होकर गिड़ पड़ा। मि० यंगने भी फायर करनेका हुक्म अपने कांस्टेबलोंको दे दिया, जिसके फलस्वरूप सीकरके २ आदमी मारे गये।

कर्नल डॉडने सिपाहियोंसे भरी हुई ३ लारियोंको साथ लेकर शहरका गश्त लगाया। चाँदपोल दरवाजेकी ओर होकर जब वे जा रहे थे तो शहरके बाहरसे आती हुई एक लारी उनको मिली, जिसमें सशस्त्र जवान भरे हुए थे। उन लोगोंने कर्नल डॉडकी लारियों पर गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं। कर्नल डॉडने भी गोलियोंका जवाब गोलियोंसे दिया तथा ७ आदमी पकड़ लिये।

उसी रोज पब्लिक कमेटीके ७ सदस्योंका एक डेपूटेशन, जो आबू गया हुआ था, सीकर वापिस आया और पकड़ लिया गया एवं स्टेशन पर भी, बाहरसे आनेवाले सशस्त्र राजपूतोंसे जयपुर-पुलिस-द्वारा शस्त्र मांगे जानेके कारण, गोलीकाण्ड घटित होगया। दोनों तरफसे गोलियाँ चलीं, जिनसे मरने और घायल होनेवालोंकी संख्या का ठीक पता नहीं लगा। ६० के करीब राजपूत पकड़ लिये गये।

आषाढ़ शुक्ला ८ को सीकरवाले उत्तेजित हो उठे, उन्होंने जयपुर-पुलिसका ३ बार सामना किया। दोनों ओर से गोलियाँ छोड़ी गयीं, जिनसे १६ मरे और ३७ घायल हुए। मरे हुए आदमियोंमेंसे १४ और आहतोंमेंसे ३० सीकरके व्यक्ति थे। शेष जयपुरके थे।

उसी रोज जयपुर गवर्नमेण्ट द्वारा नियोजित करके भेजा हुआ गिलन जांच कमीशन सीकर आया और ३ दिन रहकर आषाढ़ शुक्ला १२ को वापिस जयपुर लौट गया।

स्थिति बहुत ही भयङ्कर होगयी। रक्तपात अनिवार्य-सा होगया। चारों ओर रणेच्छुक राजपूत और पुलिसके सिपाही ही दृष्टिगोचर होने लगे। सीकरके रहनेवाले लोग बड़े भयभीत होगये। कतिपय लोगोंने तो भयके मारे शहर भी छोड़ दिया और आस-पासके गांवोंमें जाकर बस गये।

सीकरकी ओरसे राजपूत और कायमखानी बड़ी संख्यामें लड़ने के लिए डटे हुए थे। आस-पासके गांवोंमें भी राजपूतोंका जमघट, भावी आपत्तिका सामना करनेके लिए, कुछ कम न था। जाटोंको

भी आन्दोलनमें शरीक होनेको फुसलाया गया; लेकिन वे खूड़ी और कूदनके हत्याकाण्डोंके बादसे सीकरसे असंतुष्ट थे। न तो उनका असंतोष मिटाया गया और न वे आन्दोलनमें शरीक ही हुए। उधर जयपुरकी पुलिस भी अपनी सैन्य-व्यवस्थामें लगी हुई थी। उसने सीकरके चारों ओर सिपाहियोंका पहिरा बैठा दिया; इस तरह सारा सीकर पुलिससे घिर गया। मशीनगनें भी लगवादी गयीं, जिससे सीकर फौजी छावनी सा बन गया। नागा-पलटनको भी युद्धमें भाग लेनेके लिए, जयपुरकी ओर से राजी करनेका प्रयत्न किया गया। *

ऐसी परिस्थितिसे भावी अनिष्टकी आशंका करके लोगोंने सेठ जमनालालजी बजाज, † घनश्यामदासजी बिड़ला तथा नवलगढ़, डुंडलोद, मुकुन्दगढ़, बिनाय और मंडावाके ठाकुरोंको तारसे 'सीकर-जयपुर-समझौता' करवानेके लिए आमंत्रित किया।

---

* नागाओंकी सेनाके प्रत्येक व्यक्तिको मिलनेवाले २) रुपये मासिक भत्ते को—जो बीचम साहबके प्रधान-मंत्रित्वके समयसे बंद है—फिर से जारी करने की बात, नागाओं से कहकर, जयपुर की ओर से युद्ध में भाग लेनेके लिए उनसे कहा गया।

† वर्धाके स्वर्गीय सेठ बच्छराजजीके सुपुत्र एवं आल इंडिया कॉंग्रेसके अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त नताओंमेंसे एक थे। भारतका बच्चा-बच्चा आपके नाम से परिचित है; इसलिए आपके विशेष परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है।

तार पाकर सेठ जमनालालजी बजाज आषाढ़ शुक्ला १४ को जयपुर पधारे। प्रारम्भमें आपने जयपुरके प्रधान मंत्रीसे बातचीत की; तत्पश्चात् मि० यंग तथा भिनाय, मंडावा, डुंडलोद और नवलगढ़के ठाकुरोंसे।

रावरानीने अपनी ओर से सेठ जमनालालजी बजाजको लिखकर भेज दिया कि "मैं आपको एवं भिनाय, मंडावा, डुंडलोद और नवलगढ़के ठाकुरोंको अपनी ओर से जयपुरके साथ सन्धि करनेका अधिकार देती हूं।"

श्रावण कृष्णा ८ को सेठ जमनालालजी बजाजने महाराजासे—उनके इङ्गलैण्डसे आगमनके बाद—भेंट की। आध घण्टे तक सीकर के सम्बन्धमें उनकी महाराजासे बातचीत हुई। उस बातचीतको उन्होंने सीकर पब्लिक कमेटी के सदस्योंके सामने विचारार्थ रक्खा, जिन्होंने परस्पर विचार-विनिमय करनेके बाद सेठजीके सत्परामर्श को मान लिया और बिना किसी शर्तके ही जयपुरको आत्म-समर्पण कर दिया। दफ्तर और अदालतोंकी कुंजीयाँ मि० यंगको सौंप दी गयीं। इस प्रकार सीकरकी भावी आपत्तिका अन्त हुआ। भीषण नरसंहारका दुर्दान्त नाटक होते-होते बच गया। रक्त-पिपासाकुल रण-चण्डिका की पिपासा शांत न हो सकी, उसकी आशा निराशामें परिणत होगयी। फिर क्या था, वह निराश हो युद्ध क्षेत्रसे लौट गयी और लड़नेके लिए आये हुए, उसके उपासक (योद्धा) भी अपनी उपासनामें असफल हो अपने-अपने घर लौट आये।

श्रावण कृष्णा १० को सीकरकी हड़ताल और १३ को अदालतें और दफ्तर खोल दिये गये। सेठ जमनालालजी बजाजके प्रयत्न और महाराजाके—इङ्गलैण्डसे आगमनको ही, इस युद्धकी प्रज्वलित अग्नि बुझानेका श्रेय दिया जा सकता है। यदि महाराजा उपस्थित होते —इङ्गलैण्ड न जाते—तो मैं समझता हूं, स्थिति इतनी विकट न हुई होती।

हड़ताल खुल जानेके बाद, सेठ जमनालालजी बजाजके आग्रहसे महाराजा, सीकर पधारे। सीकरमें उनका यथेष्ट स्वागत हुआ। समस्त सीकर-निवासी और लड़नेके लिए उद्यत आस-पासके गांवोंसे आये हुए राजपूत, अपने विद्रोह-भावको भुलाकर महाराजाके सामने शांत चित्तसे आ खड़े हुए। इस पर महाराजाने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की, तत्पश्चात् जयपुरके लिए प्रस्थान कर दिया।

इस उपद्रवमें सीकरके ६४ आदमी पकड़े गये। जयपुरके २ और सीकरके १६ आदमी मारे गये तथा १० और ५० क्रमशः घायल हुए।

इस तरहके काण्डोंका होना तो तभी बन्द हो सकता है, जब कि स्वायत्त शासन (प्रजातंत्र-राज्य) की स्थापना की जाय। जब तक प्रजातंत्रीय राज्य-विधानसे शासन-कार्य संचालित न किये जायेंगे तब तक जयपुर सीकर ही में क्या, प्रायः और-और भी देशी राज्य ऐसे काण्डोंसे अछूते न रह सकेंगे।

सेठ जमनालालजी बजाज और तत्कालीन राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोसने भी अपने वक्तव्योंमें इस सम्बन्धमें कहा है, वह नीचे अंकित किया गया है:—

सेठजी कहते हैं--"मैंने इस (सीकरके) मामलेमें पड़कर समझौता करवाया और वहांके प्रजावर्गको यह बात समझायी कि इस लड़ाईमें जनताका कोई स्वार्थ नहीं है और न यह उपयुक्त अवसर ही है। उसकी लड़ाई तो प्रजातंत्रीय अधिकारोंके लिए अहिंसा और सत्यके बल पर समय आने पर संगठित रूपसे चलायी जायगी।"

सीकरके सम्बन्धमें की गयी कलकत्तेकी एक सार्वजनिक सभा का सभापतित्व करते हुए सुभाषचन्द्र बोसने कहा--"रियासतोंमें हम उत्तरदायी शासन चाहते हैं, क्योंकि ब्रिटिश भारत और रियासतें कोई अलग चीज नहीं हैं। सवाल तो सारे हिन्दुस्तान की आजादीका है।"

× × × ×

सीकरका उपद्रव तो शांत हो ही गया, अब रही रावराजाजीके अधिकारोंकी बात, जिसका विषय जयपुर राज्य द्वारा नियुक्त किये गये गिलन कमीशनके विचाराधीन रक्खा गया।

रावराजाजीकी ओर से गिलन कमीशनके सामने प्रस्तुत किया जानेवाला वक्तव्य कोई २७ पन्नों और २०००० शब्दोंमें, रावराजाजीके वकील बैरिस्टर पी० एल० चूड़कर * द्वारा तैयार करवाया

* रावराजाजी के कानूनी सलाहकार, जो बादमें राजकोट (काठियावाड़) जाकर वहां के उत्तरदायित्वपूर्ण शासनके लिए किये जानेवाले सत्याग्रहमें भाग लेनेके कारण पकड़े गये थे।

गया, जिसको, रावराजाजीका आदेश पाकर, चूड़करने ही गिलन कमीशनके कर्नल गिलनके सामने, जोधपुर जाकर पेश किया।

वक्तव्यमें रावराजाजी ने महाराजा द्वारा गिलन कमीशनकी नियुक्तिको, उनकी अनधिकार चेष्टा बतलायी तथा सीकरको स्वतंत्र बतलाया और कहाकि "सीकरको सार्वभौम सत्ताके सामने अपील करनेका अधिकार प्राप्त है। जयपुरको दिया जानेवाला नजराना सीकर अपनी इच्छा से देता है, न कि दबाव से। इस नजरानेके बदलेमें बाहरसे आक्रमण होनेपर जयपुरसे वह मदद लेता है।"

जयपुरकी ओर से पेश किये गये वक्तव्यमें सीकरको जयपुरका एक हिस्सा बतलाया गया और कहा गया कि कुशासनके समय जयपुरको सीकरके मामलेमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार है।

दोनों ओर के वक्तव्यों पर गिलन कमीशन विचार करने लगा। मामलेकी पेशियाँ पड़ने लगीं। शायद दो ही पेशी पड़ने पायी होंगी कि रावराजाजी ने आश्विन शुक्ला १३ को अपने वकील चूड़करसे महाराजा को लिखवा भेजा कि वे (रावराजाजी) स्वयं महाराजाके सामने उपस्थित होकर माफी मांगना चाहते हैं। महाराजा ने इसे मंजूर करते हुए रावराजाजी से मिलनेकी इच्छा प्रकट की।

दूसरे ही दिन आश्विन शुक्ला १४ को रावराजाजी प्रार्थना-पत्रके साथ महाराजा के सामने उपस्थित हुए। उन्होंने महाराजा पर कमीशनके सामने लगाये गये अपने समस्त अभियोग, वापिस लेते

हुए जयपुर द्वारा नियुक्त सीनियर आफिसरको शासनके सब अधिकार देना स्वीकार कर लिया।

तदनन्तर रावराजाजी अजमेर लौट गये। उनकी क्षमा-याचनाके कारण गिलन कमीशन ने अकस्मात् अपना कार्य बन्द कर दिया।

जयपुर गजटका एक अतिरिक्त अंक निकालकर महाराजाने रावराजाजीकी क्षमा-याचना पर विचार करते हुए, १० दिसम्बर १९३८ (पौष कृष्णा ३) को नये आर्डर जारी किये, जिनके अनुसार सीकरके शासनमें रावराजाजीका कुछ भी अधिकार नहीं रहा। आर्डर निम्नाङ्कित हैं।

"रावराजाजी द्वारा ८ अक्तूबर १९३८ को मांगी गयी माफी, महाराजा जयपुर द्वारा स्वीकृत होनेके कारण जयपुर गवर्नमेण्टने सीकर-जांच-कमीशनको भंग कर दिया है।"

"रावराजाजीकी माफी और कमीशनकी जांचके नतीजे पर सावधानतया विचार करनेके बाद, महाराजाने पहलेके सब आर्डरों को रद्द कर दिया है और सीकर ठिकानेके शासनके विषयमें नये आर्डर जारी किये हैं।"

"इन आर्डरोंके अनुसार रावराजाजीको सीकर ठिकाने के शासनके सम्बन्धमें कोई अधिकार नहीं रहेगा। ठिकानेका शासन-कार्य महाराजा द्वारा नियुक्त एक सीनियर आफिसर चलायेगा।"

"रावराजाजी कुछ शर्तों पर जयपुर आने और वहां रहनेके लिए आज्ञापित हैं; लेकिन सीकर आनेकी आज्ञा उनको नहीं दी जाती है।"

* * * *

उपरि लिखित आर्डरोंके प्रतिबन्ध से रावराजाजी सीकरमें तो प्रवेश कर नहीं सकते थे, अतः वे अजमेर से दिल्लीको चले गये, जहाँपर करीब ४। वर्ष तक उन्होंने अपने "सीकर-हाउस" बिल्डिंग में, अपना यह निर्वासन-काल शान्तिके साथ ईश्वर-भजन करते हुए बिताया। उनकी अनुपस्थिति में सीकर-राज्यके शासन-कार्य की व्यवस्था और उसका संचालन, जयपुरके हुक्मके अनुसार जयपुरेश द्वारा नियुक्त सिर्फ सीनियर आफिसर ही करते रहे।

सीनियर आफिसरके पद पर पहले तो केप्टेन वेब थे ही, वे सीकर एजीटेशन की समाप्तिके कुछ समय पूर्व ही त्यागपत्र देकर, सीकरके कार्यसे पृथक् होकर चले गये। उनके चले जानेके बाद ईश्वरनारायण किचलू सीनियर आफिसर बनकर आये, वे अधिक समय नहीं—कुछ ही मास—रहकर चले गये, तब से सरदार संतोषसिंहजीकी नियुक्ति इस पद के लिए हुई। सरदार साहब अब तक इसी पद पर आरूढ़ रहकर सीकरका शासन-कार्य योग्यतापूर्वक संचालन करते आ रहे हैं।

सरदार साहबके ही अनवरत यत्नका फल है कि रावराजाजी अब हमारे बीचमें पुनः उपस्थित होकर साधिकार गद्दीस्थ हो गये हैं।

* * * *

सीकर-प्रवेशका प्रतिबन्ध, जयपुर सरकार द्वारा दूर किये जाने पर, संवत् १९९९ की भाद्रपद कृष्णा ८ को रावराजाजी दिल्ली से सीकर पधारे और करीब १ वर्ष पश्चात् आश्विन शुक्ला २ संवत् २००० (१ अक्तूबर १९४३ ई०) को उन्हें गद्दीके अधिकार जयपुरेश-द्वारा जयपुर-गजटके एक अंकमें निम्न लिखित आर्डर निकालकर पुनः प्रदान किये गये।

'हिज हाईनेस महाराजा बहादुर (जयपुर) ने यह आज्ञा देनेके लिए प्रसन्नता प्रगट की है कि सीकरके रावराजा कल्याणसिंहजीके अधिकार १ अक्तूबर १९४३ से फिरसे दे दिये जायेंगे।"

१ अक्तूबरके रोज रावराजाजीकी अधिकार-प्राप्तिकी खुशी— सीकर-राज्यकी प्रजा ने, दिनमें घरोंकी सजाईकर और रात्रिमें दीपावली जलाकर प्रगट की। फतहपुर, रामगढ़, लक्ष्मणगढ़, सीकर, नेछवा, सिंगरावट, रींगस, रघुनाथगढ़ और देवगढ़ में सलामी की ११-११ तोपें चलीं। सीनियर आफिसर साहब ने राज्यका सारा कार्यभार रावराजाजीको सौंप दिया। रावराजाजी ने कार्यभार सँभालनेके पश्चात् राज्यके सभी महकमोंका निरीक्षण किया; उसके बादसे वे राज्य-कार्य संचालन में लग गये।

अब सीकरका शासन-कार्य पुनः रावराजाजीकी देखरेख में सीनियर आफिसर सरदार संतोषसिंहजीकी सलाह से संचालित होने लग गया है, इसे देखकर प्रजाजन प्रमुदित हैं और उन्हें आशा है कि सीकर-नरेश उनके हितको दृष्टिमें रखकर अपने राज्य-कार्य का योग्यतासे संचालन करते रहेंगे।



पांचवां खण्ड



नर-रत्न

सेठ तुहिनमल्लजी

(नवाब फतहखां के समय में)

सेठ तुहिनमल्लजी, फतहपुरके आबाद करनेवाले नवाब फतहखांके प्रधान मुसाहिब थे। उन्हींके साथमें ये हिसारसे फतहपुर सकुटुम्ब आये और यहीं बस गये।

नवाबका सेठजीके साथ पूर्ण अनुराग था; हरएक काम करनेसे पहले वे सेठजीसे सलाह कर लेते थे। बिना इनकी सलाहके उनसे कुछ भी न बन पड़ता था। सुना जाता है, फतहपुर शहर बसानेमें भी सेठजीका पूर्ण हाथ था।

सेठजीका नवाबके साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध होने पर भी, सेठजी बिलकुल निरभिमानी थे। संसारमें ऐसे विरले ही मनुष्य होते हैं, जिनको प्रभुता पाने पर भी अभिमान न होता हो। "प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं" वाली उक्तिके ये प्रतिकूल उदाहरण थे।

सेठजी अग्रवाल जातीय श्रावक थे। हेमचन्द्रजी इनके पिताका नाम था। इनके अतिरिक्त ३ और लड़के भी इनके पिताके थे, जिनके

नाम क्रमशः टीलणदास, रूपचन्द और पद्मराज थे। पहले ये चौधरी कहलाते रहे। जैन धर्मानुयायी होनेके कारण इनके वंशका अल्ल बादमें श्रावक (जैन) होगया।

सेठजीके अपने परिवारके अतिरिक्त इनके और २ भाइयोंके परिवार तथा सेठजीके पिता हेमराजजी भी उस समय फतहपुर आकर यहीं बस गये थे। वर्तमानमें फतहपुर या आसपासके गांवोंके जितने अग्रवाल जैन हैं, इन्हीं सब भाइयोंके वंशज हैं।

दिगम्बर जैन आम्नायकी २ प्रतिमाएं * भी, सेठजीके साथमें, जब ये हिसारसे आये थे, थीं। एक प्रतिमा चौबीस महाराज † की और दूसरी चन्द्रप्रभु (जैनियोंके अष्टम तीर्थंकर)‡ की थीं। ईश्वरीदास जी ‡‡ भोजक इन प्रतिमाओंको लेकर आये थे। इन्हीं प्रतिमाओंके

---

* आज तक ये दोनों प्रतिमाएं ऊपरके दिगम्बर जैन मन्दिरमें विद्यमान हैं।

† चौबीस महाराजकी प्रतिमा :—मूलसंघी आचार्य पद्मनन्दि देव द्वारा माघ सुदी ११ संवत् १०६९ को प्रतिष्ठित सप्त धातुकी १५ × ९॥। इंची प्रतिमा।

‡ चन्द्रप्रभुकी प्रतिमा :—बैसाख सुदी ९ संवत् १११३ को प्रतिष्ठित काले पाषाणकी ६ × ४॥ इंची प्रतिमा।

‡‡ ईश्वरीदासजी शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। आज भी इनके वंशजोंके बहुतसे घर फतहपुरमें मौजूद हैं, जो भोजक कहलाते हैं और भोजकोंके मुहल्ले नामक बासमें आवास करते हैं। इनलोगोंका जैनियोंके साथ उसी समयसे प्रेम-सम्बन्ध चला आता है। जैन-मन्दिरके सेवक होनेके कारण इनको जैन-सेवक भी कहते हैं।

संस्थापनार्थ संवत् १५०८ में सेठजीने फतहपुर-जैन-मन्दिर बनवाया। *

नवाब फतहखाँके मुसाहिब पद पर काम करते हुए ही सेठजी दीर्घायु प्राप्त कर परलोक सिधारे। †

योगिराज संत गंगानाथजी

(नवाब फतहखांके समय में)

नवाब फतहखाँके द्वारा बनाये जानेवाले फतहपुरके बृहत् किले की अवस्थितिके पूर्व, जब किलेका स्थान, एक निर्जन स्थान मात्र था, उस समय योगिराज संत गंगानाथजी इसी स्थान पर धूनी तापा करते थे। इनकी धूनी कबसे बनी हुई थी, यह तो कोई नहीं बतला सकता, पर जब ये संवत् १५०६ में धूनी ताप रहे थे, उस समय खानखाना नवाब कायमखाँके पौत्र नवाब फतहखाँ (हिसारके तत्का-लीन नवाब) ने इस स्थान पर रिणाऊ गांव (फतहपुरसे दक्खिन ३ कोस पर है) में रह कर अपना किला बनाना प्रारम्भ किया। नवाबकी ओर से संत गंगानाथजीको अपनी धूनी उठानेके लिए कह दिया गया; लेकिन ये यहांसे नहीं हटे। तब इनको बतलाया गया कि बिना इनके इस स्थानसे हटे किला बांका (टेढा) हो जानेकी

---

* फतहपुर जैन-मन्दिरके सम्बन्धमें छठे खण्डमें पढ़िए।

† इनके मृत्यु संवत् का ठीक-ठीक पता नहीं लगता

सम्भावना है; तिस पर भी इन्होंने यहांसे हटना मंजूर नहीं किया और कहा कि "किला तो बांका ही अच्छा होता है।"

संत गंगानाथजीके न हटनेकी बात जब नवाबने सुनी तो उन्होंने बलपूर्वक साधुको उक्त स्थानसे हटा देनेकी आज्ञा अपने सिपाहियोंको दे दी। आज्ञा पाकर सिपाहियोंने इन्हें जबरदस्तीसे उठा दिया। इन्होंने अपनी धूनीकी प्रज्वलित अग्नि झोलीमें डाल ली और इस स्थानसे पूर्वकी ओर चलते बने।

जलती हुई अग्निको झोलीमें ले जाते देख कर लोग हैरान-से रह गये। नवाबने भी यह बात जान कर अपनी दी हुई आज्ञाके लिए पश्चाताप किया और शीघ्र ही स्वयम् घोड़े पर सवार हो वे इनके पीछे चल पड़े।

संत गंगानाथजी थोड़ी ही दूर—जहां आजकल अगणिया दरवाजाके पूर्वकी ओर पासमें ही गायोंके चरनेके लिए चरागाह बना हुआ है—जा पाये थे कि नवाब इनतक जा पहुंचे। उन्होंने इनसे विनम्रतापूर्वक वापिस लौट चलनेका अनुरोध किया; लेकिन ये वापिस न लौट कर वहीं एक जाँटके पेड़ * के नीचे बैठ गये।

तदनन्तर नवाबने इनके नाम पर कुछ जमीन निकाल दी, जिसका ताम्रपत्र लिखकर इनको दे दिया गया तथा एक ताम्रपत्र और भी दिया, जिसे साथ ले जाकर किसी भी ब्रह्मपूरीमें एक साधु भोजन पा सकता है।

* यह पेड़ आज तक विद्यमान है।

संत गंगानाथजीने उसी स्थानके समीप, तपस्या करते हुए कुछ समय बाद जीवित समाधि ली। नवाबने इनपर एक मंदिर बनवा दिया, जो अभी तक मौजूद है। * इनके पश्चात् इनके शिष्योंमें सेवानाथजी और सारनाथजी यशस्वी संत हुए।

कविवर नवाब अलिफखाँ

(संवत् १६२७ से १६८३ तक, तदनुसार सन् १५७० से १६२६ तक)

कविवर नवाब अलिफखाँ फतहपुरके ७वें नवाब थे। इनके विषय में इस पुस्तकके तृतीय भागमें सविस्तार लिखा जा चुका है; फिर भी यहाँ पर थोड़ेमें इनके सम्बन्धमें लिख देना आवश्यक होगा।

संवत् १५०८ से १७८७ तक कायमखानी नवाबोंका शासन, फतहपुर पर रहा। नवाब अलिफखाँ यहांके नवाबोंमें सर्वश्रेष्ठ हुए, जिन्होंने ५६ वर्ष तक फतहपुरका शासन किया। सम्राट अकबर और जहाँगीरकी ओर से कई लड़ाइयोंमें भेजे जाने और वहां पर वीरतापूर्वक लड़कर विजय पानेके कारण, इनको समय-समय पर उचित सम्मान प्राप्त हुआ।

अपनी वीरता और बुद्धिमत्ताके लिए तो नवाब अलिफखाँ प्रख्यात-कीर्ति थे ही, साथमें साहित्यानुरागी विद्वान् भी थे।

* आजकल यह मन्दिर चरस और गांजा पीनेवालोंका अड्डा बना हुआ है।

साहित्यमें इनकी रुचि, 'काव्य' विषयमें विशेष थी। स्वयम् भी ये एक अच्छे कवि थे। कवितामें अपना नाम "जान" रखते थे। इनके बनाये हुए ४ ग्रन्थ आज भी उपलब्ध होते हैं, जो अभी तक अप्रकाशित हैं। जयपुरके, पुरोहित पं० हरिनारायणजी बी० ए० के गृह-पुस्तकालयमें ये चारों ग्रन्थ-रत्न मौजूद हैं। ग्रन्थोंके नाम क्रमशः रत्नावली, सतवन्ती सत, मदन विनोद और कवि-बल्लभ हैं।

अपने समयके फतहपुरस्थ महाकवि संत सुन्दरदासजीसे भी नवाब अलिफखाँने काव्य-प्रेमी होनेके कारण, गहरा प्रणय-सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। कई बार तो ये स्वयम् संत सुन्दरदासजी के मठमें जाकर उनसे साहित्य-सम्बन्धी ऊहापोह किया करते थे तथा कई बार उनको सादर अपनी राज्य-सभामें बुलवाते और साहित्य-चर्चाका आनन्द लेते।

संत सुन्दरदासजीका संसर्ग-लाभ नवाब अलिफखाँको थोड़े काल —करीब एक साल—तक ही प्राप्त हुआ होगा; क्योंकि जब वे (सुन्दरदासजी) संवत् १६८२ में काशीसे विद्या प्राप्त कर फतहपुर पधारे थे, उस समय नवाब, सम्राट जहाँगीर-द्वारा कांगड़ेके क़िलेके फौजदार घोषित किये गये थे। फौजदारीके पद पर आरूढ़ होनेकी वजहसे इनको उक्त किलेकी सार-सम्भालके लिए बार २ कांगड़े जाना पड़ता था। संवत् १६८३ में जब ये कांगड़ेमें ही थे तो कांगड़े के पहाड़ियोंने इनपर आक्रमण कर दिया और १०-११ दिनके युद्धके अनन्तर इनका शरीरान्त वहीं हुआ। बादमें इनका शव फतहपुर लाया जाकर दफनाया गया।

कविवर नियामतखाँ कायमखानी

(नवाब अलिफखाँके समय में)

कविवर नियामतखाँ, नवाब अलिफखाँके दूसरे लड़के थे। ये योग्य पिताके योग्य पुत्र थे। विद्वान् होनेके कारण इनका अपने जीवन-कालमें काफी मान रहा है और आज भी मुसलमान इतिहास-कारोंमें इनका नाम आदरके साथ लिया जाता है, यह बात बिद्वानों से छिपी नहीं है।

किन-किन ग्रन्थोंकी रचना नियामतखाँने की, यह बात तो अभी तक नहीं जानी गयी है; लेकिन "कायमरासा" * नामका एक ऐतिहासिक ग्रन्थ इनका संवत् १६६१ का बनाया हुआ पाया जाता है, जो अप्रकाशित ही रह जानेके कारण वर्तमानमें अप्राप्य है। केवल यही एक ग्रन्थ इनको अमर बनाये रखनेके लिए काफी है। इसके अलावा इनका बिशेष विवरण नहीं मिलता।

---

* कायमरासा—दोहों और सवैयोंमें लिखा हुआ इतिहास-ग्रन्थ, जिसके आधार पर "शजरतुल मुसलमीन" और "तवारीख खानजहानी" बनी हुई हैं।

कविवर संत प्रागदासजी

(संवत् १६६३ से १६८८ तक, तदनुसार सन् १६०६ से १६३१ तक)

माहेश्वरी वैश्य जातिके बियाणी गोत्रमें कविवर संत प्रागदासजी ने जन्म लिया था। इनका जन्म स्थान किरड़ोली नामका गांव था, जो सीकर राज्यमें स्थित है। अनुमानतः इनका जन्म संवत् १६००में हुआ होगा, इनके जन्म संवत् का ठीक २ पता नहीं लगता।

संवत् १६३४ में महात्मा दादूजी * जब लाड़खान † होते हुए

---

* महात्मा दादूजी, जिन्हें दादूदयालजी भी कहते हैं, संवत् १६०१ में अहमदाबाद (गुजरात) में पैदा हुए। ये दादूपंथके प्रवर्तक महात्मा थे। दादूपंथियोंके कथानुसार ये भी महात्मा कबीरजीकी तरह लोदीराम नागर ब्राह्मण—जिनके कोई पुत्र नहीं था—को साबरमती नदीमें एक बहती हुई सन्दूकसे प्राप्त हुए थे। युवावस्था प्राप्त होने तक ये घरमें रहे ; परन्तु इनके अन्तरमें वैराग्यका अंकुर पहलेसे विद्यमान था, जिससे ये शादीके थोड़े समय बाद ही घरसे निकल पड़े और अपने सिद्धान्तोंका प्रचार घूम२ कर करने लगे।

ढूंढार, मारवाड़, गुजरात और पंजाब प्रभृति विभिन्न प्रान्तोंमें महात्मा दादूजीने अपने सिद्धान्तोंका खूब प्रचार किया, जिसके फलस्वरूप उपर्युक्त प्रान्तोंमें जगह-जगह इनके अनुयायी होगये। बहुत-से अनुयायियोंने तो इनसे संन्यास ले लिया ; यहां तक कि सैंकड़ों शिष्य इनके होगये, जिनमेंसे ५२ प्रधान शिष्य थे, जो ५२ स्थानोंके ५२ दादूमठोंके संचालक हुए। तत्सामयिक सम्राट अकबर भी इनके सिद्धान्तोंका कायल था।

महात्मा दादूजी गुजराती, मराठी, फारसी, मारवाड़ी और हिन्दी आदि बहुतसी भाषाएँ जानते थे तथा हिन्दीके बहुत अच्छे कवि भी थे। इनकी रची हुई "दादूवाणी" दादूपंथियोंका आराध्य ग्रन्थ समझा जाता है।

संवत् १६५९ में महात्मा दादूजी भ्रमण करते २ नारायणा गांवमें पहुँचे और वहीं पासकी भरानेकी पहाड़ियोंमें संवत् १६६० में इनका देहान्त हुआ, जहां प्रति वर्ष फाल्गुन मासमें ९ दिन तक दादूपंथियोंका मेला भरता है।

† एक गांव

घाटवा * में आये थे तब प्रागदासजी उनके पास पहुंचे और उनसे किरड़ोली चलनेका अनुरोध किया।

प्रागदासजीकी प्रार्थना स्वीकार कर महात्मा दादूजी इनके साथ किरड़ोली चले आये। ये साधु-सेवी तो थे ही, भक्ति-भावके साथ इन्होंने उनकी बड़ी भारी सेवा की और स्वयम् उनके उपदेश से प्रभावान्वित होकर उनके शिष्य हो गये। धीरे २ इनको गृहस्थाश्रम से भी विराग होने लगा। जल से जिस प्रकार कमल भिन्न होता है, उसी प्रकार ये भी गृह में रहते हुए गृह-कार्यों से उदासीन रहने लगे। थोड़े दिन बाद जब इनकी उदासीनता और प्रबल-हुई तब ये घर छोड़कर साधु-सत्संगके लिए डीडवाना चले गये और वहीं रहने लगे।

घर छोड़ने पर भी संत प्रागदासजी का पहनावा वैसा ही बना रहा जैसा गृहस्थावस्थामें था। संवन् १६६३ तक ये डीडवाना में रहे, पश्चात् फतहपुर आ गये।

फतहपुर आने के बाद संत प्रागदासजी अपने और २ साथियोंके साथ यहीं रहने लगे। ये कवि भी थे, इनकी बनायी हुई वाणीके ६१ दोहे मिलते हैं, जो "प्रागदासजी की साखी" के नामसे चैनसुखदासजी दादूपंथी (डीडवाना) द्वारा प्रकाशित किये जा चुके हैं।

---

* एक गांव

महात्मा दादूजीके प्रधान ५२ शिष्यों में से एक, संत प्रागदासजी थे। इनके १० शिष्य हुए * जिनमें से १ इन्हीं के पुत्र † माधवदासजी थे, जो इनकी मृत्युके पश्चात् डीडवाना के पट्ट पर बैठे।

संवत् १६८८ में, कार्तिक बदी ६ के दिन संत प्रागदासजीका देहान्त फतहपुर में ही हुआ। ये अधिकतर फतहपुर में ही रहे। बीच-बीचमें कई जगह भ्रमण भी किया; लेकिन फतहपुर इनको अधिक प्रिय होने से इनका आवास मरते समय तक फतहपुर ही बना रहा। इनके पश्चात् इनके शिष्य रामदासजी फतहपुरके पट्टके मालिक हुए।

---

* रामदासजी, माधवदासजी, केशवदासजी, नारायणदासजी, बोहितदासजी, धर्मदासजी, हरिरामदासजी, हरिदासजी, प्रमाणदासजी और टीकूदासजी आदि १० शिष्य संत प्रागदासजीके थे।

† प्रागदासजीके ४ पुत्र थे, जिनमेंसे २ के नाम मिलते हैं—मथुरादासजी और माधवदासजी। माधवदासजी द्वितीय थे। बड़े मथुरादासजी थे, जिनके वंशजोंके कई घर फतहपुरमें वर्तमानमें भी हैं।

नवाब सरदारखाँ (१) के समयका 'जादोका कुआँ' भी इन्हीं मथुरादासजीके सुपुत्र जादोदासजीका बनाया हुआ है।

कविवर संत संतदासजी

(संवत् १६८० से १६९६ तक, तदनुसार सन् १६२३ से १६३९ तक)

कविवर संत संतदासजी, चमड़िया उपजातिके अग्रवाल वैश्य थे। इनका जन्म आभानगरी में हुआ था। बड़े ही संत-सेवी थे। जैसा इनका नाम था वैसे ये गुणी भी थे। महात्मा दादूजीके शिष्य होने तक इन्होंने खूब साधु-सेवा की, पश्चात् स्वयम् दादूजी से संन्यास ले लिया और गृह-त्यागी हो गये।

महात्मा दादूजीके, संत संतदासजी ५२ प्रधान शिष्यों में से थे। ये बड़े अच्छे कवि हुए हैं। बारह हजार अनुष्टुप् छंदों * में इन्होंने अपनी वाणी रची, इसलिए इन्हें बारह हजारी भी कहते हैं। सुप्रसिद्ध संत भीखजनजी '†' इन्हींके शिष्यों में से एक थे, जो एक अच्छे कवि हो गये हैं।

संवत् १६६६ की माघ बदी ५ को संत संतदासजी ने फतहपुर में ही जीवित समाधि ली। उस समय उस स्थान पर—जहां इन्होंने समाधि ली थी—लोगोंका एक मेला-सा लग गया था। तत्कालीन नवाब दौलतखाँ (२) भी संत संतदासजी के अंतिम दर्शन के लिए उक्त स्थान पर पधारे थे।

---

* अनुष्टुप् छंद—आठ-आठ अक्षरोंके ४ पदोंका छंद विशेष।

'†' भीखजनजीके विषयमें आगे इसी खण्डमें पढ़िए।

महाकवि संत सुन्दरदासजी

(संवत् १६५३ से १७४६ तक, तदनुसार सन् १५९६ से १६८९ तक)

फतहपुर में—

(संवत् १६८२ से १७४४ तक, तदनुसार सन् १६२५ से १६८७ तक)

महात्मा दादूजीके ५२ प्रधान शिष्यों में सब से छोटे, पर सबसे बुद्धिमान शिष्य महाकवि संत सुन्दरदासजी थे। इनका जन्म द्यौसा * में † चैत्र शुक्ला ६ संवत् १६५३ को बूसर गोत्रीय खण्डेलवाल वैश्यवंश में हुआ। पिताका नाम परमानन्द और माताका नाम सती ‡ था। राघवदासजी ‡‡ की भक्तमालमें इनके जन्म के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

"द्विवसा है नग्र चोखो, बूसर है साहूकार
सुन्दर जनम लियो, ताहि घर आइके।"

---

* द्यौसा—जयपुरसे पूर्व, १६ कोसकी दूरी पर स्थित है। इसका किला पहाड़ी पर बना हुआ है। राजा सोढ़देवजीके पुत्र दूलहरावजीने इसे विजय करके अपनी (आमेरकी) राजधानी बनाया था।

† द्यौसामें जिस घरमें महाकवि संत सुन्दरदासजीका जन्म हुआ था, उसके खण्डहर अभी तक मौजूद हैं।

‡ सती—महाकवि संत सुन्दरदासजीकी माता, जो आमेरके सौंकिया गोतके खण्डेलवालोंकी बेटी थीं।

‡‡ राघवदासजी, दादूपंथी प्रह्लाददासजी (महात्मा दादूजीके शिष्य बड़े सुन्दरदासजीके शिष्य) के शिष्य थे, जो नामी ग्रन्थकार हुए। ये सुन्दरदास जीके समकालीन थे।



महाकवि संत सुन्दरदासजी



स्वामी अमृतनाथजी

संवत् १६५९ में जब महात्मा दादूजी दूसरी बार द्यौसा पधारे, तब सुन्दरदासजी अपने माता-पिताके साथ उनके दर्शनार्थ गये और वहीं उनके शिष्य हो गये, यद्यपि इनकी अवस्था उस समय केवल ७ ही वर्षकी थी। महात्मा दादूजी ने उस समय इनके शिरपर हाथ रखकर 'सुन्दर' ऐसा सम्बोधन किया, इसीसे इनका नाम 'सुन्दरदास' प्रसिद्ध हुआ।

महात्मा दादूजीके शिष्य होनेके बाद संत सुन्दरदासजी उन्हींके साथ रहने लगे और उनके देहान्त होने तक जगजीवनजी * की देखरेख में उनके साथ रहे ; पश्चात् द्यौसा चले गये। द्यौसा में कुछ समय तक रहकर ये संवत् १६६३ में जगजीवनजीके ही साथ काशी विद्याध्ययनार्थ चले गये और वहां संवत् १६८२ तक रहकर साहित्य और व्याकरण पढ़नेके बाद विविध दर्शनोंका अध्ययन इन्होंने किया। तत्पश्चात् फतहपुर, अपने गुरु भाई संत प्रागदासजी—जिनसे इनका अतिशय प्रेम था—के पास आ गये और यहीं रहने लगे।

फतहपुरमें आते ही कई शिष्य, संत सुन्दरदासजी के हो गये ; यहां तक कि फतहपुरके तत्कालीन नवाब अलिफखाँ भी—जो कवि थे—इनपर इनकी विलक्षण कवि-प्रतिभा और प्रकाण्ड पाण्डित्य

---

* जगजीवनजी—महात्मा दादूजीके ५२ प्रधान शिष्योंमेंसे एक शिष्य थे। ये वैष्णव सम्प्रदायके काशीके पढ़े पण्डित थे ; बादमें दादूजीके उपदेशों से प्रभावित होकर उनके शिष्य होगये थे।

देखकर पूर्ण श्रद्धा रखने लगे थे। उन्होंने इनसे पूरा प्रणय-सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। उनके बाद उनके पुत्र-पौत्र (नवाब दौलतखाँ एवम् ताहिरखाँ) भी इनके भक्त बने रहे।

संत सुन्दरदासजी बड़े ही प्रतिभाशाली कवि हुए हैं। इनके बनाये हुए छोटे और बड़े सब ग्रन्थ ४२ हैं, * जिनमेंसे सुन्दरविलास और ज्ञान-समुद्र अधिक प्रसिद्ध हैं। सभी ग्रन्थ वेदान्त विषय के हैं। वेदान्त जैसे कठिन विषयको इन्होंने भाषा-काव्य द्वारा सरल और सुबोध्य बना दिया है। इनकी कविता देखकर काव्य-मर्मज्ञ यदि इन्हें महाकवि भी कह दें तो, मैं समझता हूं, कोई अत्युक्ति नहीं होगी। अलंकार, प्रसाद और माधुर्यादि लक्षणों से युक्त, इनकी कविताकी जितनी प्रशंसाकी जाय थोड़ी है।

पं० चन्द्रिकाप्रसादजी, संवत् १९७२ के वैंकटेश्वर प्रेसके छपे हुए, अपने द्वारा सम्पादित संत सुन्दरदासजी-लिखित 'पंचेन्द्रिय-चरित्र' नामक ग्रन्थकी भूमिका में लिखते हैं—"मेरी अल्प बुद्धिमें वे दोनों महात्मा तुलसीदासजी और सुन्दरदासजी बराबरी की पदवी पानेके योग्य हैं।"

ऊपरके कथन से संत सुंदरदासजी और संत तुलसीदासजी (रामायणके रचयिता) दोनों एकही कोटिके कवि ठहरते हैं। एक-दो और सम्मतियाँ भी संत सुंदरदासजीके सम्बन्धकी, यहां लिख देना उचित होगा।

---

* इन ग्रन्थोंकी रचना, संत सुन्दरदासजीने फतहपुरमें रहकर की।

हिन्दीकी सबसे बड़ी कोश "विश्व कोश" में लिखा है—"संत कवियोंमें सबसे अधिक विद्वान् तथा पंडित कवि सुन्दरदास हुए। सुन्दरदास दादूदयालकी शिष्य परम्परामें थे। इनका अध्ययन विशेष विस्तृत था। इन्होंने काशीमें आकर शिक्षा प्राप्त की थी। सुन्दरदासकी भाषा शुद्ध काव्य-भाषा है और उनकी वाणीमें उनके उपनिषदों आदिसे परिचित होनेका पता चलता है।"

'विश्वकोश' निर्माता पंडितोंने संत सुन्दरदासजीको विस्तृत अध्ययनशील, संत कवियोंमें सर्वोपरि विद्वान् कवि स्वीकार किया है, यह बात तो ऊपरकी सम्मतिसे प्रगट ही है। इसके अतिरिक्त जयपुरके पुरोहित पं० हरिनारायणजी शर्मा बी० ए० ने सुन्दरदास-जीका मध्ययुगके हिन्दी साहित्यके कवियोंमें ७वां स्थान बतलाया है। ग्रीयर्सन साहब अपनी लिखित "लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया" नामक पुस्तकमें, 'सबसे अधिक छन्दोंका रचनेवाला' इन्हें ही बतलाते हैं।

राघवदासजीने तो अपनी भक्तमालमें संत सुन्दरदासजीको दूसरा शंकराचार्य तक कह डाला है। वे लिखते हैं—"शंकराचारज दूसरो दादूके सुन्दर भयो।" किसी साधु कविने भी, "दादू दीनदयालके चेले दोय पचास। केई उडुगण केई इन्दु हैं दिनकर सुन्दरदास॥" इस प्रकार कहा है; और दादूपंथी कविवर चतुरदासजीने सब कवियों का शिरोमणि संत सुन्दरदासजीको ही बतलाया है, देखिए—

"तारन में ज्यूं चन्द, इन्द देवन में सोहै।
नरन माहिं नरपती, सती हरिचंद सजो है॥

भक्तन में ध्रुवदास तास सम और सुथोरे।
दानिनमें बलि बरनि सुरनि सम सिवरन औरे॥
जगत भगत विख्यात है, चातुरजन ऐसे कही।
सब कवियन सिरताज है, दादू शिष सुन्दर मही॥"

उपर्युक्त सम्मतियोंसे संत सुन्दरदासजीकी असाधारण प्रतिभा का थोड़ा-बहुत परिचय, पाठकोंको कराया गया है।

संत सुन्दरदासजी वर्तमानमें जितने प्रख्यात हैं, उससे कहीं बहुत अधिक प्रख्यात अपने समयमें थे। तत्सामयिक सभी कविगण इनसे परिचित थे, ऐसा पुरोहित पं० हरिनारायणजी द्वारा सम्पादित 'सुन्दर-ग्रन्थावली' को पढ़नेसे विदित होता है। महाकवि केशव दासजी, महाकवि तुलसीदासजी और जैनकवि बनारसीदासजी प्रभृतिसे भी इनका परिचय था। ये विविध प्रान्तोंमें घूम-घूमकर तत्स्थानीय कवि और पंडितोंसे मिलते और उनका परिचय प्राप्त करते थे। जहां-जहां गये उन स्थानोंकी भाषा भी इन्होंने सीखी। इसीसे ये हिन्दी और संस्कृतके अतिरिक्त और-और कई भाषाओं पर भी अधिकार रखते थे, जिनमेंसे फारसी, गुजराती, पूर्वी, पंजाबी और मारवाड़ी मुख्य हैं।

संस्कृतके भारी पंडित होने पर भी संत सुन्दरदासजीने अपने सभी ग्रन्थ हिन्दीमें ही निर्माण किये। सर्वसाधारणके उपकारको दृष्टिमें रखकर ही इन्होंने ऐसा किया होगा, ऐसा प्रतीत होता है। नहीं तो ये देववाणी संस्कृतके साहित्यकी अभिवृद्धि करनेसे न चूकते।

अपने रचित सभी ग्रन्थ संत सुन्दरदासजीने अपने गृहस्थ शिष्य रूपादासजी वैश्यसे संवत् १७४३ तक लिखवा लिये थे। तत्पश्चात् इन्होंने कोई नया ग्रंथ नहीं रचा। इनके रचित ग्रंथ यद्यपि २५० ३०० वर्ष प्राचीन हैं, फिर भी इनकी भाषा आज-कलकी भाषासे बहुत-कुछ मिलती-जुलती है, जिससे इनकी भाषा-विज्ञताका अनुमान सहज ही में हो जाता है।

कवि और पण्डित होनेके साथ-साथ संत सुन्दरदासजी तत्त्वज्ञानी भी थे। सामाजिक कुरीतियों और वाह्याडम्बरके ये पक्के दुश्मन थे। सामाजिक कुरीतियोंको लक्ष्य करके ही इन्होंने निम्नाङ्कित कुछ वाक्य अपने दशों दिशाके सवैयोंमें कहे हैं :—

पूर्व के विषय में—"ब्राह्मण क्षत्रिय बैसरु सूदर
चारु हि वर्ण के मच्छ बघारत।"

दक्षिणके विषय में—"रांधत प्याज बिगारत नाज
न आवत लाज करै सब भच्छन।"

फतहपुरके विषय में—"फूहड़ नार फतहपुर की।"

इनके अलावा वाह्याडम्बरके सम्बन्धमें भी इनकी उक्तियाँ बड़े मार्केकी कही जाती हैं, वे भी यहां उद्धृत कर देनी आवश्यक होंगी।

माला जपौं न तसबी फेरौं, तीरथ जाऊं न मक्का हेरौं।
न्हाइ धोइ नहिं करूं अचारा, ऊजू तैं पुनि हूवा न्यारा॥
एकादशी न व्रतहिं विचारौं, रौजा धरौं न बंग पुकारौं।
देव पितर नहिं पीर मनाऊं, धरती गड़ौं न देह जलाऊं॥

ना मैं कृत्रिम कर्म बखानौं, ना रसूल का कलमा जानौं।
ना मैं तीन ताग गलि नाऊं, ना मैं सुन्नत करि बौराऊं॥

संत सुन्दरदासजीका कहना था कि क्रियाडम्बरसे ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती और न हिन्दू या मुसलमान होनेसे ही। एक जगह इन्होंने "हिन्दूकी हद छाड़िके तजी तुरककी राह।" ऐसा कहा है, जिससे इनकी, हिन्दू-मुसलमान दोनों ही सम्प्रदायोंसे उदासीनता झलकती है।

संवत् १७४४ तक संत सुन्दरदासजी फतहपुरमें रहे, बादमें देशाटनके लिए निकल गये। घूमते-घूमते ये अपने परम स्नेही रज्जवजी * के स्थान सांगानेर † में संवत् १७४६ में पहुंचे और वहीं रज्जवजीकी मृत्यु हुई जानकर स्वयम् भी उनके वियोग-जनित दुःखसे दुखित होकर संवत् १७४६ की कार्त्तिक सुदी ८ के दिन परलोक सिधारे। इनकी समाधि सांगानेरमें अद्यावधि विद्यमान है।

संत सुन्दरदासजीके मरनेके बाद, इनके मुख्य ५ शिष्यों ‡ के ५ पट्ट ※ स्थापित हुए, जिनमें फतहपुरका पट्ट ही मुख्य है।

इनकी कुछ कविताएं नीचे देखिए—

---

* रज्जवजी—दादूजीके प्रधान ५२ शिष्योंमेंसे एक।

† सांगानेर—जयपुरसे दक्षिण तरफ ४ कोसकी दूरी पर है।

‡ संत सुन्दरदासजीके ५ शिष्य—दयालदासजी, श्यामदासजी, दामोदरदासजी, निर्मलदासजी और नारायणदासजी।

※ पांच स्थानोंके ५ पट्ट—फतहपुर, रामगढ, बिसाऊ, चूरू और मोर।

(१)

धूलि जैसो धन जाके, सूलि सो संसार सुख।
भूलि जैसो भाग देखै, अंत कैसी यारी है॥
पाप जैसी प्रभुताई, स्राप जैसो सनमान।
बड़ाई बिच्छुन जैसी, नागिनी सी नारी है।
अग्नि जैसो इन्द्रलोक, विघ्न जैसो विधि-लोक।
कीरति कलंक जैसी, सिद्धि सी ठगारी है॥
बासना न कोई बाकी, ऐसी मति सदा जाकी।
सुन्दर कहत ताहि बंदना हमारी है॥

(२)

आपन देखत है अपनो मुख, दर्पण काट लायो अति थूला।
ज्यूं दृग देखत तें रहि जात, भयो जबही पुतरी पर फूला॥
छाय अज्ञान रह्यो अभिअंतर, जानि सकै नहिं आतम मूला।
सुन्दर यूं उपजे मनके मल, ज्ञान बिना निज रूपहिं भूला॥

(३)

पुरुष प्रकृति संयोग, जगत् उपजत है ऐसे।
रवि दर्पण दृष्टान्त, अग्नि उपजत है तैसे॥
सुई होहिं चैतन्य, यथा चुम्बक के संगा।
यथा पवन संयोग, उदधि में उठहिं तरंगा॥
अरु यथा सूर संयोग पुनि, चक्षु रूपको गहत है।
यों जड़ चेतन संयोग तें सृष्टि उपजती कहत है॥

(४)

ब्रह्म तें पुरुष अरु प्रकृति प्रगट भई

प्रकृति तें महत्तत्त्व पुनि अहंकार है।

अहंकार हूं तें तीन गुण सत रज तम

तम हूं तें महाभूत विषय पसार है॥

रज हूं तें इन्द्री दस पृथक पृथक भई

सत्त हूं तें मन आदि-देवता विचार है।

ऐसें अनुक्रम करि शिष्य सूं कहत गुरु

सुन्दर सकल यह मिथ्या भ्रम जार है॥

(५)

तौ सही चतुर तूं जान परबीन अति

परै जनि पिंजरे मोह कूवा।

पाइ उत्तम जनम लाइलै चपल मन

गाइ गोबिन्द गुण जीति जूवा॥

आपु ही आपु अज्ञान नलिनी बन्ध्यो

बिना प्रभु, विमुख कै बेर मूवा।

दास सुन्दर कहै परम पद तौ लहै

राम-हरि राम-हरि बोल सूवा॥

कविवर संत भीखजनजी

(संवत् १६८३ में, तदनुसार सन् १६२६ में)

दादू-शिष्य संत संतदासजीके—जिनके विषयमें पहले लिखा जा चुका है—शिष्य, कविवर संत भीखजनजी थे। ये जातिके आचार्य ब्राह्मण * थे। इनके पिताका नाम देवीसहायजी था, जिनके इनके सिवा और भी २ पुत्र थे। ये ही, अपने पिताके तीनों पुत्रोंमें गुणी होनेके कारण, प्रख्यात-कीर्ति हुए हैं। इनकी रची हुई 'भीखबावनी' नीतिकी छोटी अपितु अमूल्य पुस्तक है।

छोटी अवस्थासे ही संत भीखजनजी साधु सेवामें रत रहा करते और जहां-तहां संतोंके आगमनका समाचार पाकर पहुंच जाते थे। भाग्यसे इनका समागम, धूर्त्त और आडम्बरी साधुओंसे न होकर, तत्कालीन दादूपंथी साधुओंसे हुआ। दादूपंथी साधुओंका उस समय फतहपुरमें अच्छा जमघट था, जिनमेंसे संत संतदासजीको इन्होंने अपना गुरु बनाया और संन्यस्त हो गये।

संन्यासी होनेके बाद संत भीखजनजी, अपने गुरु तथा अन्य दादूपंथियोंके साथ उन्हींके स्थानपर रहकर भजन-स्मरण करने लगे। भजन-स्मरणसे अवकाशके समयमें ये अपने गुरु संत संतदासजी से अध्ययन भी करते रहे, जिसके फलस्वरूप ये एक अच्छे कवि हुए और उपरिलिखित 'भीखबावनी' इन्होंने रची।

---

* आचार्य ब्राह्मण—महाब्राह्मण भी कहलाते हैं। पहले गौडब्राह्मण थे और ढाँचोलिया कहलाते थे, बादमें श्राद्धान्न लेने और खाने से ये पतित गिने जाने लगे एवम् महाब्राह्मण इनका आस्पद हो गया।

'भीखबावनी' के छन्दोंका रचना-चातुर्य और शब्द-योजना देखकर ही इनकी ज्ञान-गरिमा जानी जा सकती है।

ये ही भीखजनजी थे, जिन्होंने लक्ष्मीनाथ-मन्दिर* में प्रवेशाधिकार प्राप्तिके लिए सत्याग्रह किया था। कहा जाता है कि पुजारियोंने, जब ये मन्दिरमें दर्शनार्थ जा रहे थे तो इनको, महाब्राह्मण होनेकी वजहसे नहीं जाने दिया। इन्होंने पुजारियोंकी इस धींगाधींगीका सक्रिय विरोध किया। स्वयम् ये निराहार रहकर मन्दिरके पीछे बैठ गये, जिसका फल यह हुआ कि इनको मन्दिरमें जानेकी इजाजत पंच-महाजनोंसे मिल गयी।

समझमें नहीं आता, संत भीखजनजी एक दादूपंथी साधु होकर लक्ष्मीनाथजीकी मूर्त्तिके दर्शनार्थ क्यों गये थे ? † पर विचार करने से मालूम होता है कि इन्होंने स्वयम् अपने लिए नहीं; बल्कि बुत-परस्त हरिजनोंके लिए ऐसा किया था। जो काम आज महात्मा गांधी ‡ कर रहे हैं, वही काम संत भीखजनजीने आजसे ३०० वर्ष पहले कर दिखाया था।

संत भीखजनजीकी उपर्युक्त मन्दिर-प्रवेशाधिकार प्राप्तिकी कथा, आज तक चली आती है। सभी बड़े-बुड्ढे इस कथाको अच्छी

---

* लक्ष्मीनाथ-मन्दिर के विषयमें इसी पुस्तक के छठे खण्डमें पढ़िए।

† दादूपंथी बुत-परस्त नहीं होते हैं।

‡ महात्मा गांधी—वर्त्तमानके विश्व-विख्यात एक भारतीय महापुरुष, जिनका परिचय देना सूर्य को दीपक दिखाना है।

तरह जानते हैं। यद्यपि भीखजनजी आज नहीं हैं, फिर भी यह कथा आज इनका स्मरण करा देती है। इनके मृत्यु संवत् का ठीक-ठीक पता नहीं चलता।

जैनाचार्य भट्टारक ललितकीर्तिजी

(रावराजा लक्ष्मणसिंहजी के समय में)

भट्टारक * श्री ललितकीर्तिजी, दिगम्बर जैन सम्प्रदायके आचार्य हुए हैं। इनका पट्ट दिल्लीमें था। ये लोहाचार्य आम्नायके काष्ठ-संघी माथुर गच्छके भट्टारक थे। भट्टारक जगतकीर्तिजीके बाद ये दिल्लीके पट्टके अधिकारी हुए। संवत् १८६१ में ये फतहपुर पधारे।

फतहपुरके लोग भट्टारकोंकी असाधारण विद्या-बुद्धिसे पहलेसे ही परिचित थे; क्योंकि उक्त भट्टारकजीके पूर्वके कई भट्टारक समय-समय पर फतहपुर आये और अपने अमूल्य उपदेशोंसे जनताको प्रभावित किया। फतहपुर की जनता—जैन-अजैन सभी—ने भट्टारकजीका आगमन जानकर इनका पूर्ण सम्मान किया और इनके

* भट्टारक—नग्न दिगम्बर जैन मुनियोंका बिगड़ा हुआ रूप था। ये लंगोट तथा चद्दर धारण करते और राजसी ठाठ रखते थे। संस्कृत के पूर्ण पंडित होते थे। इनके कई जगह पट्ट थे। अब प्रायः सभी पट्ट, सिवा एक-दोके, उठा दिये गये हैं।

उपदेश सुने। जैनियोंने इनके उपदेशसे अपने प्राचीन जैन-मन्दिर का जीर्णोद्धार करवा कर उसीके ऊपर एक नया जैन-मन्दिर बनवा दिया। इसके अलावा कतिपय वैष्णव इनके शिष्य होकर जैन-धर्मानुयायी होगये, जिनमेंसे पण्डित जीवणरामजी * का नाम विशेष प्रसिद्ध है।

भट्टारकजी अपने समयके बड़े ही प्रसिद्ध विद्वान् थे। इन्होंने काशीके प्रकाण्ड पंडितोंको शास्त्रार्थमें कई बार पराजित किया। बाल ब्रह्मचारी थे। तंत्रशास्त्रमें अद्वितीय थे। इनके चमत्कारोंकी बहुतसी कहानियाँ आज तक फतहपुरमें बड़े-बुड्ढे लोगोंके मुँहसे सुनी जाती हैं। वे सच्ची हैं या झूठी, मैं नहीं कह सकता। कई ग्रन्थ इन्होंने रचे, जिनमें से ३ बहुत प्रसिद्ध हैं, जिनके नाम त्रिलोकसार पूजा (संस्कृत), सिद्ध चक्र पूजा (संस्कृत) और आदिपुराण-टीका हैं। आदिपुराण-टीका ५०००० श्लोकोंमें, भगवज्जिनसेनाचार्य कृत आदिपुराण पर, लिखी गयी है। केवल इसी एक वृहत् ग्रन्थसे इनकी विद्वत्ताका अनुमान लगाया जा सकता है।

भट्टारकोंको, उनके प्रखर पाण्डित्य पर विमोहित होकर, दिल्लीके बादशाह अलाउद्दीन खिलजी और फीरोजशाह तुगलकने ३२ उपाधियाँ दी थीं। इन ३२ उपाधियों की ३२ सनदें इनके पास थीं।

जब तक दिल्लीका पट्ट रहा, तबतक भट्टारक लोग फतहपुर बराबर

---

* जीवणरामजी के विषयमें इसी खण्डमें आगे देखिए।

आते रहे। भट्टारक ललितकीर्तिजी कई बार फतहपुर आये। इनका एक पंडित शिष्य फतहपुरमें तत्स्थानीय श्रावकोंको उपदेश देनेके लिए रहने लगा।

भट्टारक ललितकीर्तिजीके बाद २ भट्टारक और दिल्ली-पट्ट पर हुए, जिनके नाम क्रमशः राजेन्द्रकीर्तिजी और मुनीन्द्रकीर्तिजी थे। मुनीन्द्रकीर्तिजीके बाद योग्य शिष्यके अभावमें पट्ट उठा दिया गया। *

भट्टारकोंकी गद्दी उठ जानेके बाद फतहपुरमें भट्टारकोंके पंडित शिष्य—जो भट्टारकोंके समयसे ही रहते आ रहे थे—श्रावकोंको उपदेश देते रहे। पण्डितोंकी एक गद्दीकी बतौर यहां होगयी थी, जो अब तक चलती थी। वर्त्तमानमें कोई गद्दी भट्टारकोंके पण्डित शिष्योंकी यहां नहीं है।

संत बुधगिरिजी

(रावराजा लक्ष्मणसिंहजी के समय में)

संत बुधगिरीजी, जातिके धाभाई गूजर थे। संन्यास लेनेसे पूर्व ये चिड़ावेमें किसी धनीके यहां पहलवानका काम किया करते थे। किसी कारणसे उक्त धनीसे अनबन हो जानेसे इन्होंने उसकी नौकरी छोड़ दी और नूंआ आगये।

---

* अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण करनेवाला, सरस्वती के समान पण्डित अग्रवाल जैन ही दिल्ली के भट्टारक पद पर आसीन होनेके योग्य समझा जाता था।

नूंआ आकर संत बुधगिरिजीने लक्ष्मणगिरि नामके एक अघोर-पंथी साधुसे संन्यास ग्रहण कर लिया और वहीं उनके पास कुछ समय तक रहकर योगाभ्यास किया। बादमें संवत् १८५० में ये फतहपुर आगये।

फतहपुरमें शेखके कुएँ * के पास—जहां आजकल बूबनोंकी हवेलियाँ बनी हुई हैं—ये खड़े रहकर तपस्या करने लगे। बादमें फतहपुरसे दक्षिण टीबोंमें चले गये और वहीं रहने लगे। इनकी तपस्या और योगबलने बहुतसे आदमियोंको इनका भक्त बना दिया था। तत्कालीन सीकर-नरेश रावराजा लक्ष्मणसिंहजी भी इनकी ओर आकर्षित हुए बिना न रहे, वे भी इनके भक्त होगये और जब-जब फतहपुर पधारे इनके दर्शनोंसे अपनेको धन्य समझा। एक बार तो एक गांव, उन्होंने इनके अर्पण कर देना चाहा ; लेकिन इन्होंने उसे लेनेसे साफ इनकार कर दिया।

संवत् १८६२ की फाल्गुण बदी १३ को संत बुधगिरिजीने ३५ वर्षकी अल्पावस्थामें ही हिन्दुओंकी परम्परागत प्राचीन परिपाटी के अनुसार—उसी स्थान पर जहां ये रह रहे थे—जीवित समाधि लेली। इनके समाधि-स्थान पर रावराजा लक्ष्मणसिंहजीने एक

---

* यह कुआं नवाबी जमाने का, शेखमलजी केजड़ीवाल का बनवाया हुआ, बतलाया जाता है।

मन्दिर बनवा दिया, जो आज तक बना हुआ है।* हर वर्ष फाल्गुण वदी १३ के दिन इस स्थान पर मेला लगता है।

संत बुधगिरिजीके समाधिस्थ हो जानेके बाद इनके शिष्य यशवन्तगिरिजीको रावराजा लक्ष्मणसिंहजीने 'नय बास' नामका एक गांव दे दिया, जो फतहपुरसे दक्खिनमें है।

संत परमानन्दजी

(रावराजा लक्ष्मणसिंहजी के समय में)

संत परमानन्दजी, संत बुधगिरिजीके समकालीन थे। ये बड़े ही योगी हुए हैं। इनके यौगिक चमत्कारोंकी बहुतसी कथाएं फतहपुरमें अब तक सुनी जाती हैं। कहते हैं योग द्वारा इन्होंने वाक्-सिद्धि भी प्राप्त कर ली थी।

---

* यह समाधि-मंदिर, फतहपुर शहरसे बाहर, उसके दक्षिणमें स्थित नबाब जलालखाँ की बीहड़ में, शहर से करीब १ मीलकी दूरी पर एक बहुत ऊँचे बालू के टीले पर, बना हुआ है। मंदिर के ऊपर से फतहपुर का विहङ्गम दृश्य अच्छी तरह दिखाई देता है तथा मंडावा (फतहपुर से पूर्व में ७ कोस पर) भी दृष्टिगत होता है। इस मंदिर को हम फतहपुर शहर के किसी भी ऊँचे मकान से भली प्रकार देख सकते हैं।

अधिक भांग पीनेके कारण, लोग संत परमानन्दजीको 'भंगड़' कहने लग गये थे; यद्यपि इनका नाम 'परमानन्द' था। इतना ज्यादा दुर्व्यसन इनको भांग पीनेका था कि योगसाधनसे बचा हुआ इनका सारा समय इसीमें बीतता था। एक बार रावराजा लक्ष्मणसिंहजी संवत् १८६० में जब फतहपुर पधारे थे तब वे इनके दर्शनार्थ भी आये। ये उस समय भांग घोट रहे थे। रावराजाजीने चाहा कि वे इनकी भांग घोट देते; लेकिन इन्होंने उनसे "घुट गयी, सीकर चला जा" इतना-सा वाक्य कहकर ऐसा करनेसे इनकार कर दिया। रावराजाजी उसी रोज सीकर चले गये और वहां जाकर दो दिन बाद स्वर्गस्थ हुए। इस प्रकारकी बहुतसी चामत्कारिक बातें इनकी हैं; लेकिन उनको यहां, प्रसंगवश लिखी गयी उपर्युक्त बातके सिवा, लिखना अनावश्यक जान पड़ता है।

संत परमानन्दजीका देहान्त—न मालूम कब—फतहपुरमें ही हुआ। इनकी समाधि पर एक चबूतरा बना हुआ था, जो अभी थोड़े दिन पहले फतहपुरके पूर्वमें पं० जीवणरामजी * की छतरीके पासमें किसी नोहरेमें मौजूद था; लेकिन अब नष्ट होगया है।

* पं० जीवणरामजी की जीवनी की बातें आगे इसी खण्ड में पढ़ने को मिलेंगी।

यतिवर हरजीमलजी

(रावराजा रामप्रतापसिंहजी के समय में)

यतिवर हरजीमलजी, जैनियोंके श्वेताम्बर सम्प्रदायके आचार्य होगये हैं। ये वृहत्खरतर गच्छीय जिनदत्त सूरि आम्नायकी भद्रसूरि शाखाके यती थे। बड़े ही विद्वान् और तान्त्रिक थे। इनका प्रभाव इनके समयमें काफी रहा है।

अपने समयके सीकर-नरेश रावराजा रामप्रतापसिंहजीको, यती हरजीमलजीने अपना शिष्य बनाया और उन्हींके पास बहुत समय तक ये सीकरमें रहे ; पश्चात् लक्ष्मणगढ़में अपना उपाश्रय बनाकर रहने लगे। फतहपुरमें इनका मन बहुत कम लगता था, इससे इनके गुरुने फतहपुरका उपाश्रय अपने दूसरे शिष्य यती चिमनरामजीको सौंप दिया।* फतहपुरके उपाश्रयमें ये बराबर आते-जाते रहते थे ; परन्तु ठहरते बहुत कम थे। जब ये फतहपुर आते तो दि० जैन-मन्दिरमें भी आया करते थे।

यती हरजीमलजीके जीवनका अधिक समय लक्ष्मणगढ़में ही बीता और वहीं इनका देहान्त भी हुआ। इनकी समाधि पर वहां एक छतरी बनी हुई है।

---

* यती चिमनरामजी की शिष्य-परम्परामें, फतहपुर के पट्टपर यती विष्णुदयालजी हुए, जिनका देहान्त हाल ही में हुआ है। ये यती भैरवचन्द्रजी के, व्याकरण, ज्योतिष और वैद्यकादि विषयोंमें पारङ्गत शिष्य थे।

कविवर सेठ रामदयालजी नेवटिया

(संवत् १८८२ से १९७५ तक, तदनुसार सन् १८२५ से १९१८ तक)

कविवर सेठ रामदयालजी नेवटिया, मनसारामजी नेवटियाके सुपुत्र थे। इनका जन्म संवत् १८८२ में मँडावामें हुआ, जिसके ४० दिन पश्चात् इनके पिता अपनी गृहिणी और नवजात शिशु सहित फतहपुर आगये।

संवत् १८९६ में जब सेठजीकी अवस्था १४ वर्षकी थी, इनके पिताका देहान्त होगया। उस समय सेठजी सांसारिक अनुभवसे बिलकुल अनभिज्ञ थे। इनकी आर्थिक स्थिति साधारण थी; लेकिन छोटी अवस्था और अनभिज्ञताके कारण ये कर क्या सकते थे? दो भाई और भी इनके थे, पर वे इनसे छोटे थे। संवत् १९०७ में ये अजमेरके सेठ प्रतापमलजी मेहताकी पूनाकी दूकान पर उनके मुनीम होकर गये।

अपनी कार्यकुशलतासे इन्होंने सेठ प्रतापमलजीके हृदयको जीत लिया एवम् पूनाके, अपने संसर्गमें आनेवाले सभी व्यापारियोंसे घनिष्ठता स्थापित करली। ये बड़े ही सरल, मिष्टभाषी और मिलनसार थे, इससे इनके जान-पहचानवालोंकी संख्या पूनामें बहुत अधिक होगयी थी। तत्स्थानीय कई उच्च पदारूढ़ राज्य-कर्मचारी भी इनसे भली प्रकार परिचित थे।

पूनामें रहते हुए सेठ रामदयालजी अपने व्यापार से बचे हुए—अवकाशके—समयको अपनी विद्याभिरुचिको तृप्त करनेमें लगाते-

रहे, जिसका फल यह हुआ कि ये ४-५ भाषाएं जानने लग गये थे, जिनमें से हिन्दी और संस्कृतका इनको अच्छा ज्ञान था और अंगरेजी, मराठी और गुजराती भी थोड़ी-थोड़ी जानते थे।

संवत् १९१४ में सेठजी पूनासे अजमेर चले आये और थोड़े समय बाद ही फतहपुर आगये और यहीं रहने लगे। उस समय इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो गयी थी। विद्वान्, धार्मिक और धनसम्पन्न होनेसे इनकी प्रतिष्ठा फतहपुरमें दिन-दिन बढ़ती गयी, जो समय पाकर सर्वश्रेष्ठता तक पहुंच गयी।

विद्वानों और गुणियोंका सेठजी बड़ा आदर किया करते थे; क्यों न करते जब स्वयम् ही विद्वान् थे। सभी शास्त्रीय विषयों में इनकी जानकारी, थोड़ी या बहुत, अवश्य थी। पुस्तकोंका बड़ा प्रेम था। हर समय इनके चारों ओर पुस्तकें पड़ी हुई रहतीं थीं। इनके पुस्तक-संग्रहमें हिन्दी और संस्कृतकी नवीन और प्राचीन कई प्रकारकी पुस्तकें थीं, जिनको अव्यवस्थित दशा में दिलसुखरायजी * के पास जाकर आज भी देख सकते हैं। स्वयम् ये अच्छी कविता करते थे। इनका उपनाम 'कृष्णदास' था। तीन ग्रन्थ इनके बनाये हुए मिलते हैं—जिनके नाम क्रमशः प्रेमांकुर, बलभद्र-विजय और लक्ष्मणामङ्गल हैं। ये तीनों प्रकाशित हो चुके हैं।

अपनी अन्तावस्था—संवत् १९७५—तक सेठजी पूर्ण स्वस्थ रहे। उस समय तक इनकी आंख और कानकी शक्तियाँ काम

* सेठ रामदयालजीके सुपुत्र।

करती थीं और दांत भी साबुत थे। हमेशाकी तरह इनका पूजनाराधन और सम्पूर्ण गीता पाठ भी उस समय तक चलता रहा।

संवत् १६७५ की आश्विन बदी १५ को ६३ वर्षकी दीर्घायु प्राप्त कर सेठजी स्वर्गस्थ हुए।

पण्डित जीवणरामजी

(संवत् १८८४ से १९२३ तक, तदनुसार सन् १८२७ से १८६६ तक)

जैनाचार्य भट्टारक ललितकीर्तिजीके फतहपुरस्थ पंडित-शिष्य रूपचन्दजीके शिष्य पंडित जीवणरामजी हुए। फतहपुरमें इनकी बहुत अच्छी प्रतिष्ठा रही है। ये अपने समयके पीयूषपाणि वैद्य, अद्वितीय ज्योतिषी और निसर्गजात चित्रकार थे तथा और-और विद्याएं भी इनको हासिल थीं; जैसे—बढईगिरी, जड़ाई, और सुवर्णकारी।

इनका नाम 'जयरामदास' था, पर बादमें लोग इन्हें 'जीवणराम' कहने लग गये थे; इससे इनकी ख्याति इसी नामसे हुई। ये जाति के ब्राह्मण थे। भट्टारकोंके शिष्य होनेके कारण जैनधर्मही पालते और जैनियोंको जैनधर्मका उपदेश देते थे। जैनमंदिरमें प्रातःकाल पूजा-पाठ भी किया करते थे। तदनन्तर मध्याह्नमें ये लड़कोंको निःशुल्क पढ़ाते थे। जैन-अजैन सभी इनके पास पढ़ने आते;

इन्हींके शिष्योंमें से एक, आयुर्वेदाचार्य पं० ज्वालादत्तजी शर्मा हुए हैं, जो बम्बईमें बड़े प्रसिद्ध वैद्य थे और द्वितीय धन्वन्तरि कहलाये।

एक गुटका * पंडितजीका संग्रह किया हुआ फतहपुरके जैनमंदिरमें उसकी (मंदिरकी) अमूल्य सम्पत्तिके रूपमें रक्खा हुआ है। यह गुटका विविध विषयोंका सुन्दर संग्रह है, इससे इसे भानुमतीका पिटारा भी कह सकते हैं। इसमें एक लाख श्लोक बताये जाते हैं।

पंडितजीने अपनी जीवितावस्था में ही संवत् १६२२ में फतहपुर के पूर्वमें सरावगियोंके कुए † के पास अपने नामसे एक नसिया (छतरी) का निर्माण कराया, जिसमें भाद्रपद मासमें जैनियोंके तीर्थङ्करकी प्रतिमा सोत्सव ले जायी जाती है और वहीं उसकी पूजा होती है। उसी साल बिसाऊमें भी एक छतरी इन्होंने अपने नामसे बनवायी।

पंडितजीके २ शिष्य हुए, जिनके नाम पं० खेमचन्द्र और पं० विष्णुदयाल थे। संवत् १६२३ के आश्विन मासकी कृष्णा १ को पंडितजीका देहान्त हुआ, इनके शिष्य विष्णुदयालजी इनके पट्ट पर बैठे

---

* गुटका—हस्तलिखित छोटे साइज की पुस्तक को कहते हैं।

† सरावगियों का कुआं—यह कुआं नवाब दीनदारखां के समय में संवत् १७३९ में सकल पंच श्रावकोंकी ओर से बना था।

स्वामी परशुरामजी

(रावराजा माधवसिंहजीके समय में)

स्वामी परशुरामजी घस्सू गाँव * में रहनेवाले किसी बनियेके लड़के थे। संन्यासी होनेके बाद ये फतहपुर चले आये और यहीं सरावगियोंकी छतरी (पं० जीवणरामजीकी नसिया) में रहने लगे।

स्वामीजी भगमा कपड़े पहनते थे। इनका शरीर गौर वर्णका था। बड़े ही निरभिमानी, दयालु और ईश्वर-भक्त ये थे। गीता का इनको बड़ा प्र म था। इनका सारा समय भजन-स्मरण और गीता-पाठमें ही बीतता था।

स्वामीजीने कभी किसीसे कुछ नहीं मांगा। न मालूम इनका भोजन-वस्त्रका खर्चा कहांसे चलता था। ऐसी बातोंसे हमें इनके उच्च कोटिके साधु होने में संदेह नहीं रह जाता। ये पूरे सौ साल तक जीते रहे।

---

* घस्सू---लक्ष्मणगढ़ के पास का एक गांव है।

स्वामी चम्पानाथजी

(रावराजा माधवसिंहजी के समय में)

स्वामी चम्पानाथजी, फतहपुरके ख्यात नामा स्वामी अमृतनाथजी * के गुरु हुए हैं। इन्होंने झुंझुनूके स्वामी चंचलनाथजी † के शिष्य स्वामी मोतीनाथजी ‡ से दीक्षा ली थी। दीक्षा लेनेके बाद ये शेखावाटी में इधर उधर भ्रमण करते रहे! फतहपुर भी भ्रमण करते हुए पधारे थे, यहां उनके शिष्य स्वामी अमृतनाथजी पहले से ही अपनी शिष्य मण्डली सहित रहते थे, इससे ये भी यहीं टिक गये। इन्होंने सरावगियोंकी छतरी (पं० जीवणरामजीकी नसिया) को अपना आवास बनाया। ‡‡ तदनन्तर मूंगीलालजी

---

* इसी खण्ड में "स्वामी अमृतनाथजी" शीर्षक निबन्ध में, स्वामी अमृतनाथजी के विषयमें पढ़िए।

† स्वामी चंचलनाथजी झुंझुनू में हुए हैं। इन्होंने संवत् १६०० में अपना आश्रम झुंझुनू में बनाया और तीन शिष्य किये, जिनके नाम मोतीनाथ, क्षमानाथ और गणेशनाथ थे।

‡ स्वामी मोतीनाथजी, रीणी (बीकानेर) के रहनेवाले विद्वान् ब्राह्मण थे। ये स्वामी चंचलनाथजीके शिष्य और स्वामी चम्पानाथजी के गुरु थे।

‡‡ सरावगियोंकी छतरी में स्वामी परशुरामजीके बाद स्वामी चम्पानाथजी रहे।

देवड़ा ने इनके लिए, फतहपुरके पूर्वकी ओर महासिंहजीके कुएं * के पास एक स्थान बनवा दिया, वहीं ये रहने लगे।

स्वामीजीका नाम 'चम्पानाथ' इनके रूपको देखते हुए उपयुक्त ही था। इनका रूप गौरा एवम् आकर्षक, मुखमण्डल प्रभावशाली और आंखें बड़ी सुन्दर थीं। ये संयमी और जितेन्द्रिय थे। बड़े ही सच्चे और निरभिमानी साधु ये हुए हैं।

स्वामीजीको ही अपना योग्य गुरु समझकर, स्वामी अमृतनाथजी (उस समयके जसराम जाट) ने संवत् १६४५ में इनसे संन्यास ग्रहण किया था, जिनके अतिरिक्त और २ भी योग्य शिष्य स्वामीजी के हुए, जिनके नाम यहां देना मैं आवश्यक नहीं समझता हूं।

स्वामीजीके गुरु स्वामी मोतीनाथजीके गुरु-भाई स्वामी गणेश-नाथजी † ने बिसाऊ में अपना आश्रम बनया था। उनके कोई शिष्य नहीं था, इससे स्वामी चम्पानाथजीको ही वहां (बिसाऊ में) उनके पट्ट पर बैठनेके लिए जाना पड़ा।

बिसाऊ में पट्टस्थ होनेके बाद स्वामीजी फतहपुर में नहीं रहे, बिसाऊमें ही रहे। संवत् १६७२ के माघ महीने में इनका देहान्त बिसाऊ में ही हुआ।

---

* महासिंहजी का कुआं—यह कुआं महासिंहजी चौधरीका, नवाब दीनदार खां के समय का बनाया हुआ है। संवत् १७५० में यह बना था।

† स्वामी गणेशनाथजी—स्वामी चंचलनाथजी के शिष्योंमें से एक थे।

स्वामी अमृतनाथजी

(संवत् १९०९ से १९७३ तक, तदनुसार सन् १८५२ से १९१६ तक)

फतहपुर में—

(संवत् १९५८ से १९७३ तक, तदनुसार सन् १९०१ से १९१६ तक)

बऊ गांव * के चेतनजी जाटके सुपुत्र स्वामी अमृतनाथजी हुए। इनका पहलेका नाम 'जसराम' था, पर जब से ये साधु हुए तबसे इनका नाम अमृतनाथ रख दिया गया और इसी नामसे इनकी प्रसिद्धि हुई।

स्वामीजीका जन्म, बऊ से बीस कोसकी दूरी पर, पिलानी गांव † में—जहां इनके पिता इनके जन्मके वक्त रह रहे थे—संवत् १९०९ की चैत्र सुदी १ को हुआ। इनके जन्मके ३॥ वर्ष बाद इनके पिता पुनः अपने पुराने निवास स्थान बऊ में सपरिकर आ-गये और रहने लगे।

अपने पिताकी पांचवीं संतान स्वामीजी थे, तथा और भी ३ संतान इनसे छोटी इनके पिताके थीं ‡ सबका विवाह क्रमसे होता

---

* बऊ—पिलानी से २० कोसकी दूरी पर एक गांव है।

† पिलानी—जहपुरवाटी का एक गांव। यही पिलानी प्रसिद्ध बिड़ला-बन्धुओंकी जन्मभूमि है।

‡ स्वामीजी सहित सब ८ भाई-बहिन वे थे। ३ बहिन और ५ भाई थे। ३ बहिन और १ भाई स्वामीजी से बड़े और ३ भाई इनसे छोटे थे।

गया। जब स्वामीजीकी बारी आयी तो इन्होंने अनिच्छा दिखला दी और साफ कह दिया कि "मैं तो ब्रह्मचारी रहकर ईश्वर भजन करूंगा।" इस तरह ये विवाहकी बला से विलग हुए।

संवत् १६४५ तक स्वामीजी अविवाहित रहकर घरमें ही रहे, पश्चात् उसी साल इनकी स्नेहमयी माताका देहावसान हो गया, जिसके आघातको ये सहन न कर सके और संसार से विरक्त हो गये। इनको संसार असार दिखाई देने लगा। फिर क्या था, इन्होंने घर-द्वारसे निकलकर जङ्गलका रास्ता पकड़ लिया।

कई दिनोंतक स्वामीजी राजपूतानामें इधर उधर भ्रमण करते रहे। उस समय ये वृक्षोंके पत्र और फूलों पर ही जीवन धारण करते थे। किसी से खानेके लिए कुछ भी नहीं मांगते थे। कोई दे देता तो खा लेते, नहीं तो पत्र-पुष्प ही इनका आहार होता था।

भ्रमण करते हुए स्वामीजी रीणी (बीकानेर) पहुंचे, वहां स्वामी मोतीनाथजी अपनी शिष्य-मण्डली सहित रहा करते थे। स्वामी मोतीनाथजीके शिष्यों में से एक स्वामी चम्पानाथजी * थे, उन्हींसे स्वामी अमृतनाथजीने संन्यास-दीक्षा ली।

संन्यासी होनेके बाद स्वामीजीको गौस्वामी मुरजनपुरीजी † का साथ हो गया था, उन्हींके साथ ये राजपूतानामें जहां-तहां भ्रमण करते रहे। भ्रमण करते हुए संवत् १६५८ में ये फतहपुर पधारे।

* स्वामी चम्पानाथजी के विषयमें इससे पहले का लेख पढ़िए।

† गौस्वामी मुरजनपुरीजी एक साधु थे।

फतहपुरमें घड़वे जोहड़े (तालाब) * के सामनेके पीपल-वृक्षके गट्टेके पास पृथिवीमें गुफा बनाकर ये रहने लगे ; बादमें फतहपुरके उत्तरमें स्थित श्मशान-भूमिमें सेठ जगन्नाथजी सिंघानियाके बनवाये हुए एक तिबारेमें आगये और वहीं रहने लगे। कभी-कभी आसपासके गांवोंमें भ्रमणार्थ भी ये चले जाया करते थे। संवत् १६६६ में इनका शरीर उदरवृद्धिके कारण बिलकुल बेकार होगया, तबसे ये वहीं उक्त तिबारेके सामने एक बालूके टीले (टीबे) पर लेट गये और जब तक इनके लिए आश्रम न बना, लेटते रहे।

उसी साल फतहपुरके उत्तरमें रामगढ़के रास्तेमें दौलताबादके पास खाकीके टीबेपर इनका आश्रम बन गया, † जिसमें १६६६ की माघ शुक्ला ५ के दिन स्वामीजी लाये गये। इनके भक्तोंकी संख्या दिन पर दिन बढ़ने लगी। इनके भक्तोंमें विशेष उल्लेखनीय नाम स्व० रामलालजी फतहचन्दका, स्व० कृष्णदेवजी नेवटिया, स्व० बदरीदासजी खेमका और स्व० डुंगरसीदासजी नेवटियाके हैं।

उस समय स्वामीजीके दर्शनार्थियोंकी काफी भीड़ आश्रममें लगती रही। रावराजा माधवसिंहजी भी इनकी कीर्ति सुनकर

---

* फतहपुर के दक्षिण में नवाब जलालखाँ की बीहड़ में यह जोहड़ा स्थित है।

† यह आश्रम प्रारम्भ में एक झोंपड़े के रूप में बना, पश्चात् शनैः शनैः पक्का बनता गया। संवत् १९७७ में इसका दरवाजा और चहारदीवारी बनी।

इनके दर्शनार्थ आश्रममें पधारे थे, उन्होंने एक स्वर्ण-मुद्रा स्वामीजी को भेंट की तथा आश्रमके आसपासकी २५ बीघा जमीन आश्रमके अर्पण कर, स्वामीजीके प्रति अपनी भक्ति दिखलायी। उक्त जमीन 'नाथजीकी बनी' कहलाती है।

बाहर गांवके रहनेवाले, स्वामीजीके बहुत-से अंधभक्तोंने तो स्वामीजीकी भेंटमें अपने प्यारे पुत्रों तकको चढ़ा दिया, जिनको इन्होंने अपना शिष्य बनाकर आश्रममें रख लिया। यद्यपि स्वामी-जी पढ़े-लिखे नहीं थे, फिर भी इनके उपदेशोंके प्रभावसे अनेक कुमार्गी सुमार्ग-गामी बने।

संवत् १९७३ में आश्विन मासकी १५ के दिन ६४ वर्षकी अवस्थामें स्वामीजीने फतहपुर में अपना शरीर छोड़ा। जिस झोंपड़ेमें ये रहते थे, उसीमें इनको समाधि दी गयी। बादमें इनकी समाधि पक्की बनादी गयी, जिसमें श्वेत पत्थरके बने हुए चरण-द्वय लगवा दिये गये। आजभी इस समाधि-मंदिरको स्वामीजी के आश्रममें जाकर हम देख सकते हैं।

× × × ×

स्वामीजीके शिष्य ज्योतिनाथजीको स्वामीजीके स्वर्गस्थ हो जानेके बाद, इनका उत्तराधिकार मिला। उत्तराधिकार होते समय ठा० चमनसिंहजीने ५१ बीघा उदासरकी जमीन आश्रमको दी, वह जमीन आश्रमके अधीन है।



स्व० सेठ सुखानन्दजी सरावगी

सेठ सुखानन्दजी सरावगी

(संवत् १९२४ से १९८७ तक, तदनुसार सन् १८६७ से १९३१ तक)

बम्बई और फतहपुरके जन समुदायमें ऐसा कोई आदमी कठिनतासे मिलेगा जिसने सेठ सुखानन्दजीका नाम न सुना हो। सेठ सुखानन्दजी फतहपुरके अग्रवाल जातीय श्रावक वंशोत्पन्न थे। इनके पिताका नाम गुरुमुखरायजी था, जिनकी सुलक्षिणी गृहदेवी के उदर से सेठजीने इन्दौरमें संवत् १९२४ में जन्म धारण किया।

सेठजीका बाल्यकाल इन्दौरमें ही बीता। इनके पिताकी वहां अफिमके व्यापारकी दूकान थी, इसीसे वे सपरिवार वहां रहा करते थे। सेठजी ने अपने पिताके द्वारा किये जानेवाले व्यापारका, अपनी किशोरावस्थाके समयसे ही, मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया, जिसके फलस्वरूप छोटी अवस्था में ही ये उसमें दक्ष हो गये और स्वयम् भी व्यापार करने लगे।

सेठजीके वयस्क और व्यापार-कुशल हो जानेपर सेठजीके पिताने अपने व्यापारको विस्तृत करना चाहा। उन्होंने अपनी एक दूकान बम्बईमें खोली और बम्बईको ही अपने व्यापारका प्रधान स्थान बनाया। सेठजी बम्बई भेज दिये गये, जिनकी देखरेखमें वहांकी दूकान उचित रीत्या चलती रही। व्यापारमें भी अच्छा लाभ इनके हाथसे हुआ, जिससे कालान्तरमें ये बम्बईके एक असाधारण व्यापारी गिने जाने लगे।

सेठजी जब ३५ वर्षके हुए तब इनके पिताका देहान्त होगया। व्यापारका सारा बोझ इन्हींके कंधों पर आ गिरा, जिसे उचित रीति से इन्होंने सम्भाल लिया और कुशलतापूर्वक व्यापार संचालन करते हुए इन्होंने बम्बईके व्यापारिक क्षेत्रमें अपनी काफी प्रतिष्ठा स्थापित करली।

धन और प्रतिष्ठाके साथ-साथ और २ भी कतिपय गुण, जो प्रायः धनियोंमें नहीं हुआ करते हैं, सेठजीमें विद्यमान थे, जिनके कारण वर्त्तमान में--अपने पार्थिव शरीरकी अविद्यमानता में--भी सेठजी जीवित हैं। करुणा, दया, उदारता, गुणग्राहकता, सहनशीलता, निरभिमानता, संयम और ब्रह्मचर्य इनके विशेष गुण थे।

करुणा और दयाके तो सेठजी अवतार हुए हैं। सुनते हैं बम्बई में हर वर्ष १ तथा १। लाख रुपये इनकी दूकानसे दलालीके, दलाली-पेशा साधारण स्थितिके लोगोंको देनेमें निकल जाया करते थे। इतनी बड़ी रकमका प्रतिवर्ष दलालीके बहाने, एक बड़े जन समुदायकी आजीविका चलानेके लिए, निकाला जाना कोई साधारण बात नहीं है; बल्कि एक बृहदाकार कलेजेका काम है। इसी तरहके परहेतुक कार्योंके द्वारा सेठजीका स्थान बम्बईके सराफोंमें सर्वप्रथम होगया था। बम्बई जैसे खर्चीले स्थानसे तंग आकर बहुतसे अभागे धनविहीन जन इनके पास रोते हुए जाया करते और हंसते हुए आते थे। ये गरीबोंके आंसू सहर्ष पूंछ देते और अपना अहोभाग्य इसी में मानते थे।

सीकर-नरेश रावराजा माधवसिंहजी और कल्याणसिंहजी दोनों के हृदयोंमें सेठजीके लिए बहुत ऊंचा स्थान था, वे इन्हें बड़ी इज्जतकी नजरसे देखते रहे। उनसे भी सेठजीने ऐसे काम लिये, जो इन्हें अमर और इनकी कीर्तिको अनन्तकाल-स्थायी बनाये देते हैं। उन कार्योंका परिचय यहां पाठकोंको करा देना अत्यन्त आवश्यक होगा।

रावराजा माधवसिंहजीसे सेठजीने, प्रत्येक मासकी सुदी १४ तथा दशलक्षणी पर्व (जैनियोंका एक पर्व, जो भाद्रपद शुक्ला ५ से १४ तक रहता है) के दिनोंमें फतहपुर, रामगढ़, लक्ष्मणगढ़ और सीकरमें पशुबध और मांस--बिक्रीके घृणित कार्य न किये जानेकी आज्ञा सदाके लिए जारी करवायी और फतहपुर, रामगढ़, लक्ष्मणगढ़ के दशहरेकी पशुबलिको भी बन्द करवाया।

तत्पश्चात् माघ कृष्णा १३ संवत् १९८२ को, जब रावराजा कल्याणसिंहजी गद्दी पर थे, सेठजीने अगतों * पर सीकर राज्यमें की जानेवाली पशु-हिंसा और मांस-बिक्रीके विरुद्ध राजाज्ञा जारी करवा दी; सीकरका, दशहरेका पशु-बलिदान रुकवा दिया और नवाब जलालखाँकी छोड़ी हुई शहरके दक्षिणमें स्थित बीहड़में बिना राज्यकी सनदके शिकार न खेल सकनेका हुक्म जारी करवा दिया।

उपर्युक्त आज्ञाओंके विरुद्ध आचरण करनेवालेके लिए छ मासकी कड़ी कैदकी सजा और २००) रुपये जुर्माना ठहराया गया।

---

‡ अगतोंके विषयमें, इसी पुस्तक के चौथे खण्डमें "रावराजा कल्याण-सिंहजी बहादुर" शीर्षक निबन्ध के एक फुटनोट में लिखा जा चुका है, उसे पढ़िए।

इन सुधारोंके अतिरिक्त बिसाऊमें होनेवाले दशहरेके घृणित पशुबधका अन्त भी, सेठजीने ही करवाया। एक बार जब बिसाऊ के ठाकुर बम्बई गये, उस समय सेठजीकी धर्मशालामें ही उनका ठहरना हुआ। सेठजीसे बातचीतके सिलसिलेमें उन्होंने यथायोग्य सेवा-कार्य पूछा। सेठजीने बिसाऊके दशहरेको सदाके लिए बन्द कर देनेकी आज्ञा जारी कर देनेकी बात उनसे कही। उन्होंने इनकी बात मानकर दशहरेके पशुबधको बन्द कर दिया।

अपनी समाज (जैन समाज) में भी सेठजीकी पूर्ण प्रतिष्ठा थी। हरएक समाज तथा धर्मसम्बन्धी कामोंमें ये ही अग्रणी हुआ करते थे, और वह काम भी इनकी कार्यकुशलता और तन्मयताके कारण पूरा हो जाता था; क्यों न होता, जब ये धन, जन और बुद्धि तीनों द्वारा सहायता किया करते थे !

ऊपरकी बातोंसे सेठजीके राज्य-मान्य और समाज-मान्य होने का पता लगता है; फिर भी अभिमानका इनको स्पर्श तक न हुआ था। ये बड़े ही हंसोड़ प्रकृतिके थे। पासमें बैठनेवालोंसे खूब हँसी-मजाक किया करते और ठहठहाकर हँसा करते थे। कभी-कभी तो ये हँसी देवीकी उपासनामें इतने रत हो जाते कि उसकी तल्लीनतामें अपने आपको भूल जाते थे। बस यही एक दुर्गुण इनमें बताया जाता है, पर इनके अनेक गुणोंके प्रकाशके सामने इनका उक्त दुर्गुण अपने ध्वान्तका प्रसार नहीं कर सकता।

सेठजीका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल था। चरित्रदोषको; ये मानवताकी एक बड़ी भारी कमी मानते थे। इन्होंने अपने लड़के मोतीलाल * को चरित्र-दोषसे दूषित होनेके कारण ही घरसे निकाल दिया था।

संवत् १९६५ में बैसाख सुदी ७ के दिन सेठजीने अपने मृत पिताकी स्मृतिको चिरस्थायी बनानेके लिए फतहपुरमें गुरुमुखराय जैन पाठशाला † की स्थापना की, जो आज तक विद्यमान है।

जब संवत् १९६६ में अनावृष्टि अकालके कारण निर्धनोंको बड़े भारी कष्टका सामना करना पड़ा था, उस समय सेठजीने उनके कष्टों को कम करनेके लिए फतहपुरके बाजारमें बजरेका भाव १६ सेरका बंधवा दिया ‡ और इससे होनेवाली आर्थिक हानि अपने ऊपर लेली। इस कार्यमें लगभग २००००) रुपये सेठजीको नुकसानके देने पड़े।

* मोतीलाल—सेठ सुखानन्दजी का दत्तक पुत्र था। ३० वर्ष तक निःसन्तान रहने के बाद सेठजी ने इसे दत्तक रूप से ग्रहण किया था। यह अपने समय का शेखावाटी का अद्वितीय शौकीन और अपव्ययी था।

† गुरुमुखराय जैन पाठशाला के सम्बन्ध में इसी पुस्तक के छठे खण्ड में देखिए।

‡ संवत् १९६६ में ५८ तोलोंका सेर फतहपुरमें था; जो संवत् १९८५ तक चलता रहा। यह प्राचीन समयसे चला आ रहा था।

तदनन्तर एक साल दशलक्षणी पर्वके शुभ दिनोंमें वालदे की २०० गायें किसी मुसलमानके हाथ बेची जाकर बाहर भेजी जाने वाली थीं, उनको सेठजीने छुड़ा कर १२ महीने तक रक्खा और उचित रीतिसे उनको खिलाया-पिलाया। इस काममें सेठजीके १५०००) रुपये खर्च हुए।

उपर्युक्त उपकारोंके अतिरिक्त और २ भी परोपकारके कार्य सेठजीने किये। बम्बईमें, मंदारगिरि (दक्खिन) में और ईशरी स्टेशन पर इन्होंने धर्मशालाओंका निर्माण करवाया, जिनमें पांच लाख, पच्चीस हजार और बीस हजार रुपये क्रमशः लगे। बम्बईकी इनकी धर्मशाला बेजोड़ गिनी जाती है। *

बम्बईकी कई सामाजिक और धार्मिक संस्थाएं—जिनको सेठजी मासिक और वार्षिक सहायता दिया करते थ—सेठजी द्वारा प्राप्त सहायता और प्रोत्साहनको भुला नहीं सकतीं। इन्हीं संस्थाओंने सेठजीको 'दानवीर' उपाधिसे विभूषित किया था।

---

* उपर्युक्त धर्मशाला बम्बई के माधवबाग मुहल्ले में है। बड़ी ही शानदार बनी है। इसमें यात्रियोंके उतरने का अच्छा प्रबन्ध है। एक यात्री ८ दिन तक, धर्मशाला के मैनेजर से आज्ञा प्राप्त करने के बाद, यहां ठिक सकता है।

दि० जैनियोंके लिए रहने का खास इन्तिजाम इसमें है। उनके ठहरने के लिए पृथक् ४ कमरे हमेशा रिजर्वड् रहा करते हैं। दरवाजे परका विशाल कमरा खासकर राजा-महाराजाओं के लिए नियुक्त है, जिसमें प्रायः बम्बई आनेके समय वे लोग ठहरा करते हैं।

सेठजी जैसे आदमी दुनियामें बहुत कम हुआ करते हैं।* खास इन्हींके पिताके, इनके सिवा और कई सन्तान हुई, जिनमें इनकी समता रखनेवाली कोई नहीं थी। ये अपने ढंगके एक ही थे। संवत् १६८७ की फाल्गुण कृष्णा १ को बम्बईमें, बिना किसी बीमारी के एकाएक हृदयकी गति बन्द हो जानेसे, सेठजीका देहान्त हुआ। अब इनके रिक्त स्थानका पूर्ण होना असम्भव-सा प्रतीत होता है।

मौनी कुशलरामजी

(रावराजा कल्याणसिंहजी के समय में)

मौनी कुशलरामजीको फतहपुर तथा उसके आसपासके गांवोंके लोग 'मुनिजी' के नामसे खूब ज़ानते थे। ये जातिके ब्राह्मण थे। इनका जन्म बीकानेर रियासतके किसी गांवमें हुआ। बचपनमें ही इनके पिताका देहान्त होगया था, इससे इनकी माताने ही इनका पालन-पोषण किया। जब ये ७-८ वर्षके हुए तब इनकी माता इन्हें गाय-बकरी चराने तथा खेतकी रखवाली करने भेज दिया करती थीं। इनके बड़े भाई भी इनके साथ जाते, पर ये उनसे अधिक

* ईश्वरदासजी पौद्दार (बम्बई) का व्यक्तित्व कुछ-कुछ सेठ सुखानन्द-जी जैसा था, पर वे असमय ही मृत्युको प्राप्त हो गये, इससे वे कोई ऐसा काम नहीं कर पाये जिसका उल्लेख किया जाय।

बोलते-चालते नहीं थे ; न मालूम इनको क्या होगया था। ये तो अपनी ही धुनमें मस्त रहते थे।

इसी धुनने इनको वैरागी बना दिया। ये घरसे बहिर्गत होकर भजन-स्मरण करनेके लिए तैयार हुए ; परन्तु इनकी माताने इन्हें किसी तरह कह-सुनकर घरमें ही रक्खा और इनकी शादी करदी। शादी होनेके कुछ समय बाद ये एक दिन खेत जानेका बहाना बनाकर घरसे निकल गये और ४ वर्ष तक गायब रहे ; पश्चात् एक दिन स्वमातृ-स्नेहकी याद हो जाने पर, माताके दर्शन करने के लिए ये घर आये ; उस समय माताके अत्यन्त आग्रह करने पर ये घरमें रह गये और गृहस्थ-जीवन बिताने लगे।

कुछ समय बाद इनके एक पुत्र पैदा हुआ, जो अपनी माता (इनकी स्त्री) सहित परलोक-गामी हो गया। इनके वैराग्यकी अग्निको भभकानेमें इस घटनाने ईंधनका काम किया। ये घर से निकल पड़े और किसी योग्य गुरुकी खोजमें इधर-उधर घूमने लगे। इनकी भेंट 'बरखण्डीजी' नामके एक साधुसे हुई, जिनको इन्होंने अपना गुरु बनाया।

साधु हो जानेके बाद मौनीजी राजपूताने में जहां-तहां घूमते रहे। घूमते हुए ये फतहपुरमें कई बार आया करते और यहीं अपने भक्तोंकी बढ़ी हुई संख्या देखकर अधिक समय तक टिके रहते।

मौनीजीके गांववाले * भी मौनीजीके भक्त हो गये थे, वे

* जिस गांव में मौनीजी ने जन्मधारण किया था, वहां के बाशिन्दे।

इनको भेंटमें रुपया-पैसा देने लगे। इन्होंने किसीकी दी हुई भेंटको अस्वीकार नहीं किया। ये उन रुपयोंको तत्स्थानीय किसी साहूकारके पास जमा करवाते रहे, यहांतक कि इनके जमा रुपयोंका कुलजोड़ 'साठ हजार' हो गया था। इन्होंने उन रुपयोंको किसी धार्मिक कार्यमें लगवा दिया होगा, इस सम्बन्धमें ठीक २ पता नहीं लगा।

मौनीजीका जीवन, वास्तवमें, ब ुत सादा था। ये गृहत्यागी होनेके बाद से एक कौपीन-मात्र वस्त्र लज्जा निवारणार्थ धारण करते और अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करते आरहे थे। इनकी नासिकाका एक ओरका छिद्र रूई से बन्द रहता था। बोलते ये कुछ भी नहीं थे। पासमें आने-जानेवालोंके प्रश्नोंके उत्तर पृथिवीपर अंगुलीसे लिखकर दिया करते थे, जिनको इन्हींके पासमें रहनेवाला इनका एक ब्रह्मचारी शिष्य * स्पष्ट करता था।

लगभग ३० वर्षतक मौनावलम्बनपूर्वक पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए इन्होंने ७६ वर्षकी अवस्थामें राजगढ़ (बीकानेर) में शरीर परित्याग किया। ये फतहपुरमें घड़वे जोहड़ेके पासकी धर्मशालामें रहा करते थे।

* यह ब्रह्मचारी वर्त्तमान में भी है

बाबू बासुदेवजी गोयनका

(वर्त्तमान में)

बाबू बासुदेवजी गोयनकाका नाम फतहपुरके वर्त्तमानके नर-रत्नोंमें विशेष उल्लेख योग्य है। इनका जन्म फतहपुरमें संवत् १९४१ की अश्विन शुक्ला ४ को हुआ। कन्हैयालालजी इनके पिता का नाम था, जिनके इनके सिवा और २ भी संतान थीं, जिनके सम्बन्धमें यहां कुछ भी लिखना अनावश्यक और विषयान्तरकारी है।

१७ वर्षकी अवस्था होने तक गोयनकाजी फतहपुरमें ही रहे, पश्चात् संवत् १९५८ में ये कलकत्ता चले गये और वहां जाकर एक मारवाड़ी फर्ममें, जिनके यहां 'वंशीधर भगवानदास' के नामसे व्यापार होता था, नौकरी करली। ये वहां मुनीमकी बतौर नियुक्त किये गये।

अपनी योग्यता एवम् कार्यकुशलतासे गोयनकाजीने उक्त फर्मके मालिकोंका मन मोह लिया और उनके कृपाभाजन बन गये। मालिकोंने अपनी फर्मकी एक शाखा 'भगवानदास सूरजमल' नामसे खोली, जिसमें उन्होंने गोयनकाजीको भी पार्टनर (हिस्सेदार) बनाया। उस फर्मके मालिक जबतक सम्मिलित रहे तब तक ये उसमें कार्य करते रहे। तदनन्तर अपने बड़े भाई नागरमलजीके साथ ये शेयरमार्केटमें काम करने लगे और अब तक वही काम करते आ रहे हैं।



बाबू वासुदेवजी गोयनका



बाबू बजरंगलालजी लोहिया

बड़े ही मिलनसार, सरल हृदय, और मिष्टभाषी गोयनकाजी हैं। साथमें सुशिक्षित भी हैं। इनकी सुशिक्षा उपर्युक्त गुणोंके साथ मिलकर सोनेमें सुगन्धका सा काम करती है।

पुस्तकोंका गोयनकाजीको बड़ा प्रेम है, जो आरम्भ से ही है। पुस्तक-प्रेमके कारण इनके पास पुस्तकोंका अच्छा संग्रह हो गया है। अपने इसी संग्रह में से बहुत-सी पुस्तकें प्रदान कर फतहपुरमें संवत् १९६७ की बैसाख शुक्ला ६ को इन्होंने श्री सरस्वती पुस्तकालय * नामक संस्थाकी स्थापना की, जो आज एक अच्छी लाइब्रेरीके रूपमें विद्यमान है। इन्हींकी प्रेरणा से इस लाइब्रेरीका निजी भवन इनके बड़े भाई नागरमलजीकी माता—जिनके वे गोद हैं–ने संवत् १९९२ में बनवाया।

उपर्युक्त लाइब्रेरीकी व्यवस्था संवत् १९८० तक गोयनकाजीके द्वारा ही होती रही। जब ये कलकत्तामें होते तो इनकी ओर से पुस्तकालयकी व्यवस्था करनेके लिए एक व्यवस्थापक फतहपुरमें नियुक्त रहता और प्रबन्ध करता। इनके व्यवस्थापक पदसे हट जानेके बादसे पुस्तकालयका प्रबन्ध दुःखद्-सा बना हुआ चला आता है।

कलकत्तामें भी गोयनकाजी कई सार्वजनिक संस्थाओंमें बराबर भाग लेते रहे हैं। ये बड़े उत्साही और अपनी लगनके पक्के हैं।

---

* सरस्वती पुस्तकालय के सम्बन्ध में इसी पुस्तक के छठे खण्ड में पढ़िए।

इसी अपनी सोत्साह लगनके द्वारा इन्होंने फतहपुरमें उक्त पुस्तकालय खोला, जिसके लिए यहांका सुशिक्षित समाज इनका सदा अभारी बना रहेगा।

बाबू बजरङ्गलालजी लोहिया

(वर्त्तमान में)

बाबू बजरंगलालजी लोहियाका जन्म करीब ५५ वर्ष पहले, रामप्रतापजी लोहियाकी गृहलक्ष्मीके उदरसे फतहपुरमें हुआ। फतहपुरके नर-रत्नोंमें इनका स्थान महत्त्वका है। ये एक निराले ढङ्गके व्यक्ति हैं। इनके व्यक्तित्वकी अपनी कुछ विशेषता है। त्याग, अनवरत तल्लीनता, दृढ़ निश्चय और पुस्तक-प्रेम आदि २ अनेक गुण इनके व्यक्तित्वके सर्वदाके सहचर हैं, जिनके साहचर्यके बिना इन्हें पल भर भी चैन मिलना असम्भव-सा है।

यद्यपि ये उच्च शिक्षा-प्राप्त नहीं हैं, फिर भी एक अच्छे और उच्च शिक्षित व्यक्तिसे इनका अनुभव और विचारोंकी प्रौढ़ता किसी कदर कम नहीं हैं। इसका एक मात्र कारण इनका प्रगाढ़ पुस्तक-प्रेम है। ये स्वयं कहा करते हैं "यद्यपि मैं समय-समयपर कई राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार, पण्डित और त्यागियों से मिला, तथा उनमें से कुछके साथ मित्रताके पवित्र पाशमें भी मैं बंध गया, लेकिन

मुझे मेरे जीवनमें पुस्तक जैसा एक भी प्रहर्षकर अभीष्ट साथी नहीं मिला।" इन्हींके उपर्युक्त शब्दोंसे भली भाँति जाना जा सकता है कि इनमें पुस्तक-प्रेम कितना अधिक है।

अपने इसी पुस्तक-प्रेमसे प्रेरित होकर लोहियाजीने श्री सरस्वती पुस्तकालयको जन्म देनेमें बाबू बासुदेवजी गोयनका का पूर्णरूपेण साथ दिया एवं इसको स्वशक्तिसे अधिक सहायता देकर उन्नत भी बनाया। आज भी लोहियाजीको खाते-पीते, सोते-बैठते, चलते-फिरते, दिनमें या रात्रिमें इसी पुस्तकालयका ध्यान बना रहता है; इसी पुस्तकालयको परमाभ्युदयके शिखर पर देखनेके स्वप्नमें एकान्त में ये घण्टों ध्यानमग्न-से बैठे रहते हैं और इसीके ध्यानमें ये यत्रतत्र कलकत्ताके बाजारोंमें विचरते हुए पुस्तक-विक्रेताओंकी दूकानोंमें जाते-आते देखे जाते हैं। इनकी इस धुनको देखकर कोई भी व्यक्ति यह निःसंकोच कह देगा कि "सरस्वती पुस्तकालयकी उन्नतिके लिए विचरना लोहियाजीके जीवनका मिशन बन चुका है।" फतहपुरको लोहियाजी जैसे व्यक्ति पर गर्व होना चाहिए।

बाबू कन्हैयालालजी चितलांगिया

(वर्त्तमान में)

माहेश्वरी जातिके चितलांगिया गोत्रमें बाबू कन्हैयालालजीका जन्म हुआ। इनके पिताका नाम गोपीरामजी था।

चितलांगियाजी सुशिक्षित और सुलझे हुए विचारोंके अपने ही ढांचेके एक आदमी हैं। इनकी समानता रखनेवाला इक्का-दुक्का आदमी शेखावाटी प्रांतमें मिल सकेगा, यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं है। इनसे मिलनेपर ही इनके निरालेपनका पता लगता है। इनके निरालेपनको देखकर तो "तीन लोकसे मथुरा न्यारी" वाली लोकोक्ति स्मरण आजाती है।

चितलांगियाजीकी शिक्षा कलकत्तामें हुई। स्कोटिश चर्च कालेजमें ये पढ़ते थे। मैट्रिककी परीक्षा फर्स्ट डिविजनमें इन्होंने पास की। पश्चात् इण्टरमीडियेटमें भी अच्छे नम्बरोंसे पास हुए और अपना अध्ययन आगेके लिए जारी रक्खा।

जब ये थर्ड ईयर में थे तब इनकी परीक्षाके १५ दिन पहले ब्रिटिश गवर्नमेण्टकी ओर से इनपर तथा इनके एक-दो और साथियों पर—क्रांतिकारी होनेके संदेहके कारण—गिरफ्तारीका वारंट जारी किया गया। ये तथा इनके साथी पकड़ लिये गये। इनके साथियोंको गवर्नमेण्ट ने पहलेही छोड़ दिया और ये कैद करलिये-गये। इनको उस समय ३ वर्ष तक कठिन कारावास भोगना पड़ा

था। तदनन्तर कारावास से छूटनेके बाद भी इनका कई वर्षों तक बङ्गाल प्रांतमें प्रवेश बन्द रहा।

ये बड़े अध्ययनशील हैं। रात-दिन इनका पढ़ने-लिखनेमें ही बीतता है। जब देखिए तब ये पुस्तकों और समाचार पत्रोंके बीच में लेटे हुए ही मिलेंगे।

अपनी अनवरत अध्ययनशीलताके कारण ही चितलांगियाजीने एकबार बङ्गालमें होनेवाली अङ्गरेजी भाषाकी उच्चारण-प्रतियोगिता में सर्व-प्रथम नम्बर पाया था, जिसे देखकर अच्छे-अच्छे अङ्गरेजीके पण्डित और ग्रेजुएट भी आश्चर्य-चकित और अवाक् रह गये थे।

चितलांगियाजीकी प्रत्येक विषयमें थोड़ी बहुत पहुंच अवश्य है। खासकर राजनीति, व्यापार और प्राकृत स्वास्थ्य विज्ञानके ये पंडित हैं। जीवन इनका एक गृहस्थ होने पर भी संतका-सा है। संवत् १९९४ में एक विश्व-भ्रमणकारी अफरीकन यात्री, जब राजपूतानामें भ्रमण करता हुआ आया तब उसका फतहपुर भी आना हुआ; वह इनसे मिलकर बड़ा खुश हुआ और कहने लगा कि "मुझे आप जैसे सज्जन से मिलकर बड़ी खुशी हुई; मैं नहीं जानता था कि मरुभूमि में भी इतने श्रेष्ठ विचारोंका कोई व्यक्ति होगा। आपके ऊंचे विचार और सादी रहन-सहनको दृष्टिगत करके मैं आपको Plain living & high thinking का मूर्त्तिमान उदाहरण मानता हूं।"

यात्रीके कहे हुए उपर्युक्त विचारों से चितलांगियाजीके असाधारण व्यक्तित्वका, हमें थोड़ा बहुत आभास मिल जाता है ; पर मैं समझता हूं ऐसे व्यक्तित्वको समझनेवाले बहुत कम फतहपुरमें होंगे। हमें ऐसे व्यक्तित्वका सम्मान करना चाहिए।

बाबू गङ्गाप्रसादजी भोतीका

(वर्त्तमान में)

कलकत्ताके मारवाड़ी समाजके गण्यमान्य समाज-सुधारकों में से एक, बाबू गङ्गाप्रसादजी भोतीका भी हैं। इनका जन्म संवत् १९४८ में बदरीदासजी (भोतीका) की गृहिणीके उदरसे फतहपुर में हुआ।

संवत् १९५८ में जब भोतीकाजी केवल १० वर्षके ही थे तब हुकुमीचन्दजी चौधरीने अपने नोहरेमें एक पाठशाला खुलवायी, उस पाठशालामें अयोध्याप्रसादजी शर्मा नामके एक अनुभवी मास्टर अध्यापन-कार्यके लिए रक्खे गये। भोतीकाजी भी उनके पास पठनार्थ आने लगे।

भोतीकाजीकी अवस्था यद्यपि छोटी थी, पर बुद्धि अत्यन्त तीव्र थी, जिसके कारण मास्टर अयोध्याप्रसादजी इनकी ओर आकर्षित हुए बिना न रहे। उन्होंने इन्हें होनहार बालक जानकर बड़े प्रेमसे पढ़ाया। पश्चात् वे किसी कारणसे इस्तीफा देकर उक्त पाठशाला से चले गये तब भोतीकाजीने भी पाठशाला छोड़ दी तथा संवत् १९५९ में अपने कुछ साथियोंसे मिलकर आर्यपाठशालाकी स्थापना की, जो करीब १० वर्ष तक चलती रही होगी।

संवत् १९६५ में भोतीकाजी कलकत्ता चले गये। वहां जाकर भी इनका अध्ययन जारी रहा। विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय में इन्होंने अपना नाम लिखवाया और वहीं से मैट्रिक पास करनेके

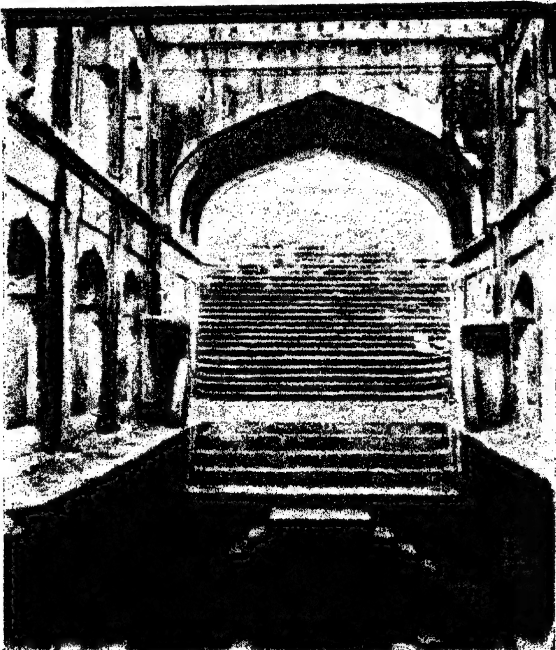
बाद ये कलकत्ताके किसी कालेजमें भरती हो गये। लगातार ६ वर्ष तक अध्ययन करके इन्होंने एम० ए० की डिग्री कालेजसे प्राप्त की; पश्चात् बी० एल० (बेचेलर आफ ला) परीक्षा की तैयारी में ये लग गये और उसे भी यथासमय पास करली तथा संस्कृतकी काव्यतीर्थ परीक्षा भी पास की।

भोतीकाजी अङ्गरेजी और संस्कृतके अतिरिक्त हिन्दी, उर्दू और बङ्गला प्रभृति भाषाएं भी अच्छी तरह जानते हैं।

वर्त्तमानमें भोतीकाजी कलकत्तामें ही रह रहे हैं। अपने आजीविकोपार्जनके कार्यके अलावा ये वहां सामाजिक और राजनैतिक कार्यों में बराबर भाग लेते रहे हैं और आजभी ले रहे हैं। कलकत्ताके प्रायः सभी समाज-सुधारक इनसे भली प्रकार परिचित हैं।



फतहपुर का किला



नवाबो बावड़ी

छठा खण्ड



दर्शनीय प्राचीन स्थान, धर्मायतन और संस्थाएं



दर्शनीय प्राचीन स्थान

फतहपुरका किला

हिसारके नवाब ताजखाँके सं० १५०३ में देहान्त हो जाने पर, उनके लड़के फतहखाँ हिसारकी गद्दी पर बैठे। उन्होंने गद्दीस्थ होनेके बाद कई लड़ाइयाँ अपनी राज्य-वृद्धिके लिए हिसारके आसपास लड़ीं, जिनमें उनको सफलता नहीं मिली। उनका राज्य बढ़नेकी बजाय घटता ही गया।

ऐसी अवस्थामें नवाब फतहखाँको कब चैन पड़ सकता था। उन्होंने अपने मुसाहिबों और मित्रोंको एकत्रित करके उनके सत्परामर्शसे अपनी चिन्ताका अन्त करना चाहा। सब लोगोंने नवाबसे एक नवीन शहर आबाद करनेकी बात कही, जिसे नवाबने बिना किसी हिचकिचाहटके स्वीकार कर लिया।

नवाब अपने मंत्रिवर्ग सहित राजपूतानामें आये और वहांके रिणाऊ नामके एक छोटेसे गांव (फतहपुरसे दक्खिन ३ कोसकी दूरी पर है) में रहकर सं० १५०६ में उन्होंने एक नवीन शहरके लिए नवीन किला बनवाना आरम्भ कर दिया। किला करीब २ वर्षमें बनकर तैयार हुआ होगा ; यही फतहपुरका किला कहलाया।

संवत् १५०७ की समाप्तिके कुछ दिन पहले नवाब, दिल्लीका स्वामित्व स्वीकार न करनेके कारण बहलोल लोदी द्वारा हिसारसे निकाले गये। * वे अपने नवीन बनाये जानेवाले किलेमें आगये। उस समय यह किला बन चुका था। नवाबने अपने नामसे 'फतहपुर' नाम देकर किलेके चारों ओर एक शहर आबाद किया। संवत् १५०८ की चैत्र सुदी ५ को नवाबने किलेमें प्रवेश किया था।

यह किला बहुत बड़ा और मजबूत बना हुआ है। आजतक इतना प्राचीन होने पर भी, उसी रूपमें विद्यमान है। किलेकी दीवार तथा उसके अन्दरके मकान—सिवा कुछ फूट-टूटके पूर्ववत् ही हैं। मरम्मत करवानेसे किला बड़ा शानदार बन सकता है।

---

* संवत् १५०७ में बहलोल लोदी ने अलाउद्दीन सैयद से दिल्ली की बादशाहत छीन ली और स्वयम् बादशाह बन बैठा। उसने दिल्ली के स्वामित्व को स्वीकार न करनेवाले राजाओं और नवाबों पर चढाइयां कीं। नवाब फतहखां भी दिल्लीका स्वामित्व न माननेवाले शासकोंमें से एक थे। उनकी बारी जब आयी तो उन्हें और उनके चाचा मुहम्मदखांको हिसार से निकाल दिया गया।

संवत् १६६२ में नवाब दौलतखाँ (२) ने अपने पिता नवाब अलिफखाँके राज्यकालमें उनसे ही आदेशित होकर इस किलेकी मरम्मत करवायी थी एवम् किलेके चारों ओर खाई भी दिलवायी, जो अबतक बनी हुई है। * किलेमें का 'तेलिनका महल' बहुत प्रसिद्ध है, जो नवाब सरदारखाँ (२) द्वारा अपनी विवाहिता तेलिनके लिए बनवाया गया था। संवत् १७८८ से यह किला शेखावत राजपूतोंके अधिकारमें चला आता है।

* इस खाई को यहां के लोग 'नहर' कहते हैं। आजकल राज्यकी ओर से कोई प्रबन्ध न रहने से यह खाई लोगोंके टट्टी फिरने के काम आती है। राज्य द्वारा इसका उचित प्रबन्ध किया जाय तो अच्छा है।

नवाबी बावड़ी

फतहपुरकी नवाबी बावड़ी, फतहपुरका एक दर्शनीय प्राचीन स्थान है। संवत् १६७१ में नवाब अलिफखाँके समयमें उन्हींकी आज्ञासे उनके लड़के नवाब दौलतखाँ (२) की देखरेखमें नागौरके शेख महदूदने यह बावड़ी बनवायी थी।

सर्वसाधारणके स्नानादिकी सुविधाको ध्यानमें रखकर ही बावड़ी का निर्माण कराया गया तथा उसके चारों ओर एक बगीचा भी लगाया गया, जो बड़ा सुन्दर और विस्तृत था। बगीचेमें बालकोंके पढ़ाये जानेका भी प्रबन्ध था। पेड़ोंकी शाखाओंके नीचे एवम् सायादार झुरमुटोंमें बैठकर उस समयके बालक मा वीणापाणिकी उपासना, इस बगीचेमें आकर किया करते थे। कैसा सुन्दर दृश्य उस समय इस स्थानका होगा, अकल्पनीय है।

बगीचेके अलावा एक कुआँ भी, जो बावड़ीका कुआँ कहलाता है और ठीक बावड़ीके ऊपर ही बना है, उसी समय बना। यह कुआँ अब बावड़ीसे अलग है। *

बावड़ीका मकान बहुत विस्तृत और पेचीदा बना है। इसमें कोई आदमी छिप जाय तो मुश्किलसे उसका पता लग सकता है। कहा जाता है कि एक चोर १२ वर्ष तक इस बावड़ीमें छिप कर रहा था, लेकिन उसका कोई पता नहीं लगा सका था।

---

* कुएं की मरम्मत करवाते समय, मरम्मत करवानेवाले व्यक्ति ने कुएं को बावड़ी से अलग करवा दिया था।

कई सुरंगें भी इस बावड़ीमें बतायी जाती हैं, * जिनमेंसे एक सुरंग, फतहपुरके किलेमें जाती थी, जिसमें होकर नवाबोंकी बेगमें नहाने आती रही होंगी।

यह बावड़ी दुनियाके सतरह आश्चर्यों मेंसे एक आश्चर्यके अन्तर्गत ली गयी है। चतुर्वेदी द्वारकाप्रसादजी शर्मा द्वारा संग्रहीत "आश्चर्य सप्तदशी" नामकी पुस्तिकामें इसके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—"राजपूतानाके अन्तर्गत सीकर राज्य है। उसमें फतहपुर नामका एक गांव है। उस गांवमें भी एक सुरंग है। सुरंग बड़ी लम्बी-चौड़ी है और उसके ऊपर तालाब है। बहुत दिनों तक उस सुरंगको एक डाकूने अपने छिपनेका स्थान बना रक्खा था। बहुत ढूंढ़ने पर भी उसका पता नहीं लग सका था। डाकू रातको उसके बाहर निकलता था और लूटका माल लेकर उसके भीतर छिप रहता था। उस सुरंग में उसके साथी भी रहा करते थे। धीरे २ पुलिसको खबर मिली और वह डाकुओंका गिरोह पकड़ा गया।"

बावड़ी जैसे महत्त्वके प्राचीन स्थानका सुरक्षित रक्खा जाना आवश्यक है। ऐसे स्थान जिस राज्यमें होते हैं, उस राज्यको उनके लिए गौरव अनुभव करना चाहिए। पर यहां तो उल्टी लापरवाही उपर्युक्त बावड़ीके लिए है, यह यहां अरक्षितावस्थामें पड़ी हुई है।

---

* वर्त्तमान में ये सुरंगें बुर गयी हैं।

नवाब अलिफखाँका मकबरा

फतहपुरके ७ वें शासक नवाब अलिफखाँको संवत् १६८२ में सम्राट जहाँगीरने कांगड़ेका फौजदार बनाया था। उस समय नवाब को अधिकतर किलेकी रक्षाके लिए कांगड़ेमें ही रहना पड़ता था। बीच-बीचमें वे कभी थोड़े समयके लिए फतहपुर आजाया करते और वापिस कांगड़े लौट जाते थे।

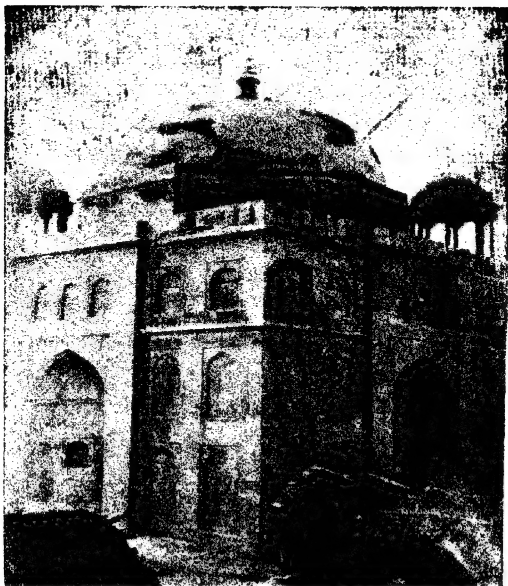
संवत् १६८३ में जब नवाब कांगड़े में ही प्रस्तुत थे, उस समय वहांके पहाड़ियोंने नवाब पर आक्रमण कर दिया। नवाबने उनका सामना किया। परस्पर भयङ्कर युद्ध छिड़ गया, जो लगातार १०-११ दिन तक होता रहा होगा। अन्तमें नवाब उसमें मारे गये। उनका शव सन्दूकमें सिया जाकर फतहपुर लाया गया।

नवाबोंके कब्रिस्तान फतहपुरमें पूर्वकी ओर थे, वहीं नवाब अलिफखाँका शव भी लाया जाकर दफनाया गया। उनकी कब्र*पर उनके लड़के नवाब दौलतखाँ (२) ने उसी साल एक सुन्दर मकबरा तैयार करवा दिया, जो आजतक विद्यमान है।

नवाब अलिफखाँका यह स्मारक (मकबरा) आज अरक्षितावस्था में पड़ा हुआ है।

---

* यह कब्र एक ही पत्थर की बनी हुई है।



नवाब अलिफखाँ का मकबरा



दिगम्बर जैन मंदिर

धर्मायतन

——::*✽::——

दिगम्बर जैन मन्दिर

जब फतहपुर संवत् १५०८ में नवाब फतहखाँ द्वारा आबाद किया गया, उस समय नवाबके प्रधान मुसाहिब सेठ तुहिनमल्लजी * भी नवाबके साथ सकुटुम्ब हिसारसे आये थे। उनके साथ दिगम्बर जैन आम्नायकी २ प्रतिमाएं थीं। † एक प्रतिमा चौबीस महाराजकी १५×६॥। इंची, सप्त धातु निर्मित मूलसंघी आचार्य पद्मनन्दिदेव द्वारा संवत् १०६६ की माघ सुदी ११ को प्रतिष्ठित और दूसरी जैनियोंके अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभुदेवकी ६×४॥ इंची, काले पाषाण की बैसाख सुदी ६ संवत् ११११३ को प्रतिष्ठित थीं। ईश्वरीदासजी भोजक इन प्रतिमाओंको साथ लेकर आये थे। इन्हीं प्रतिमाओंको लेकर दिगम्बर जैन मन्दिरका शिलान्यास, सेठजीने फाल्गुण सुदी

---

* सेठ तुहिनमल्लजी के विषय में इस पुस्तक के पाँचवें खण्ड में पढ़िए।

† सेठ तुहिनमल्लजी दिगम्बर जैन आम्नाय के अनुयायी थे; इसीसे दि० जैन आम्नाय की प्रतिमाएं उनके साथ थीं, जो ऊपर के दि० जैन मंदिर में अब तक हैं।

२ संवत् १५०८ को भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेव * के उपदेशसे किया। मन्दिर तैयार हो जाने पर उक्त प्रतिमाएं सोत्सव मन्दिरमें लायी गयीं और उनकी स्थापना वहां करदी गयी।

संवत् १७७० में चौधरी रूपचन्दजी † ने दिल्ली पट्टके अधीश भट्टारक श्री देवेन्द्रकीर्तिकी आज्ञासे उक्त मन्दिरका जीर्णोद्धार करवाया। पश्चात् संवत् १८३१ में भट्टारक श्री ललितकीर्ति ‡ फतहपुर पधारे। उस समय जैन-अजैन सभीने उनका उचित सम्मान किया था। जैनियोंका मन्दिर उस समय पृथिवीमें गड़ गया था। भट्टारकजीने उन्हें (जैनियोंको) जैन मन्दिरका जीर्णोद्धार करवाने

---

* भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेव, दिल्ली पट्ट के भट्टारक थे, जो भट्टारक श्री शुभचन्द्रजी के बाद पट्टाधीश हुए। इनके पट्ट का महात्मा महावीर से ८६ वां नम्बर पड़ता था।

ये बड़े विद्वान् थे। दो ग्रन्थ इनके बनाये हुए मिलते हैं, जिनके नाम धर्मसंग्रह श्रावकाचार (मागधी) और लघु सिद्धान्तसार हैं। एक ताम्रका बना हुआ अष्टांग सम्यग्दर्शन का यंत्र, इन्हीं के हाथ का मंदिर में है, जो संवत् १५४३ में मगसिर बदी १३ का बना हुआ है।

ये भट्टारक संवत् १५०७ से १५७१ तक दिल्ली पट्ट पर रहे।

† चौधरी रूपचन्दजी—सेठ तुहिनमलजी की आठवीं पीढ़ी में चौधरी सखमलजी के लड़के हुए।

‡ भट्टारक श्री ललितकीर्तिका परिचय इस पुस्तक के पांचवें खण्ड में पढ़िए।

की बात, अपने उपदेशमें कही। जैनियोंने उनके उपदेशसे प्रभावित होकर जैनमन्दिरकी मरम्मत करवा दी और उसीके ऊपर एक नया जैनमन्दिर भी निर्माण करवा दिया। ये दोनों मन्दिर अबतक बने हुए हैं।

ऊपरका मन्दिर बन जानेसे नीचेके मन्दिरकी सभी प्रतिमाएं उसमें लाकर स्थापित करदी गयीं और वहीं उनका पूजनाराधन होने लगा। नीचेका मन्दिर बन्द कर दिया गया।

ऊपरका यह मन्दिर नीचेके मन्दिरसे दुगुना है। पहले यह छोटा ही था, पर बादमें और जगह इसमें सम्मिलित करके इसको बड़ा बना दिया गया। यह मन्दिर संगमरमरका बना हुआ है ; देखनेमें बड़ा ही सुन्दर है। मन्दिरके अन्दर सुवर्णका काम भी है, जो बहुत ही आकर्षक है।

मन्दिरका सभा-मण्डपका तिबारा, मन्दिर देखनेवालोंके लिए, अवश्य दर्शनीय है। बड़ा सुन्दर यह बना है। इसमें का सुवर्णका काम तथा सुवर्ण पर की गयी, कुशल राज-चित्रकारोंकी चित्रकारी प्रशंसाके योग्य हैं। सुवर्णाक्षरोंमें लिखित चमकते हुए पीले-पीले श्लोक तो बहुत ही सुन्दर मालूम होते हैं। यह मन्दिर अवश्य दर्शनीय है।

× × × ×

बहुत प्राचीन होनेसे उपर्युक्त जैन मन्दिरमें एक-दो शिलालेखोंके अलावा बहुतसे प्राचीन ताम्रपत्र और यन्त्रलेख हैं, जिनसे इतिहास

और पुरातत्त्वके अन्वेषणमें अच्छी मदद मिलती है। मैंने स्वयम् "फतहपुर-परिचय" के लिखनेमें इस मन्दिरके ताम्रपत्रों और शिलालेखोंसे सहायता ली है। मन्दिरमें जैन दर्शन-सम्बन्धी साहित्यके प्राचीन-हस्तलिखित और नवीन छपे हुए ग्रन्थ भी पर्याप्त हैं।

लक्ष्मीनाथ-मन्दिर

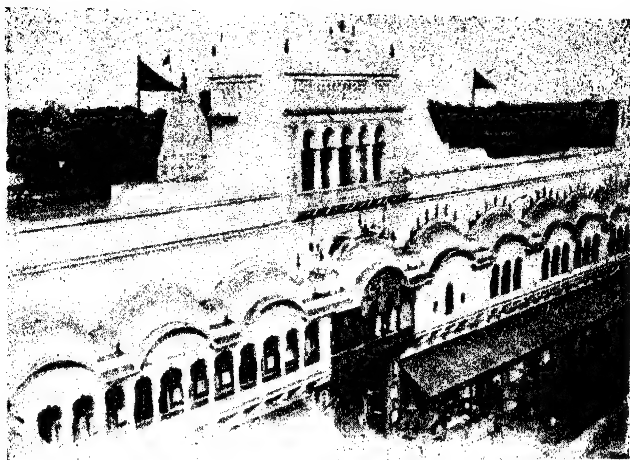
अलवरके किसी पठानको हल जोतते समय संवत् १५२६ में एक गड़ी हुई मूर्ति दिखाई दी। उसने उस मूर्तिको निकाल कर अपने पास रख लिया। यही मूर्ति संवत् १५८८ में गौरीदत्तजी भोजक * द्वारा फतहपुर लायी गयी और लक्ष्मीनाथकी मूर्तिके नामसे प्रसिद्ध करदी गयी।

मूर्ति लायी जानेके बाद उसी साल (संवत् १५८८ में) मन्दिर बननेकी तैयारी होने लगी। फतहपुरके झूरियों † ने मन्दिरके लिए अपनी खरीदी हुई जमीन देदी और पत्थर तत्सामयिक नवाब नाहर-खाँ द्वारा दिये गये। मजदूरोंकी मजदूरीके लिए पंचायती करके चिट्ठा कर लिया गया। चिट्ठेमें सबसे ऊंची कलम)॥ दो पैसेकी

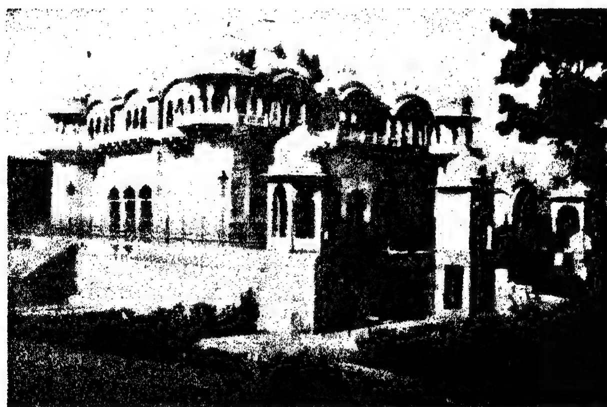
---

* गौरीदत्तजी भोजक—ईश्वरीदासजी भोजक की चौथी पीढ़ी में हुए।

† झूरिया—अग्रवाल बनियों की एक जाति।



लक्ष्मीनाथ–मंदिर



रामगोपालजी की छतरी

लिखी गयी थी, जो तत्सामयिक किसी चौधरी (अग्रवाल) सेठने लिखी थी।*

चिट्ठा हो जाने एवम् भवन-निर्माणके लिए आवश्यक तमाम सामग्री जुट जाने पर मन्दिर बनाया गया। उस समय मन्दिर छोटा ही बना था, पर बादमें संवत् १८०८ में इसको विस्तृत और विशाल बना दिया गया।

यह मन्दिर सफेद संगमरमरका बना हुआ, फतहपुरके बड़े बाजार के बीचमें बड़ा शानदार है। देखने योग्य है। मन्दिरमें सुवर्णका काम भी हुआ है। शहरके लोग (वैष्णव) दूर-दूरसे इस मन्दिरमें प्रतिदिन दर्शन करने आते हैं। इसी मन्दिरमें प्रविष्ट होनेका अधिकार पानेके लिए सतरहवीं शताब्दिमें कविवर सन्त भीखजनजीने सत्याग्रह किया था। †

---

* यह समय सम्राट हुमायूँ के राजत्व का था। पैसे की कमी और अनाज की अधिक उपज के कारण उस समय अनाज का भाव बड़ा सस्ता था। एक रुपये का दो मन (एक मन सवा तेरह सेर पक्का) अनाज आता था; इसी से उस समय मजदूरों की ऊंची से ऊंची मजदूरी सिर्फ)। एक पैसा दैनिक थी।

† भीखजनजी के सत्याग्रह के विषय में इसी पुस्तक के पाँचवें खण्ड में "कविवर संत भीखजनजी" शीर्षक निबन्ध के अन्तर्गत पढ़िए।

पीरजीकी दरगाह

ख्वाजा हाजी नजमुद्दीन चिश्ती (पीरजी) * का देहान्त संवत् १६२७ में रावराजा माधवसिंहजीके समयमें झुंझुनू में हुआ। उनका शव फतहपुर लाया जाकर दफनाया गया, जिस पर उसी साल एक सुन्दर मकबरा उनके उत्तराधिकारी पीर हाजी मुहम्मद नासिरुद्दीनने बनवा दिया तथा उस मकबरेके चारों ओर एक विशाल दरगाह भी बना दी, जो आजतक फतहपुरके दक्खिनकी ओर नवाब जलालखाँ द्वारा छोड़ी गयी बीहड़में स्थित है।

---

* ख्वाजा हाजी नजमुद्दीन चिश्ती, संवत् १८७४ में झुंझुनू में जन्मे। उनके गुरुका नाम ख्वाजा सुलेमान था। संवत् १८९० में वे फतहपुर आये और नवाब जलालखाँ की छोड़ी हुई बीहड़ में—जहां आजकल उनकी दरगाह बनी हुई है—रहे।

जब संवत् १९२७ में ख्वाजा साहब झुंझुनू गये हुए थे, वहीं उनका देहान्त हो गया। उनका शव फतहपुर लाया गया और वहीं, उनको उक्त बीहड़ में दफनाने के बाद, उन पर मकबरा तदनन्तर दरगाह बनी।

ख्वाजा साहब के बाद दरगाह में पीरोंकी एक गद्दी के बतौर हो गयी है। इस गद्दी पर अब संवत् १९८५ से पीर गुलाम सरवर बिराज रहे हैं, जो बड़े सज्जन, मिलनसार और शिक्षित हैं। मुझे, इस इतिहास के लिए बहुत-से नोटस् देकर, इन्होंने सहायता पहुंचायी है, जिसके लिए मैं इनका आभार मानता हूं।

यह दरगाह बहुत सुन्दर एवम् विस्तृताकार बनी हुई है। देखने में एक आलीशान गढ़ (किले) से कुछ कम शानदार नहीं है। राव-राजा माधवसिंहजीने इस दरगाहके बनानेके लिए जमीन दी थी; साथमें एक प्राचीन नवाबी जमानेका बना हुआ कुआँ * तथा उसकी बाड़ीके लिए ११ बीघा जमीन भी दी।

प्रतिवर्ष इस दरगाहमें उर्सका बड़ा भारी मेला लगता है, उस समय जगह-जगहके लोग (मुसलमान) जियारत (तीर्थ-यात्रा) करने यहां आया करते हैं। उन दिनों गायन-वाद्य-विशारदोंका एक अच्छा जमघट यहां हो जाता है, जो संगीतज्ञोंके लिए एक अच्छा सुयोग है।

रावराजा माधवसिंहजीने इस दरगाहके लिए ६१ बीघा जमीन गांग्यासरकी अर्पण की थी, जो दरगाहके अधीन है।

---

* यह कुआं पीर हाजी मुहम्मद नासिरुद्दीन ने चंदा करके मरम्मत करवाया।

रामगोपालजी गनेड़ीवालाकी छतरी

श्री० रामगोपालजी गनेड़ीवाला * ने संवत् १९४३ में अपने पिता हीरालालजीके मरने पर एक सुन्दर संगमरमरकी छतरीका निर्माण, शहरके दक्षिणकी ओर पासही, नवाब जलालखाँकी बीहड़में करवाया। यह छतरी बदरीनारायण † के अर्पण की गयी, इससे बदरीनारायणका मन्दिर इसमें बनवा दिया गया, जो बहुत ही आकर्षक बना है। इस मन्दिरमें सुवर्णका काम देखने योग्य है।

संवत् १९४३ में कार्तिक सुदी १ को इस छतरीके बनानेका काम प्रारम्भ हुआ था, जो कई वर्षोंमें समाप्त हुआ होगा; क्योंकि इतनी सुन्दर और कीमती इमारतका थोड़े समयमें बनाया जाना असम्भव-सा है।

यह छतरी करीब २ लाख रुपयेकी लागतसे बनी है। इसका सफेद संगमरमरका बड़ा सुन्दर मकान बना हुआ है, जो दर्शनीय है। मकानके चारों ओर खूब लम्बे-चौड़े दायरेमें एक बगीचा लगा है, जो चहारदीवारीसे घिरा हुआ है। इस बगीचेके चार दरवाजे हैं। दो दरवाजे पूर्वकी ओर हैं तथा एक पश्चिम और एक उत्तर की ओर हैं। पूर्वकी ओरका ऊंचा दरवाजा, जिसमें दो बगलियाँ भी बनी हुई हैं, इस बगीचेका मुख्य द्वार है। इस दरवाजे पर

---

* गनेड़ीवाला—अग्रवालों की एक जाति।

† बदरीनारायण—पौराणिक हिन्दुओंका एक देवता।

हर महीने नौबत बजती रहती है। एक घड़ी भी इसी दरवाजेमें लगी है, जिसका समय शहर भरमें प्रामाणिक माना जाता है। इसी घड़ीके समयको देखकर प्रतिघंटे घड़ियाल बजायी जाती है, जो सारे शहरमें सुनायी देती है। शहरके लोग—जिनके पास घड़ी नहीं हैं—आसानीसे समयका ज्ञान, घड़ियालकी आवाज सुनकर कर लेते हैं। समय-सूचक यह घड़ियालकी ध्वनि, उन्हें अपने पास की घड़ीकी कभी नहीं अनुभव होने देती।

इस बगीचेका प्रबन्ध एक मुनीम करता है, जो छतरीका मुनीम कहलाता है। छतरीकी सम्पत्तिका एक ट्रस्ट बना हुआ है, जो संवत् १९६३ में बना था। प्रतिवर्ष बदरीनारायणके भोग, उत्सव और नौकरादिकोंकी तनख्वाहके ५६००) पांच हजार छै सौ रुपये यहां खर्च होते हैं।

रावराजा माधवसिंहजीने भी इस छतरीके निमित्त संवत् १९५८ में ५०० बीघा बाढ़ प्रदान किया था, जो छतरीके अधीन है।

———

संस्थाएं

—::**::—

सरस्वती पुस्तकालय *

बाबू बासुदेवजी गोयनका † ने अपने वृहत् पुस्तक-भण्डारसे संवत् १९६७ में फतहपुर में एक पब्लिक लाइब्रेरीकी स्थापना की और सरस्वती पुस्तकालय उसका नाम रक्खा। यह पुस्तकालय आज उन्नत दशाको प्राप्त होकर सर्वसाधारणकी सेवा करता हुआ अवस्थित है।

संवत् १९६१में गोयनकाजीके विचार-गर्भमें, किसी मासिक पत्र के एक लेखको—जो पुस्तकालयोंकी आवश्यकताके सम्बन्धमें था—पढ़कर उपर्युक्त पब्लिक लाइब्रेरीकी स्थापनाकी बात आयी। उन्होंने शीघ्रही कतिपय शिक्षा-प्रेमी सज्जनों से इस सम्बन्धमें परामर्श किया, लेकिन उनको सफलता न मिली। उनका विचार-

---

* उपर्युक्त "सरस्वती पुस्तकालय" के अलावा ३ और पुस्तकालय, "दि० जैन वीर पुस्तकालय", "साहित्य-सदन पुस्तकालय" और "आजाद-भवन पुस्तकालय" नामों से फतहपुर में हालही में खुले हैं।

† बाबू बासुदेवजी गोयनका के सम्बन्ध में इस पुस्तक के पाँचवें खण्डमें देखिए।



सरस्वती पुस्तकालय

गर्भ इस तरह शिक्षा-प्रेमियोंकी सहमतिके बिना परिपक्व न होने पाया, जिससे वे उस समय कोई फल-प्रसव भी नहीं कर सके।

गोयनकाजीके उत्साहमें कोई कमी न हुई। वे पुस्तकालयकी आवश्यकताको कब भूल सकते थे? उन्होंने तत्सम्बन्धी अपनी चेष्टा जारी रक्खी और अपने विचार-गर्भको पुष्ट होनेका अवसर प्रदान किया। स्वयम् वे सरस्वती पुस्तकालयकी अपनी बनायी हुई एकादशवर्षीय रिपोर्टमें अपने पुस्तकालय-स्थापनके उत्साहके सम्बन्धमें "पुस्तकालयकी कल्पना" शीर्षकके अन्तर्गत लिखते हैं कि "मैंने अपने विचार कई सज्जनोंके सामने रखकर उनका सहयोग चाहा, किन्तु किसी ओर से कुछभी उत्तेजना तथा उत्साह न मिला और न इस विचारको कार्य रूपमें परिणत करनेका शुभ अवसर ही हाथ आया। पर मुझे पूर्ण विश्वास था कि जो कार्य परोपकार की दृष्टिसे सच्चे दिलसे उठाया जाता है उसमें कभी न कभी सफलता अवश्य मिलती है। अस्तु, मैं भग्नोत्साह नहीं हुआ।"

रिपोर्टके उपर्युक्त उद्धरणसे गोयनकाजीके उत्साहका अनुमान लगाया जा सकता है। गोयनकाजी, अपनी लगनके पक्के और उत्साही सज्जन हैं; यह बात उनकी जीवनीसे भी, जो इसी पुस्तक के पाँचवें खण्डमें लिखी गयी है, साफ प्रगट होती है।

सरस्वती पुस्तकालयकी स्थापनाके कुछ समय पहले, फतहपुरमें संस्थापित राजपूताना अनाथालय और लक्ष्मीनाथ विद्यालय * की

* राजपूताना अनाथालय और लक्ष्मीनाथ विद्यालय के सम्बन्ध में इसी खण्ड में आगे पढ़ने को मिलेगा।

सम्मिलित प्रबन्धकारिणी समिति (कलकत्ता) के सदस्य गोयनका-जी भी चुने गये। सदस्य चुने जानेसे उन्हें श्री० कृष्णदयालजी जालानसे घनिष्टता स्थापित करनेका एक अच्छा अवसर मिल गया। एक दिन बातचीतके सिलसिलेमें उन्होंने फतहपुरमें पुस्तकालयकी आवश्यकताके विषयमें जालानजीसे कहा। जालानजीने उनकी बातका हृदयसे समर्थन किया। फिर क्या था गोयनकाजीका उत्साह दुगुना हो गया। गोयनकाजीके पास पुस्तकालय-स्थापनार्थ बहुतसी पुस्तकें संग्रह थीं, उनके अलावा और २ पुस्तकें भी उन्होंने संग्रह कीं। पश्चात् वे कुछ समय बाद फतहपुर आये और अपनी पुस्तकें जालानजीके यहां छोड़ आये।

फतहपुर आकर गोयनकाजी ने पुस्तकालय खोलनेके सम्बन्धमें कई सज्जनोंसे सलाह की, जिन्होंने उन्हें इस काममें सहायता देनेका वचन दिया। खासकर श्री० श्रीनिवासजी सरावगी से—जो एक सम्पन्न व्यक्ति थे—पुस्तकालय-स्थापन के लिए हर प्रकारकी सहायताका आश्वासन मिला। जिसपर गोयनकाजी ने जालानजी को अपनी संग्रहीत पुस्तकें भेज देनेकी बात, कलकत्ता लिख भेजी। कलकत्तासे जालानजीकी खरीदी हुई कुछ और पुस्तकोंके साथ उक्त संग्रहीत पुस्तकें फतहपुर आ गयीं।

पुस्तकें आ जानेपर संवत् १९६७ की वैसाख शुक्ला ६ को गोयनकाजी ने फतहपुरमें सरस्वती पुस्तकालयको जन्म दिया। श्री० पूर्णमल्लजी सिंघानियाकी दूकान पर का चौबारा पुस्तकालयके

लिए किरायेपर लिखाया गया और एक ब्राह्मणको वैतनिक पुस्तकाध्यक्ष नियुक्त किया गया।

यह पुस्तकालय करीब एक साल तक उपर्युक्त स्थानमें रहा होगा, पश्चात् लक्ष्मीनाथके मन्दिरकी एक दूकानमें यह लाया गया, जहां इसकी कुछ उन्नति भी हुई। पुस्तकाध्यक्ष भी एक दूसरे सुयोग्य व्यक्ति बनाये गये। उन्हीं दिनों पहले-पहल पुस्तकालयके ८-१० सदस्य बने और पुस्तकोंकी संख्या-वृद्धि हुई। पुस्तकालय के व्यवस्थापक गोयनकाजीकी ओर से नियुक्त, उस समय फतहपुरस्थ व्यवस्थापक पं० रामनरेशजी त्रिपाठी * रहे हैं, जिन्होंने पुस्तकालयको उन्नत बनानेमें बड़ी मदद पहुंचायी थी।

दिन पर दिन पुस्तकालय उन्नति करता गया। पुस्तकोंका संग्रह बढ़ता गया। इससे एक सुविस्तृत स्थान की आवश्यकता पुस्तकालयके लिए प्रतीत हुई; तब पुस्तकालय, लक्ष्मीनाथके मन्दिर के नये विभागके ऊपरवाले हालमें लाया गया, जहां कार्तिक शुक्ला ४ संवत् १९९३ तक यह अवस्थित रहा।

कार्तिक सुदी ५ के रोज यह पुस्तकालय अपने नव-निर्मित

* पं० रामनरेशजी त्रिपाठी—लक्ष्मीनाथ विद्यालय के तत्कालीन एक अध्यापक। वर्त्तमान में इनकी गिनती हिन्दी के सुकवियों में है। ये अब सुल्तानपुर (यू० पी०) में रहते हैं।

स्वकीय विशाल भवनमें लाया गया, * जहां यह समुचित रूप-से जनताको लाभान्वित करता हुआ शोभायमान है।

इस पुस्तकालयमें अबतक करीब १३००० तेरह सहस्र पुस्तकों का संग्रह हो चुका है। अङ्गरेजी, हिन्दी, संस्कृत और उर्दू सभी भाषाओंकी पुस्तकें इसमें हैं; अधिकांश पुस्तकें हिन्दी और संस्कृत की हैं। अप्राप्य पुस्तकेंभी पर्याप्त हैं, जिन्हें बाबू बजरङ्गलालजी लोहियाने अपने सतत् परिश्रमसे समय-समय पर एकत्रित करके पुस्तकालयकी सम्पत्ति-वृद्धि की है। इन अप्राप्य पुस्तकोंको देखकर इस पुस्तकालयको कोई रत्नागार कह दें तो अत्युक्ति नहीं हो सकती। यह पुस्तकालय स्कालरोंके लिए रेफरेन्स-लाइब्रेरीका काम दे सकता है।

---

* यह विशाल भवन फतहपुरके किले के पास किले की खाई के किनारे बना हुआ है। श्री० नागरमलजी गोयनका की माताने इसे करीब १८०००) रुपये लगाकर तैयार करवाया। इसके लिए सीकर-राज्यने स्वल्प मूल्य लेकर जमीन प्रदान की तथा अपनी २ दूकानों को जमीन श्री० मटरूमलजी खेमका ने दी।

संवत् १९९२ में यह भवन, श्री० भीमराजजी दूगड़ की देखरेख में, बनकर तैयार हुआ, जिसमें संवत १९९३ की उपर्युक्त शुभ तिथि के दिन पुस्तकालय लाया गया। बड़ा ही सुन्दर, दर्शनीय भवन यह बना है।

अपने जन्मके समयसे संवत् १६८० तक गोयनकाजीके व्यवस्थापकत्वमें यह पुस्तकालय अपना कार्य सुचारु रूपसे करता रहा। अपनी अनुपस्थितिमें वे (गोयनकाजी) फतहपुरस्थ किसी व्यक्ति को अपनी ओर से इसकी व्यवस्थाके लिए नियुक्त कर देते, जो इसका प्रबन्ध करता रहता। उनके व्यवस्थापक पदसे पृथक् हो जानेके समयसे शेखावाटी शिक्षा-मण्डलके हाथमें इसका प्रबन्ध-कार्य गया, जो ठीक २ रहा। इसके बादसे अबतकका इसका प्रबन्ध, जन साधारण—विशेषकर शिक्षितवर्ग—की दृष्टिसे उत्तम नहीं कहा जासकता ; अतः वर्त्तमान प्रबन्धमें सुधार वांछनीय है, क्योंकि समुचित प्रबन्ध ही किसी संस्थाको समुन्नत और सार्थक बनानेमें समर्थ हो सकता है।

पुस्तकालयकी वर्त्तमान नियमावली भी सम्यक् नहीं है। पुस्तकालयकी उपयोगिता बढ़ानेकी दृष्टिसे ऐसी नियमावलीका निर्माण होना आवश्यक है, जिससे गरीब और अमीर दोनों ही पुस्तकालय से समानरूप से लाभ उठा सकें और दोनों ही पुस्तकालयके कार्यों में सहयोग देकर इसकी अभिवृद्धि कर सकें ; तब यह पुस्तकालय बहुत अधिक उन्नति कर सकता है।

इस पुस्तकालयके साथ वाचनालय भी है, जिसमें हिन्दी और अङ्गरेजीके खास २ सभी पत्र-पत्रिकाएं आती हैं। करीब ६५ पत्र (दैनिक, साप्ताहिक और मासिक) इस समय आते हैं। जन-साधारणमें इस समय पुस्तकालय के प्रति रुचि दिन पर दिन बढ़ती जाती है। दैनिक उपस्थिति इस समय १०० के करीब होती है।

यह पुस्तकालय वर्त्तमानमें पं० वसंतकुमारजी शर्मा * की अध्यक्षता में अच्छी प्रकार चल रहा है। इसे वर्त्तमान समुन्नत स्थितिमें पहुंचानेका श्रेय गोयनकाजी और लोहियाजी † के अतिरिक्त पं० रामनरेशजी त्रिपाठी, श्री० केशवदेवजी नेवटिया, श्री० रामकुमारजी नेवटिया, श्री० मटरूमलजी खेमका, डा० रामजीवनजी त्रिपाठी, श्री० देवीदत्तजी धाभाई, श्री० भीमराजजी दूगड़ को भी प्राप्त है। फतहपुरकी सुशिक्षित जनता इनके इस महत् कार्यके लिए इनकी चिर ऋणी रहेगी।

आशा है, भविष्यमें फतहपुरके ही नहीं बल्कि सारे शेखावाटीके लोग, इस सुन्दर पुस्तकालयको हर प्रकार से सहायता प्रदान करते हुए इसके कार्य-संचालनमें हाथ बंटाते रहेंगे।

---

* पं० वसन्तकुमारजी शर्मा, करीब २० वर्षसे योग्यतापूर्वक इस पुस्तकालयमें पुस्तकाध्यक्षका काम कर रहे हैं ; बड़े सज्जन और कार्य-पटु हैं। इनका कार्य पूर्ण संतोषप्रद है।

† बाबू बजरंगलालजी लोहिया, फतहपुरके रहनेवाले एक पुस्तकालय-प्रेमी सज्जन हैं ; वर्त्तमानमें कलकत्तामें रह रहे हैं। इनके द्वारा आजतक उक्त सरस्वती पुस्तकालयको समय-समय पर अच्छी सहायता प्राप्त होती आरही है, जिससे यह वर्त्तमान उन्नत अवस्था प्राप्त कर सका है। इनके सम्बन्धकी पूरी जानकारीके लिए इसी पुस्तकके पांचवें खण्डमें पढ़िए।

लक्ष्मीनाथ विद्यालय

लक्ष्मीनाथ विद्यालयकी स्थापना, फतहपुरके पंच-महाजनोंने शुभ मिती पौष कृष्णा १२ संवत् १९६४ को की। प्रारम्भमें यह विद्यालय रामकृष्णदासजी सरावगीकी धर्मशालामें खोला गया, जहां करीब २ वर्ष तक यह रहा होगा। पश्चात् फतहपुरके बड़े बाजारके समीप पब्लिकके चन्देसे बना हुआ शफाखानेका मकान, संवत् १९६६ में रावराजा माधवसिंहजी द्वारा इसके लिए दे दिया गया।

मकानकी प्राप्तिके अनन्तर उक्त विद्यालय, मकानमें लाया गया ; जहां अबतक यह जनतामें शिक्षा प्रचार करता हुआ मौजूद है।

यह विद्यालय फतहपुरमें उस समय खोला गया था, जब यहां शिक्षाका अभाव-सा ही था। इससे पहले आर्यपाठशाला, हुकुमीचंदजी चौधरीकी पाठशाला और मास्टर श्यामलालजीकी प्राइवेट पाठशाला आदि २ कतिपय शिक्षण-संस्थाएं खुलीं और थोड़े-थोड़े समय तक रहकर बंद हो गयीं। इन पाठशालाओंसे पहले यहां कोई पाठशाला न थी, सिर्फ गुरुओंकी चटशालाएं थीं, जिनमें यहांके नौनिहाल बच्चोंकी शिक्षा, पट्टी-पहाड़ा और मारवाड़ी अक्षरोंकी जानकारी तक ही सीमित रहती थी। लक्ष्मीनाथ विद्यालयके खुल जानसे यह सीमा टूट गयी और शिक्षाक्रमका विकास हुआ।

प्रारम्भमें इस विद्यालयमें संस्कृत शास्त्री और अङ्गरेजी मिडिल तक की पढ़ाईका प्रबन्ध हुआ, जो क्रमशः संवत् १९७३ और १९७५

तक रहा। तत्पश्चात् कई वर्षों तक ६ कक्षा तक पढ़ाई होती रही, वह भी धनाभावके कारणसे बादमें ५ वीं कक्षा तक करदी गयी। संवत् १९९० में विद्यालयकी प्रबन्धकारिणी समिति ने फिर ६ क्लास तक की पढ़ाईका इन्तिजाम किया, जो आज तक चला आता है।

विद्यालयका प्रबन्ध, कलकत्ता स्थित, विद्यालयकी प्रबन्धकारिणी समितिकी ओर से नियुक्त स्थानीय व्यवस्थापककी देखरेखमें, विद्यालयके प्रधानाध्यापक द्वारा किया जाता है।

इस विद्यालयमें २ पुस्तकालय हैं ; एक पुस्तकालय अध्यापकोंके लिए और दूसरा छात्रोंके लिए है। जिनमें ५६४ और ५५२ पुस्तकें क्रमशः हैं।

जयपुर शिक्षा विभागके पाठ्यक्रमके अनुसार ६ कक्षाकी पढ़ाईके अलावा गोरखपुरकी रामायणादिकी परीक्षाओंकी तैयारी भी इस विद्यालयमें करवायी जाती है और हरसाल यहांके लड़के इन परीक्षाओंमें बैठते भी हैं। लड़कोंके लिए खेलका भी प्रबन्ध है।

इस विद्यालयका संचालन इसके स्थायी कोष (२५००० रुपये) के व्याज तथा ऊपरकी (विवाह-शादी एवम् लागकी) प्रतिवर्षकी आमदनीसे होता रहता है। संवत् १९८८ से, सीकर-रियासतसे भी ३०) रुपया मासिक, सहायता-स्वरूप इस विद्यालयको प्राप्त हो रहे हैं।

वर्त्तमानमें यह विद्यालय मास्टर रुद्रदत्तजी शर्माके प्रधानाध्यापकत्वमें अच्छी तरह चल रहा है।

गुरुमुखराय जैन स्कूल

सेठ गुरुमुखरायजीके स्वर्गस्थ हो जानेके बाद उनके सुपुत्र सेठ सुखानन्दजीने उनकी यादगारीमें एक पाठशाला बनवायी, जिसका मकान शहर (फतहपुर) के बीचमें बावड़ी दरवाजेके समीप ही उसके उत्तर-पश्चिममें स्थित कायस्थोंके कुएं के पास बना हुआ है। संवत् १९६५ की बैसाख सुदी ७ के रोज इस पाठशालाकी स्थापना हुई थी। यही पाठशाला "गुरुमुखराय जैन स्कूल" के नाम से प्रसिद्ध है।

पाठशालाके स्थापित हो जानेके बाद, इसके परिचालनके लिए एक अलग स्थायी सम्पत्ति, सेठ सुखानन्दजी ने निकालनी चाही; उन्होंने इस सम्बन्धमें अपनी मा तथा छोटे भाई (निहालचन्दजी) से परामर्श किया। तत् पश्चात् एक मकान बम्बईमें पाठशालाके निमित्त निकाल दिया गया, जिसका एक ट्रस्ट बना दिया गया। इसी मकानके किरायेकी आमदनीसे पाठशाला अबतक सुचारु रूपसे चलती आरही है।

इस पाठशालामें जयपुर शिक्षा विभागके पाठ्यक्रमके अनुसार ६ कक्षा तककी पढ़ाई होती है। जैनियोंके लड़कोंके लिए जैनधर्म पढ़ानेकी विशेष व्यवस्था है। मास्टर लक्ष्मीचन्दजी गुप्त इसके प्रधानाध्यापक हैं, जिनकी अध्यापन-कार्य-कुशलता और देखरेखमें पाठशाला अच्छी तरह चल रही है।

नेवटिया कन्या पाठशाला *

नेवटिया कन्या पाठशालाकी स्थापना फतहपुरमें संवत् १९७२ में हुई। इससे पहले बालिकाओंकी शिक्षाका कोई साधन यहां नहीं था। क्यों होता! जब बालिकाओंका पढ़ाना-लिखाना यहां पाप में शुमार होता था। पश्चात् समयके परिवर्त्तनके साथ २ स्थानीय लोगोंके मनमें भी आशातीत परिवर्त्तन हुआ, जिसके फलस्वरूप यहांके नेवटियोंने उपर्युक्त पाठशालाकी स्थापना की।

इस पाठशालामें लड़कियोंको पढ़ना-लिखना एवम् कपड़े बुनना सिखाया जाता है। यहां से पढ़कर निकली हुई लड़कियाँ साधारणतया साक्षर और व्यवहार-कुशल हो जाती हैं।

वर्त्तमानमें इस पाठशालाका संचालन, दो-तीन व्यक्तियोंसे प्राप्त सहायता द्वारा होता है, नेवटिया-परिवार द्वारा नहीं। प्रबन्ध, इसका असंतोषप्रद है। इस प्रकार धन और व्यवस्थाके अभावमें यह संस्था अपना अस्तित्व अधिक समय तक नहीं रख सकेगी। नेवटिया-परिवारको इस ओर ध्यान देना चाहिए तथा इस संस्थाको अनन्त काल-स्थायी बनानेका कोई उपाय ढूँढ निकालना चाहिए।

---

* उपर्युक्त नेवटिया कन्या-पाठशालाके अलावा एक कन्या-पाठशाला अभी कुछ दिन पहले बोहितरामजी केडियाकी ओर से और खोली गयी है।

शेखावाटी संस्कृत विद्यालय

शेखावाटीमें, संस्कृत शिक्षाके प्रचारार्थ—राय बहादुर रामप्रताप-जी चमड़ियाने फतहपुरमें मार्गशीर्ष कृष्णा १० संवत् १९७९ को, "शेखावाटी संस्कृत विद्यालय"की स्थापना की थी। प्रारम्भमें इसको महाविद्यालय (कालेज) का रूप दिया गया, उस समय संस्कृतके नामी नामी पण्डित यहां पढ़ाते रहे हैं, जिनके नामोल्लेखकी, मैं समझता हूं, यहां कोई आवश्यकता नहीं है।

महाविद्यालयके रूपमें करीब १२-१३ वर्ष तक यह रहा होगा। पश्चात् इसका खर्च घटाया गया और महाविद्यालयसे विद्यालय बना दिया गया, तबसे यह उसी रूपमें चलता आरहा है।

जब यह महाविद्यालय था, इसमें गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज (बनारस) की प्रथमा और मध्यमाके परीक्षा-केन्द्र भी करीब १० वर्ष तक रह चुके हैं ; लेकिन अब नहीं हैं।

वर्त्तमानमें प्रथमा, मध्यमा और शास्त्री कक्षाके छात्र इस विद्यालयमें शिक्षा पारहे हैं। प्रबन्ध, गोरखराम रामप्रताप ट्रस्ट (कलकत्ता) के आधीन फतहपुरस्थ प्रबन्धकारिणी कमेटी द्वारा होता है।

पं० नागेन्द्रजी शास्त्री* पिछले दिनों इसके प्रधानाध्यक्ष (प्रिंसीपल) रहे हैं, जो बड़ी योग्यतापूर्वक अध्यापन-कार्य करते हुए इसे उन्नत

---

* पं० नागेन्द्रजी शास्त्रीके विषयमें यहां कुछ विस्तारसे लिखना आवश्यक हो जाता है। ये शेखावाटी संस्कृत विद्यालयके प्रिंसीपल दो बार रह चुके हैं और दरभंगा जिलेके रहनेवाले मैथिल ब्राह्मण हैं। इनके पिताका नाम पं० योगधरजी मिश्र था, जो काशीमें अपने समयके एक सुप्रतिष्ठित विद्वान् गिने जाते रहे हैं। उन्हींकी सुलक्षिणी गृहलक्ष्मीके उदरसे पं० नागेन्द्रजीका जन्म संवत् १९४९ में हुआ था।

पं० नागेन्द्रजी जब ७ वर्षके ही हो पाये थे तो इनके पिताने इनको अमरकोषके शब्दों पर ही अक्षर ज्ञान कराया। अक्षर ज्ञान हो जानेके उपरांत उन्होंने इनको अमरकोषके तीनों खण्ड अच्छी तरहसे याद करवा दिये। पंडितजी तीव्र बुद्धि तो थे ही, इससे एक वर्षके अल्पकालमें ही इन्होंने सम्पूर्ण अमरकोष समाप्त कर डाली। तदनन्तर इनका व्याकरणका अध्ययन प्रारम्भ हुआ। १६ वर्षकी अवस्था प्राप्त होने तक वह भी पूरा होगया।

व्याकरण खतम हो जानेके बाद पण्डितजीको, उनके पिताने महाराजा दरभंगाके "रामेश्वरलता संस्कृत विद्यालय" में पठनार्थ भेजा। पंडितजीने वहां से साहित्य, व्याकरण, सांख्य, न्याय और धर्मशास्त्रकी मध्यमा परीक्षा अच्छे नम्बरोंमें पास की। तदनन्तर "गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज," मुजफ्फरपुरमें ये भेजे गये, जहांसे अनेक वर्षोंके कठिन परिश्रमके बाद इन्होंने ससम्मान साहित्य-व्याकरणाचार्यकी उपाधि प्राप्त की। साहित्याचार्यमें ये यूनिवर्सिटी भरमें (संवत् १९६४ में) सर्वप्रथम हुए, जिससे इनको उस समय गवर्नमेण्टसे १००) रुपया पुरस्कार-स्वरूप भी प्राप्त हुआ था।

बना सके। आजकल भी इसका कार्य संतोषप्रद ढङ्गसे चल रहा है।

मुजफ्फरपुरसे पण्डितजी अपना अध्ययन समाप्त करके काशी आगये, जहां विविध दर्शनोंका अध्ययन इन्होंने कई विद्वानोंसे किया। काशीके तत्सामयिक प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित तात्या शास्त्रीसे भी ये वहां पढ़े।

संवत् १९६८ में "बेली संस्कृत पाठशाला," रायबरेलीमें पण्डितजी प्रधानाध्यापकके पदपर नियुक्त किये गये। तत्पश्चात् धौलपुर-राज्यके संस्कृत विद्यालय, स्याद्वाद विद्यालय (काशी) प्रभृति कई स्थानों पर इन्होंने योग्यता के साथ अध्यापन-कार्य किया। बादमें ये उक्त "शेखावाटी संस्कृत विद्यालय", फतहपुरमें प्रिंसीपल होकर आये। निरन्तर ६ वर्षके अध्यापन-कार्यके बाद ये यहांसे—वेतन कम किये जानेकी वजहसे—इस्तीफा देकर चले गये। पुनः संवत् १९९४ में ये उक्त विद्यालयकी प्रबन्धकारिणी कमेटी द्वारा विद्यालयमें काम करनेके लिए फतहपुर बुलाये गये और कुछ वर्ष काम करनेके बाद पुनः वेतनकी कमीके कारण इस्तीफा देकर विद्यालयसे अलग हुए।

पंडितजी बड़े ही योग्य, मिलनसार, मिष्टभाषी और अत्यन्त सरल प्रकृतिस्थ हैं। इनको जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इतने बड़े विद्वान् होने पर भी इनका अभिमानसे तो, मालूम होता है, परिचय भी न होने पाया है, यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है; जब कि "रामचरित मानस" जैसे विश्वमान्य ग्रन्थमें भी "प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं" कहा है।

चमड़िया हाई स्कूल *

"शेखावाटी संस्कृत विद्यालय"के संस्थापक उपर्युक्त राय बहादुर चमड़ियाजीने ही "चमड़िया स्कूल"की स्थापना संवत् १६८५में की। उन्होंने इसे मिडिल स्कूलके रूप में खोला, जिसमें पिछले दिनोंतक जयपुर शिक्षा विभागके पाठ्यक्रमके अनुसार मिडिल (८ कक्षा) तक की पढ़ाई होती रही है, अब श्रावण कृष्णा ७ संवत् १६६८ से यह हाई स्कूल बन गया है। † इसके अलावा यहां गोरखपुरकी गीता-रामायणादिकी परीक्षाओंके लिए भी लड़के प्रतिवर्ष तैयार किये जाते हैं।

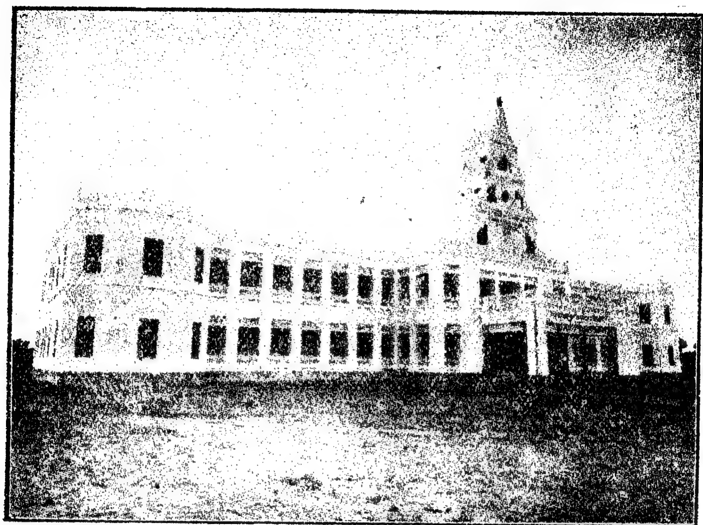
स्कूलके गरीब छात्रोंको मदद पहुंचानेके लिए एक पुअर फण्ड (Poor fund) स्थापित है, जिससे अबतक कुछ छात्रोंको छात्र-वृत्तिके रूपमें आर्थिक सहायता दी जा चुकी है।

उपर्युक्त गोरखराम रामप्रताप ट्रस्ट (कलकत्ता) के अधीन फतहपुर की प्रबन्धकारिणी कमेटीकी देखरेख में, यह स्कूल भी सुचारु रूपसे चलता आरहा है।

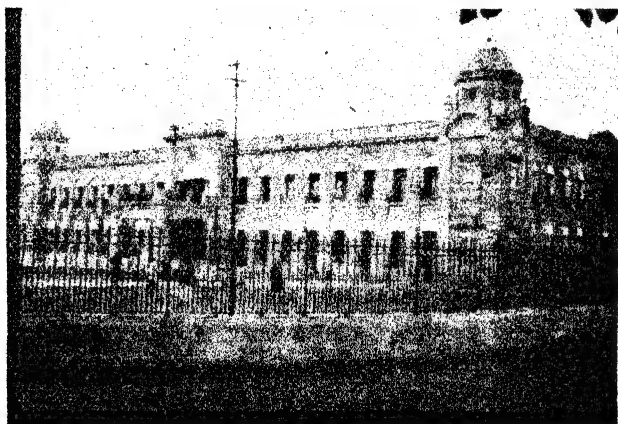
---

* उपर्युक्त चमड़िया हाई स्कूल तथा अन्यान्य स्कूलोंके अतिरिक्त एक और स्कूल "ठिकाना मिडिल स्कूल" के नामसे अभी कुछ दिन पहले, सीकर ठिकाने की तरफसे खोला गया है।

† हाई स्कूलके लिए गोरखराम रामप्रताप ट्रस्ट (कलकत्ता) की इजाजत से स्थानीय प्रबन्धकारिणी कमेटीने एक विशाल भवन बनवा दिया है, जो चमड़ियाजीकी ही कोठीके सामने है। इस भवनमें लाइब्रेरी रूम बहुत सुन्दर है। समूची गीताके श्लोक संगमरमरके पत्थरों पर लिखे हुए रूमकी दीवारों पर सुशोभित हैं और रूमको आकर्षक बनाते हैं। केवल इस रूमके बनवाने में लगभग २५०००) रुपये व्यय हुए बताये जाते हैं।



चमड़िया हाई स्कूल



इस्लामिया मदर्सा

हाजी वजीर धोबीने सन् १३३७ हिजरी (संवत् १९७७) में "इस्लामिया मदर्सा" का मकान बनवाना प्रारम्भ किया था, जिसके तैयार हो जाने पर एक मुसलमान अध्यापक बुलाया गया और मदर्सा खोल दिया गया। कुछ समय पश्चात् समयके परिवर्त्तनके साथ, हाजीजीकी आर्थिक स्थितिने भी पलटा खाया, वह पहले जैसी न रही ; इस कारण हाजीजीकी ओर से मदर्सेका खर्चा पहलेसे कम कर दिया गया।

उस समयसे अबतक १५) पन्द्रह रुपये माहबारका केवल एक अध्यापक इस मदर्सेमें अध्यापन-कार्य कर रहा है। शिक्षा, व्यावहारिक हिसाब और मजहबी किताबोंकी दी जाती है। इसके अतिरिक्त हिन्दी, उर्दू और अरबी भाषाएं भी पढ़ाई जाती हैं। उर्दूमें चौथी कक्षा तककी पढ़ाई यहां होती है और अरबीमें कुरान-शरीफ * पूरा करा दिया जाता है।

इस समय इस मदर्सेके संचालनके लिए सीकर-राज्यसे ५) पांच रुपये मासिक सहायता स्वरूप प्राप्त होते हैं, बाकी रुपये हाजीजी अपने पाससे खर्च करते हुए इस मदर्सेका किसी तरह संचालन कर रहे हैं।

---

* कुरान शरीफ—मुसलमानोंका प्रसिद्ध और मान्य धार्मिक ग्रन्थ।

श्रीकृष्ण पाठशाला *

"श्रीकृष्ण पाठशाला" फतहपुरमें दक्षिणकी ओर शहरसे बाहर सालासरके रास्तेमें विद्यमान है। इसकी स्थापना चैत्र शुक्ला ११ संवत् १९८९ को हरिजनोंको साक्षर बनानेके प्रयोजनसे श्री० भीमराजजी दूगड़ने की थी। सीकर राज्यने इसके लिए कच्चे पट्टे की एक जमीन दी, जिसपर कुछ परोपकारी सज्जनों द्वारा पाठशालाका एक कच्चा मकान बनवा दिया गया। पाठशाला वर्त्तमानमें इसी मकानमें स्थित है।

इस पाठशालामें माली, जाट, खाती, खटीक, नायक, मोची, चमार और मुसलमान छात्र शिक्षा पा रहे हैं। पढ़ाई "लोअर-प्राइमरी" तक की होती है। थोड़ा २ व्यावहारिक ज्ञान भी लड़कों को करा दिया जाता है।

इस पाठशालाका संचालन पंचायतीके चन्दे से होता है। वर्त्तमानमें मास्टर रावतसिंहजीके प्रधानाध्यापकत्वमें यह सुचारु रूपसे चल रही है।

---

* उपर्युक्त "श्रीकृष्ण पाठशाला तथा अन्यान्य पाठशालाओंके अलावा खातियोंकी एक पाठशाला "जाँगिड़ ब्राह्मण पाठशाला" के नामसे, अभी हाल ही में, फतहपुरके दौलताबाद मुहल्लेमें और खोली गयी है।

राजपूताना अनाथालय

"राजपूताना-अनाथालय"की स्थापना श्री० कृष्णदयालजी जालान के उद्योग से संवत् १९६३ की माघ कृष्णा ३ के रोज हुई। प्रारम्भ में यह शीतला देवीके मन्दिर * में खुला। हरचन्दरायजी चोटिया इसके मैनेजर पद पर नियुक्त किये गये, जिनकी देखरेखमें इस संस्थाने पर्याप्त उन्नति की। चोटियाजीके चले जानेके पश्चात् ठा० गौरीशङ्करसिंहजी इसके मैनेजर होकर आये, जो कुछ ही दिन यहां रहे होंगे, उसके बादसे पं० लालचन्दजी शर्मा † के व्यवस्थापकत्व में यह संस्था उत्तरोत्तर उन्नति करती आरही है। अनाथालय की वर्त्तमान उन्नतावस्थाका अधिकतर श्रेय इन्हीं को है।

अनाथालयका मकान शहरसे बाहर पश्चिमकी ओर विद्यमान है। मकानके लिए उग्रमलजी हजारीमलजी लोहिया से १००×५० हाथ जमीन प्राप्त हुई थी, उस पर कुछ उदार सज्जनों द्वारा मकान तैयार करवा दिया गया, जिसमें अनाथालय स्थित है। यह मकान

---

* शीतलादेवीका मन्दिर—उगणिया दरवाजासे पूर्वकी ओर समीप ही स्थित है।

† पं० लालचन्दजी शर्मा—राजपूताना अनाथालयके वर्त्तमान व्यवस्थापक हैं। ये इसीके निकले हुए सुयोग्य एवं सुपठित व्यक्ति हैं। लगभग १३ वर्षसे ये इस संस्थाको उन्नत बनानेके लिए प्राण-प्रणसे प्रयत्नशील हैं।

अनाथालयके छात्रों द्वारा लगायी गयी सामनेकी सुन्दर बाटिकाके साथ बहुत ही मनोमुग्धकारी प्रतीत होता है।

अनाथालयके इस मकानसे लगती ही १००×२५ हाथ एक और जमीन, हजारीमल्लजी लोहियाकी धर्मपत्नी ने अनाथालयको, अभी थोड़े समय पूर्व ही प्रदान की है, जिसपर शिल्पशालाके लिए श्रीमती कृष्णादेवीजी सिंघानिया (धर्मपत्नी—श्री० पूर्णमल्लजी सिंघानिया) ने १२००) रुपये व्यय करके एक मकान निर्माण करवा दिया है। शिल्पशाला में अनाथालयके छात्र विविध शिल्पोंकी शिक्षा प्राप्त करते हैं, जिनमें—टेलरिंग, वीविंग, इम्ब्राइडरी और गान-वाद्य मुख्य विषय हैं।

अनाथालयके छात्रोंको व्यावहारिक ज्ञान तथा लिखने पढ़नेकी शिक्षा भी दी जाती है, जिसके लिए वे अनाथालयके बाहर—बाजार के समीप स्थित—लक्ष्मीनाथ विद्यालय * में भेजे जाते हैं। छात्रों की ज्ञान-वृद्धिके लिए अनाथालयके अन्दर छात्र-सभा और एक छोटा-सा पुस्तकालय भी हैं। छात्र-सभाका अधिवेशन हर रविवार को मैनेजरके निरीक्षणमें होता है तथा पुस्तकालय इसीसे सम्बद्ध है, जिसमें विविध विषयोंकी करीब १००० पुस्तकें हैं।

अनाथालयका प्रबन्ध, कलकत्ता-स्थित प्रबन्धकारिणी द्वारा नियुक्त फतहपुरस्थ व्यवस्थापकके अधीन है, जिनकी देखरेखमें इसका संचालन होता है।

---

* लक्ष्मीनाथ विद्यालयके सम्बन्धमें पुस्तकके इसी खण्डमें पीछे देखिए।

इस समय अनाथालयका स्थायी कोष करीब २५०००) रुपयेका है, जिसके व्याजकी आमदनी १००) रुपये प्रतिमास है। ऊपरकी आमदनी (विवाह तथा लाग की) २५) रुपये मासिक है। इनके अतिरिक्त ८०) रुपये मासिक सीकर-राज्यसे प्राप्त होते हैं। इसका मासिक व्यय करीब ४५०) रुपये हैं, जो इसकी आमदनीको देखते हुए, बहुत अधिक है।

अनाथालयके अन्तर्गत पूर्वोक्त शिल्पशालाके लिए पृथक् कोष-संग्रह किया जा रहा है, जिसके लिए फिलहाल राधाकृष्णजी चमड़िया से १५०००) रुपये और श्रीमती कृष्णादेवीजी सिंघानिया से ११००) रुपये प्राप्त हुए हैं।

इस अनाथालय से कई सुयोग्य छात्र निकलकर गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश कर चुके हैं, जिनमें पं० रुद्रदत्तजी शर्मा, पं० हनुमत्प्रसादजी और पं० लालचन्दजीके नाम उल्लेखनीय हैं। वर्त्तमानमें ४१ छात्र इस संस्थामें हैं।

शिवनारायण जैन आयुर्वैदिक औषधालय *

शिवनारायण कन्हैयालाल फर्म (कलकत्ता) के मालिकोंने अपनी जन्मभूमि फतहपुर में संवत् १९७८ में एक धर्मार्थ आयुर्वैदिक औषधालयकी स्थापना की। इस औषधालयका नाम 'शिवनारायण जैन आयुर्वैदिक औषधालय" रहा। पं० बैजनाथजी त्रिवेदी लक्ष्मणगढ़-निवासी वैद्य होकर आये, जिन्होंने औषधालयकी अच्छी उन्नति की। औषधि प्राप्त करनेके लिए आनेवाले रोगियोंकी संख्या, यद्यपि प्रारम्भमें बहुत कम थी; पर बादमें धीरे-धीरे त्रिवेदी-जीके मिष्ट भाषण और कार्यपटुता से वह अत्यधिक हो गयी। लगभग १० वर्ष तक त्रिवेदीजी ने औषधालयमें कार्य किया। पश्चात् और-और वैद्य आपके स्थान पर आये, लेकिन उनमें से कोई अधिक समय तक इस जगह पर न टिक सका; सम्भव है, इसी कारणसे औषधालयको उन्नत बनानेके लिए वे कोई खास कार्य, जिसका उल्लेख किया जाय, न कर सके हों। संवत् १९९३ से पं० कन्हैयालालजी आयुर्वेदाचार्य (लब्ध प्रतिष्ठ स्वामी लक्ष्मीरामजी के शिष्य) इसी स्थान पर कार्य करने लगे, जो अब तक बड़ी योग्यतापूर्वक औषधालयका कार्य संचालन करते आ रहे हैं।

---

* उपर्युक्त शिवनारायण जैन आयुर्वैदिक औषधालयके अतिरिक्त गौस्वामी, चमड़िया, केडिया और बाबूनाके औषधालय भी फतहपुरमें हैं।

यह औषधालय शहरके मध्यमें मुरारकोंके कुएँके पास एक प्राचीन-सी जगहमें स्थित है। इसके मकानके लिए, सुनते हैं, एक जमीन इसी कुएँके निकट खरीदी जा चुकी है, जिसपर किसी भी समय इसके लिए मकान तैयार करवाया जा सकता है।

यह औषधालय, दिनमें २ बार—प्रातःकाल और सायंकाल—खुलता है, तब रोगियोंको यथोचित औषधियाँ वितरण की जाती हैं। काष्ठादिक चूर्ण, गुटिका और क्वाथादिके अतिरिक्त घृत, तैल, अवलेह, आसव, अरिष्ट, रस एवं धातु-औषधियाँ भी दी जाती हैं।

शहरके समीपके बाहर गाँवोंके लोग भी प्रायः औषधियाँ ले जाया करते हैं, जिनको दूरीके हिसाबसे कई दिनों तककी औषधियाँ दे दी जाती हैं। इस तरह यह औषधालय जनताका हित-साधन करता हुआ सुचारु रूपसे चल रहा है।

———

ज्वालाप्रसाद भरतिया हस्पताल *

ज्वालाप्रसादजी भरतिया द्वारा संवत् १९६४ की पौष कृष्णा ३० को, यह हस्पताल स्थापित किया गया। सुनने में आया है कि भरतियाजी ने १२ लाख रुपये औषधि-दानके लिए अपनी सम्पत्ति में से पृथक् किये, जिनमें से करीब २ लाख रुपये तो हस्पतालके भवन-निर्माण-कार्यमें लग गये और शेष १० लाख रुपये कोषमें स्थित हैं, जिनके ब्याजसे इस हस्पतालका संचालन होता रहता है।

हस्पतालका भवन, फतहपुरके दौलताबाद मुहल्ले † के कुछ दक्षिणमें, पास ही—जहाँ पहले हड़खम्भा था—बना हुआ है। भवनका निर्माण, कलकत्ताके प्रसिद्ध "विशुद्धानन्द मारवाड़ी हस्पताल" के नकशेके अधार पर हुआ है।

हस्पतालमें ऐलोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली से रोगियोंकी चिकित्सा की जाती है। चिकित्साके लिए २ डाक्टर और १ लेडी डाक्टर हैं। एक आयुर्वेदिक विभाग भी इसके अधीनमें है, जिसमें आयुर्वेदका

---

* उपर्युक्त ज्वालाप्रसाद भरतिया हस्पतालके अतिरिक्त "ईश्वरदास पौद्दार डिस्पेन्सरी" और "फतहपुर हस्पताल" २ और ऐलोपैथिक चिकित्सालय यहाँ हैं, जिनमेंसे दूसरा सरकारी हस्पताल है और हाल ही में खुला है।

† दौलताबादके सम्बन्धमें इसी पुस्तकके तीसरे खण्डमें "नवाब दौलतखाँ" (१) शीर्षक निबन्धमें पढ़िए।

एक विशेषज्ञ वैद्य चिकित्सार्थ रहता है। हस्पतालका सारा मासिक व्यय करीब २५००) रुपये बताया जाता है।

हस्पतालमें रोगियोंके रहनेके लिए वार्ड बने हुए हैं, जिनमें सब ८० रोगी रह सकते हैं। प्रतिवर्ष हज़ारों रोगी इस हस्पतालसे फायदा उठाते हैं।

पिंजरापोल

गङ्गारामजी देवड़ाके सुपुत्रोंने संवत् १६३७में, प्रारम्भमें पिंजरापोल स्थापित की थी, जो कुछ ही वर्ष चलकर बन्द होगयी, जिसका मकान अभी तक फतहपुरमें स्थित है।

तत्पश्चात् संवत् १६६६ में अकाल-पीड़ित गौओंके सहायतार्थ फतहपुर और कलकत्तामें चन्दा एकत्रित किया गया।* उसी समय गौओंके कष्ट निवारणार्थ एक सुव्यवस्थित संस्थाकी अवस्थितिकी आवश्यकता प्रतीत हुई, जिसके फलस्वरूप इस पिंजरापोलकी स्थापना की गयी, जो आज तक सुचारु रूपसे चलती हुई विद्यमान है।

इस पिंजरापोलका स्थान, फतहपुरके पूर्वमें चाँदके टीबे †

---

* फतहपुर और कलकत्तामें किये गये उपर्युक्त चन्देमें क्रमशः १२०००) और ३६०००) रुपये एकत्रित हुए। इन एकत्रित रुपयोंसे गौओंके लिए फतहपुरके चारों तरफ ग्वार और पूलोंका प्रबन्ध किया गया, जिसमें करीब ३६०००) रुपये खर्च हुए होंगे। शेष रुपये पिंजरापोलके कोषमें दे दिये गये।

† चाँदका टीबा—फतहपुरका स्वनामख्यात बालुका-निर्मित टीबा है। यह टीबा फतहपुरके पूर्वमें, जहाँ आजकल पिंजरापोलका स्थान है, विद्यमान है। यह पहले बहुत ऊंचा था ; लेकिन अब उतना ऊंचा नहीं रहा।

के पास, बना हुआ है। स्थानके लिए २००×२०० हाथ जमीन, सीकर-नरेश रावराजा श्री० माधवसिंहजी ने प्रदान की थी, जिसपर मनसारामजी रामदयालजी नेवटियाने २१०००) रुपये व्यय करके स्थान बनवा दिया और पासका, गौओंके पानी पीनेके लिए, बना हुआ कुआँ, उग्रमलजी हजारीमलजी लोहिया द्वारा बनवाया गया। इस पिंजरापोलकी एक शाखा लाछासर (बीकानेर) में खोली गयी, जहाँ पिंजरापोल की ही गौएँ रक्खी जाती हैं।

पिंजरापोलका संचालन, कलकत्ता-स्थित प्रबन्धकारिणी-द्वारा नियुक्त स्थानीय व्यवस्थापकके प्रबन्धसे होता रहता है।

पिंजरापोलकी सम्पत्तिका एक ट्रस्ट बना हुआ है। मूलधन करीब १॥ लाख रुपये का है। प्रतिवर्षका व्यय २००००) रुपयेके

इसके नामके सम्बन्धमें बहुत-सी किंवदन्तियां सुननेमें आती हैं। जिनमें से २ यहाँ भी लिखी जा रही हैं।

(१) फतहपुर तथा इसके पासके बाहर गाँवोंके लड़के प्रायः इस टीबे पर जाकर "चाँदमारी" नामका खेल खेला करते थे, जिससे इसका नाम "चाँदका टीबा" पड़ गया।

(२) टीबा, अधिक ऊँचा होनेके कारण चाँदसे स्पर्श करता प्रतीत होता था, इसीसे इसे "चाँदका टीबा" कहने लगे।

लगभग है, जो व्याज तथा ऊपरकी (लाग की) * आमदनी से किसी प्रकार चलता रहता है।

---

* पिंजरापोलकी आमदनीके लिए फतहपुर और कलकत्तामें कुछ लागें लगायी गयीं, जो निम्नाङ्कित हैं :—

फतहपुरकी लाग—

१ घृत पर, ॥=) प्रति मन।

२ ब्रह्मपूरी (एकपांतकी) पर, २१) रुपये।

३ ब्रह्मपूरी (तीन पांतकी) पर, १०१) रुपये।

४ चेजे पर, ॥) सैकड़ा।

५ दूकानदारोंके यहाँ पिंजरापोलका डिब्बा रक्खा गया।

कलकत्ताकी लाग—

१ फतहपुर-सर्वालेकी ब्रह्मपूरी पर, ५१) रुपये।

२ सिर्फ फतहपुरकी ब्रह्मपूरी पर, १५) रुपये।

३ लड़केके विवाह पर, २) रुपये।

४ खुले निमन्त्रण पर, ५ दक्षिणा।

५ फतहपुर-निवासी गद्दीवालोंके यहाँ पिंजरापोलका डिब्बा रक्खा गया।

कबूतरखाना

कबूतरखानेका मकान आजसे करीब ३५ वर्ष पहले पब्लिकके चन्देसे बनाया गया था। प्रारम्भमें इसमें ६ मन मोठ * प्रतिदिन कबूतरोंके लिए पड़ते रहे, अब २॥ मन पड़ते हैं। अनाजके लिए रकम चन्देसे इकट्ठी की जाती है। धर्मप्राण जनताकी उदारताके बलसे यह कबूतरखाना आज तक सुचारु रूपसे चलता आरहा है और आशा है, भविष्यमें भी इसी प्रकार चलता रहेगा।

---

* मोठ—राजपूतानाकी भूमिमें पैदा होनेवाला एक प्रकारका अनाज।

जाग्रत जन मण्डल

फतहपुरके उत्साही नवयुवकोंने सन् १६४० में एक नूतन संस्था * को जन्म दिया। यह संस्था राजनैतिक प्रगतिशील विचारोंको लेकर आयी। जयपुर-राज्य प्रजामण्डल † की एक शाखा फतहपुर में पहलेसे विद्यमान थी ही, तिसपर भी इस दूसरी राजनैतिक संस्था का प्रादुर्भाव, किसी खास उद्देश्यको लेकर या किसी महत्कार्यके सिद्ध्यर्थ, हुआ था। जयपुर-राज्य प्रजामण्डलकी ढुलमुल और ठंडी नीतिसे जिन नवयुवकोंको संतोष नहीं था उन्होंने ही इस संस्थाको जन्म देनेमें अग्रणी होकर कार्य किया था। इस संस्थाका नाम "जाग्रत जन मण्डल" रक्खा गया।

संवत् १६४० का मार्च मास था। एक दिन तहसील प्रजा-मण्डल (फतहपुर) के आफिसमें, नवयुवकोंने एक मीटिंग उपर्युक्त संस्थाके स्थापनार्थ बुलवायी। मैं उस समय कलकत्तासे फतहपुर आया हुआ था; मुझे भी उस मीटिंगमें शरीक होनेका आमंत्रण मिला। मैं भी गया। मीटिंगकी कार्यवाही प्रारम्भ हुई; सर्वसम्मतिसे सभा-

---

* इस नूतन संस्थासे पहले फतहपुरमें सर्वहितकारिणी सभा, आर्यसमाज और सेवा समिति इत्यादि संस्थाएँ अपने २ समयमें काफी काम कर चुकी हैं।

† जयपुर-राज्य प्रजामण्डल—जयपुर महाराजकी छत्र-छायामें काम करनेवाली जयपुर प्रान्तीय एक राजनैतिक संस्था। फतहपुरमें इसकी शाखा "फतहपुर तहसील प्रजामण्डल" के नामसे काम कर रही है।

पतित्वका पद मुझे सौंपा गया, जिसके मैं योग्य नहीं था। तद-नन्तर संस्थाकी कार्यसमितिका चुनाव होगया। चुनाव हो जाने पर दिन-प्रतिदिन संस्था सुचारु रूपसे नवयुवकोंकी स्फूर्तिके साथ काम करती हुई आगे बढ़ती गयी। प्रति रविवारको संस्थाकी साप्ताहिक बैठक होती रही, जिसमें फतहपुरके अधिकाधिक नवयुवक भाग लेते रहे।

आगे चलकर संस्थाने अपना कार्य-क्षेत्र बढ़ाना चाहा। उसने क्रमशः साहित्य विभाग, प्रकाशन विभाग, प्रचार विभाग, सेवा विभाग, ग्रामोद्योग विभाग और राजनैतिक विभाग इत्यादि ६ विभाग संस्थाके अन्तर्गत खोले। प्रायः सभी विभागोंने अपना-अपना कार्य अच्छी प्रकार किया।

साहित्य विभागके अन्तर्गत संस्थाका एक सुन्दर पुस्तकालय बन गया तथा प्रकाशन विभागकी ओर से "जागृति-सन्देश" * नामका एक हस्तलिखित साप्ताहिक पत्र निकाला गया, जिसको संस्थाके सदस्योंकी इच्छा न रहने पर भी, किसी खास कारणवश असमयमें ही बन्द करना पड़ा।

---

* जागृति-सन्देश—'जाग्रत जन मण्डल'की ओर से निकलनेवाला समाज-वादी विचारोंका, हस्तलिखित साप्ताहिक पत्र था। इसका स्टैण्डर्ड अपने समसामयिक पत्रोंमें अच्छा गिना गया। कई पत्रोंमें इसकी सुन्दर समालोचना हुई।

इस संस्थाको जयपुर-राज्य सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगा था ; साथमें जयपुर-राज्य प्रजामण्डल भी इसके अस्तित्वको अपने मार्गमें बाधक समझ कर, छिपे २ इसकी जड़ काटनेमें लगा था। उसके एक प्रतिष्ठित सदस्यने एक बार फतहपुरकी एक बड़ी मीटिंगमें इस संस्थाके खिलाफ भयंकर विष उगला, जिसका उन्हें उसी समय मुँहतोड़ जवाब भी मिल गया। इस तरह यह संस्था कठिन विघ्न-बाधाओंको कुचलती हुई करीब १॥। वर्ष तक कार्य करती रही ; पश्चात् जयपुर-राज्यकी ओर से इसको गैरकानूनी ठहराकर इसकी गति बन्द कर दी गयी ; तबसे इसका कार्य स्थगित है।

वर्त्तमानमें फतहपुरमें जितने उत्साही नवयुवक और कार्यकर्त्तागण दृष्टिगोचर होते हैं, उनमेंसे अधिकांशको तैयार करनेका श्रेय इसी संस्थाको है।

साहित्य-सदन

शेखावाटीमें साहित्यिक संस्थाका पहले अभाव ही था। उसे अभावकी पूर्तिके लिए सन् १९४२ के अक्तूबर मासकी ता० २५ को फतहपुरके साहित्यिक लोगोंकी बैठक हुई, जिसमें फतहपुरस्थ साहित्यिकोंको लेकर एक संस्थाका निर्माण किया गया। संस्थाका नाम "साहित्य-सदन" सर्व सम्मतिसे स्वीकृत हुआ और संस्थाकी नियमावलीके निर्माणके लिए एक अस्थायी उपसमिति ५ आदमियोंकी बनायी गयी, जिसने नियमावली तैयार की। कुछ संशोधनोंके अनन्तर नियमावली सभा द्वारा मंजूर हुई। इस नियमावली के अनुसार संस्थाकी कार्यसमितिका निर्वाचन हर साल संस्थाके ९ सभ्योंको लेकर होता है। संस्थाकी सारी देखरेख इसका व्यवस्थापक करता है।

लोगोंमें साहित्यके प्रति रुचि उत्पन्न करनेके लिए साहित्यिक समारोह और कवि-सम्मेलनादि करना तथा राजस्थानके प्राचीन साहित्यका अन्वेषण और प्रकाशन कर उसे जनसाधारणके सामने लाना, इस संस्थाके खास कार्य हैं।

संस्थाकी मीटिंग प्रति मास एक बार हुआ करती है। फतहपुरके प्रायः सभी साहित्यिक संस्थामें भाग लेते हैं। समय-समय पर मासिक अधिवेशनोंमें शरीक होनेके लिए आसपासके गाँवोंसे भी साहित्यानुरागी लोग आ जाया करते हैं।

इस तरह यह संस्था अपना कार्य करती आ रही है। जयपुर-राज्यने इसे उपयोगी संस्था समझकर अपने पब्लिक सोसाइटीज ऐक्टके अनुसार रजिस्टर्ड भी कर दिया है। यद्यपि इसे स्थापित हुए बहुत कम समय हुआ है, तो भी इसने लोगोंमें अच्छी साहित्यिक अभिरुचि पैदा करदी है। शेखावाटीमें अपनी तरहकी यह एक ही संस्था है। पूर्ण विश्वास है यह संस्था, कार्य करती रही तो, भविष्य में शेखावाटीका गौरव बढ़ायेगी।

परिशिष्ट ४



डाकखाना और तारघर

संवत् १९२३ में फतहपुरमें सर्वप्रथम अङ्गरेजी डाकखाना खोला गया और एक किराये के मकान में रक्खा गया, जहाँ यह एक लम्बे अरसे तक रहा। तत्पश्चात् इसके लिए एक सरकारी मकान बन गया।

संवत् १९५० में फतहपुर-निवासियोंको तार घरकी आवश्यकता प्रतीत हुई, उन्होंने इस–सम्बन्धमें भारत सरकारके "इण्डियन पोस्ट एण्ड टेलीग्राफ डिपार्टमेण्ट" के अधिकारियोंसे लिखा-पढ़ी की, जिसका फल यह हुआ कि संवत् १९५१ में यहाँ तारघर भी खुल गया।

अब यहाँ डाकखाना और तारघर दोनों सम्मिलित-रूपमें हैं और उपरिलिखित सरकारी मकानमें विद्यमान हैं।



फतहपुरके बाहर छोड़ी हुई बीहड़

———::*::———

(१) नवाबकी बीहड़

फतहपुरके द्वितीय शासक नवाब जलालखाँ * द्वारा उनके राजत्वमें फतहपुरके दक्षिणमें, यह बीहड़ १२ कोसके घेरेमें, पशुओंके चरने और पक्षियोंके विश्राम करनेके लिए छोड़ी गयी। अद्यावधि यह विद्यमान है और नवाबका दीर्घ स्मारक बनी हुई है।

खेद है, अब इस बीहड़का विस्तार पहले जितना न रहकर बहुत-कुछ कम होगया है, जिसका एक-मात्र कारण—राज्यका इसकी ओर ध्यान न दिया जाना है।

पता चला है कि जब यह बीहड़ छोड़ी गयी थी, उस समय बावड़ी-दरवाजाके निकटसे इसका प्रारम्भ था; पर बादमें धीरे-धीरे यह बिकती गयी; यहाँ तक कि अब बीहड़के बीचमें भी कतिपय लोगों की खरीदी हुई पट्टाशुदा जमीन हैं। सीकर-राज्यको इस बीहड़की यथाशक्य रक्षा करनी चाहिए।

---

* नवाब जलालखाँके विषयमें इसी पुस्तकके तीसरे खण्डमें देखिए।

(२) कसेरोंकी बीहड़

जयदयालजी कसेराने अपनी माताकी आज्ञासे फतहपुरके बाहर पूर्वकी ओर पास ही, ११०० बीघा जमीन गौओंके चरनेके लिए छुड़वायी ; यही जमीन "कसेरोंकी बीहड़" कहलाती है।

इस बीहड़में फतहपुर-पिंजरापोलकी गौओंको चराया जाता है, जिससे पिंजरापोलको एक प्रकारसे अच्छी सहायता मिल जाती है।

यंत्रालय

फतहपुरके दौलताबाद मुहल्लेमें स्थित, रायबहादुर रामप्रतापजी चमड़ियाकी कोठीकी चहारदीवारीके भीतर, कोठीके भवनके साथ ही, यह यंत्रालय बनाया गया, जो जयपुरमें महाराजा सवाई जयसिंहजी द्वारा बनाये गये यंत्रालयके एक यंत्र की नकल है। इसमें एक धूप घड़ी बनी हुई है, जिससे समय जाना जाता है।

यह यंत्रालय करीब १५०००) रुपये व्यय करके बना है ; लेकिन यहाँ इस विषयका कोई जानकार न होने से इसका उचित उपयोग नहीं होता है।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	३	फतहपुर की भूगोल	फतहपुर के भूगोल
१	१६	सुख्य	मुख्य
४	१	प्रकृति-सौंद्य	प्रकृति-सौंदर्य
५	१५	दुर्मिक्ष	दुर्भिक्ष
६	१०	सरीफ	सर्राफ
१५	५	नवात्र	नवाब
१७	७	संवत.	संवत्
१८	११	वर्तमान	वर्तमान
१६	७	भुहम्मदखाँ	मुहम्मदखाँ
२३	१६	मिम्नांकित	निम्नांकित
२८	१५	लड़ाका	लड़का
२८	१६	लड़का	लड़ाका
३५	८	मुहब्बतखाँ	महावतखाँ
३५	१८	शमशखाँ	शमसखाँ
३६	१४	रुष्ठ	रुष्ट
४६	१५	रसीदखाँ	रशीदखाँ
८०	१७	जार्ज फ्रांसिस	जार्ज टामस
१२३	१५	कंजीयाँ	कंजियाँ

असाधारण अग्रिम ग्राहक

इस पुस्तकके "असाधारण अग्रिम-ग्राहक" * बनकर, निम्नांकित सज्जनोंने अपना इतिहास-प्रेम प्रगट किया है—

† श्रीयुत् सोहनलालजी दूगड़, फतहपुर
† ,, श्रीलालजी साँवलका, फतहपुर
† ,, डा० पं० रामजीवनजी त्रिपाठी, फतहपुर
† ,, यू सुफखाँजी तहसीलदार, रींगस
‡ ,, सीतारामजी केडिया, फतहपुर
‡ ,, नथमलजी केडिया, फतहपुर
‡ ,, चम्पालालजी पोद्दार, फतहपुर
‡ ,, गणपतिरायजी रामजीवनजी देवड़ा, फतहपुर

---

* पांच या पांचसे अधिक प्रतियोंके लिए ग्राहक बननेवाले सज्जन, असाधारण ग्राहक माने गये हैं। अग्रिम बने हुए असाधारण ग्राहकोंके नाम यहाँ छापे गये हैं, बादमें बननेवालोंके नाम अगले संस्करणमें छपेंगे।

† पांचसे अधिक प्रतियाँ लेनेवाले असाधारण ग्राहक।

‡ पांच प्रतियाँ लेनेवाले असाधारण ग्राहक।